बदलती स्त्री अस्मिताः
हिन्दी की समकालीन स्त्री कविता में
(चुनी हुई कवयित्रियों के विशेष संदर्भ में)

CHANGING WOMEN IDENTITY: IN CONTEMPORARY HINDI POETRIES BY WOMEN POET
(With Special Reference to Selected Women Poet)

कालिकट विश्वविद्यालय की

डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध

Thesis
Submitted to the University of Calicut
for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI

शोध निर्देशक :
डॉ.वी.के. सुब्रमण्यन
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता :
विनीता. टी.एन
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय
2016

Dr. V.K. SUBRAMANIAN
Assistant Professor
Department of Hindi
University of Calicut

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"Changing Women Identity: In Contemporary Hindi Poetries by Women Poet (With Special Reference to Selected Women Poet)"** is a bonafide record of research work carried out by **VINEETHA. T.N,** under my supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a Research Degree in any University.

C.U. Campus
Date:

Dr. V.K. Subramanian
(Supervising Teacher)

DECLARATION

I, **VINEETHA. T.N**, do hereby declare that this thesis entitled **"Changing Women Identity: In Contemporary Hindi Poetries by Women Poet (With Special Reference to Selected Women Poet)"** is a record of bonafide research carried out by me and this has not previously formed the basis for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship other similiar Title or Recognition. This research work was supervised by **Dr.V.K. Subramanian**, Assistant Professor, Department of Hindi, University of Calicut.

C.U. Campus
Date:

VINEETHA. T.N
Research Scholar
Department of Hindi
University of Calicut

अनुक्रम

		पृ.सं.
प्राक्कथन		
पहला अध्याय :		**1-91**
स्त्री-विमर्श : सिद्धांतपरक अध्ययन		
1.1.	स्त्री	
1.1.1.	स्त्री शब्द : उत्पत्ति एवं अर्थ	
1.2.	अस्मिता	
1.2.1.	अस्मिता : अर्थ एवं परिभाषा	
1.2.2.	बदलती स्त्री अस्मिता	
1.3.	स्त्री अस्मिता के आयाम	
1.3.1.	आदिम युग में स्त्री का स्वरुप	
1.3.2.	वैदिक काल में स्त्री का स्वरुप	
1.3.2.1.	वैदिक काल में स्त्री की अवनति	
1.3.3.	उत्तर-वैदिक काल में स्त्री का स्वरुप	
1.3.4.	उपनिषद में स्त्री	
1.3.5.	पौराणिक काल में स्त्री	
1.3.6.	महाकाव्य काल में स्त्री	
1.3.6.1.	रामायण में स्त्री	
1.3.6.2.	महाभारत में स्त्री	
1.3.7.	स्मृतिकाल में स्त्री	

1.3.8. मध्यकाल में स्त्री
1.3.9. आधुनिक काल में स्त्री
1.4. विमर्श : अर्थ एवं परिभाषा
1.5. स्त्री-विमर्श : अर्थ एवं परिभाषा
1.5.1. स्त्री-विमर्श : स्वरुप
1.6. स्त्री-मुक्ति आन्दोलन : ऐतिहासिक सन्दर्भ
1.6.1. औद्योगिक क्रांति और स्त्री
1.6.2. स्त्री मुक्ति आन्दोलन : पश्चिम में
1.6.3. स्त्री मुक्ति आन्दोलन : भारत में
1.6.3.1. ब्रह्मसमाज एवं राजाराम मोहन रॉय
1.6.3.2. आर्यसमाज एवं दयानन्द सरस्वती
1.6.3.3. विवेकानन्द
1.6.3.4. ईश्वरचन्द विद्यासागर
1.6.3.5. महादेव गोविन्द रानडे
1.6.3.6. ज्योतिबा फुले
1.6.3.7. महात्मा गाँधी
1.6.4. महिला उत्थान में महिला सुधारकों का योगदान
1.6.4.1. पण्डिता रमाबाई
1.6.4.2. सावित्रिबाई फूले
1.6.4.3. श्रीमती एनी बेसेंट
1.6.4.4. सरोजिनी नायडू
1.7. साहित्य एवं स्त्री-विमर्श
1.8. पितृसत्ता एवं स्त्री-विमर्श

1.9. स्त्री-विमर्श के उद्देश्य
1.10. स्त्रीवाद के भेद
1.10.1. बुर्जुआ संप्रदाय
1.10.2. उदारवादी संप्रदाय (लिबरल फेमिनिज़्म)
1.10.3. उग्रवादी संप्रदाय (रैडिकल फेमिनिज़्म)
1.10.4. समाजवादी/मार्क्सवादी संप्रदाय (सोशलिस्ट फेमिनिज़्म)
1.10.5. मनोविश्लेषणवादी संप्रदाय (फ्रांसीसी स्त्रीवाद)
1.10.6. ब्रिटीश स्त्रीवाद
1.10.7. भारतीय स्त्रीवाद
1.10.8. लेसबियन फेमिनिज़्म
1.11. पाश्चात्य स्त्री-विमर्श : अवधारणा
1.11.1. मेरी वालस्टानक्राफ्ट
1.11.2. जॉन स्टुअर्ट मिल
1.11.3. सीमोन द बोउवार
1.11.4. बेट्टी फ्राइडन
1.11.5. केट मिल्लेट
1.11.6. जर्मन ग्रीयर
1.11.7. सुलोमिथ फायारस्टोन
1.12. भारतीय स्त्री-विमर्श : अवधारणा
1.12.1. महादेवी वर्मा
1.12.2. अरविन्द जैन

1.12.3. प्रभा खेतान

1.12.4. मृणाल पांडे

1.12.5. अनामिका

1.12.6. राजेन्द्र यादव

निष्कर्ष

दूसरा अध्याय : **92-151**

हिन्दी कविता में स्त्री-विमर्श

2.1. कविता

2.2. हिन्दी कविता में स्त्री-विमर्श: स्वरुप

2.3. आदिकालीन काव्य में स्त्री

2.3.1. सिद्ध काव्य- सरहपा

2.3.2. नाथ काव्य- गोरखनाथ

2.3.3. जैन काव्य- स्वयंभू

2.3.4. रासो काव्य- चन्दबरदाई

2.4. भक्तिकालीन काव्य में स्त्री

2.4.1. ज्ञानाश्रयी काव्यधारा- कबीर

2.4.2. प्रेमाश्रयी काव्यधारा- जायसी

2.4.3. रामभक्ति काव्यधारा- तुलसी

2.4.4. कृष्ण भक्ति काव्यधारा- सूरदास, मीराबाई

2.5. रीतिकालीन काव्य में स्त्री

2.5.1. केशवदास

2.5.2. बिहारी

2.5.3. सेनापति

2.5.4. देव

2.6. आधुनिककालीन काव्य में स्त्री

2.6.1. भारतेन्दुयुगीन काव्य में स्त्री

2.6.2. द्विवेदी-युगीन काव्य में स्त्री

2.6.3. छायावादी कविता में स्त्री

2.6.3.1. जयशंकर प्रसाद

2.6.3.2. पंत

2.6.3.3. निराला

2.6.3.4. महादेवी वर्मा

2.6.4. राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता में स्त्री

2.6.4.1. सुभद्राकुमारी चौहान

2.6.4.2. दिनकर

2.6.5. प्रगतिवादी कविता में स्त्री

2.6.5.1. नागार्जुन

2.6.5.2. त्रिलोचन

2.6.5.3. शिवमंगलसिंह सुमन

2.6.6. प्रयोगवाद और नयी कविता में स्त्री

2.6.6.1. अज्ञेय

2.6.6.2. मुक्तिबोध

2.6.6.3. रघुवीर सहाय

2.6.6.4. धर्मवीर भारती

2.7. समकालीन कविता में स्त्री-विमर्श
2.7.1. धूमिल
2.7.2. भगवत रावत
2.7.3. पवन करण
2.7.4. अरुण कमल
2.7.5. चन्द्रकांत देवताले
2.7.6. उमाशंकर चौधरी
2.7.7. मंगलेश डबराल
2.7.8. प्रयाग शुक्ल
2.7.9. लीलाधर जगूड़ी
2.7.10. राजेश जोशी
2.7.11. आलोकधन्वा
2.7.12. देवी प्रसाद
2.7.13. विष्णु नागर
2.7.14. राजकमल चौधरी
2.7.15. सौरभ राय भगीरथ
2.7.16. अरुण चन्द्र रॉय
2.7.17. अरविंद कुमार मुकुल
निष्कर्ष

तीसरा अध्याय :

बदलती स्त्री अस्मिता : हिन्दी की समकालीन स्त्री कविता में (चुनी हुई कवयित्रियों के विशेष संदर्भ में) **152-285**

3.1. हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श

3.2. स्त्री-विमर्श और स्त्री-लेखन

3.3. बदलती स्त्री अस्मिता : समकालीन स्त्री कविता में

3.4. प्रमुख समकालीन कवयित्रियाँ : एक परिचय

3.5. स्त्री कविता : वैयक्तिक आयाम

3.5.1. अस्मिता की पुकार

3.5.2. विद्रोह की चिनगारियाँ

3.5.3. स्त्री की प्रश्नातुरता

3.5.4. प्रेम की ताकत

3.5.5. स्वतंत्रता की खोज

3.5.6. सहभागिता रूप

3.5.7. मौन रूप से विद्रोह करने की शक्ति

3.5.8. आशावादी दृष्टिकोण

3.5.9. श्रेष्ठ वैयक्तिक अनुभूति

3.5.10. आत्मनिर्भर स्त्री की सोच

3.5.11. समान अधिकार की तलाश

3.6. स्त्री कविता : पितृसत्तात्मक आयाम

3.6.1. पितृसत्ता से लड़ती स्त्री

3.6.2. सीमाओं को लांघती स्त्री

3.6.3. मुक्ति की चाहतें

3.7. स्त्री कविता : पारिवारिक आयाम
3.7.1. संबंधों के बीच 'स्व' की तलाश
3.7.2. पारिवारिक संस्था एवं स्त्री
3.7.3. समर्पिता स्त्री
3.7.4. वात्सल्य रुपी माँ की भूमिका
3.7.5. दांपत्य जीवन में संत्रस्त स्त्री
3.7.6. घरेलू हिंसा
3.8. स्त्री कविता : सामाजिक आयाम
3.8.1. अकेलापन
3.8.2. स्त्री शोषण
3.8.3. सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह
3.8.4. समाज में उपेक्षित स्त्री
3.9. स्त्री कविता : शारीरिक आयाम
3.9.1. स्त्री- देह पर पुरुष दृष्टि
3.9.2. स्त्री देह को बचाने की लड़ाई
3.10. स्त्री कविता : सांस्कृतिक आयाम
3.10.1. परंपरागत बंधन में स्त्री
3.10.2. बाज़ारवादी संस्कृति में स्त्री
निष्कर्ष

चौथा अध्याय :

समकालीन स्त्री कविता की भाषा-शैली **286-306**

4.1. भाषा-शैली

4.2. स्त्री की भाषा-शैली

4.3. प्रतीक और बिंब

4.4. नये उपमान

4.5. विद्रोह की भाषा

4.6. मुक्ति की भाषा

4.7. देह की भाषा

4.8. आत्मकथन शैली

4.9. प्रश्नातुर शैली

4.10. व्यंग्य शैली

4.11. गद्य शैली

4.12. लोक जीवन

4.13. अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग

निष्कर्ष

उपसंहार **307-313**

संदर्भ ग्रन्थ सूची **314-329**

प्राक्कथन

साहित्य मानव-जीवन के सौंदर्य की भावात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्य के विभिन्न रूपों में कविता एक ऐसा रूप है, जिसमें जीवन की परिभाषा होती है। साथ ही कविता मनुष्य के हृदयों को आपस में जोड़ने का एक अहं रास्ता भी है। समकालीन कविता की बात ले लें तो यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि यह कविता किसी विशेष विचारधारा की कविता न होकर एक भाव समुच्चय बोध की कविता रही है। जीवन व जगत की सच्चाइयों का अनुपम चित्रण इसमें मिलता है। यानी समकालीन कविता में अपने समय की सारी की सारी गतिविधियों को ग्रहण करने की अदम्य शक्ति रहती है। इसका प्रमुख स्वर प्रतिवाद है। इसमें स्त्री, दलित, पारिस्थितिकी, आदिवासी, मीड़िया आदि मुख्यतः विमर्श के रूप में प्रस्तुत हुए हैं।

इक्कीसवीं सदी के नये साहित्यिक विमर्शों में स्त्री-विमर्श प्रमुखता से उभर कर आया है। स्त्री की आत्मचेतना, 'स्व' के प्रति सजगता, अस्मिता, समता और अधिकार की पहल का दूसरा नाम है 'स्त्री-विमर्श'। पितृसत्तात्मक व्यवस्था से स्त्री को बाहर लाने का प्रयास एवं स्त्री को मानवी रूप में जीने की स्वतंत्रता पाना वास्तव में स्त्री-विमर्श है। जैविक, सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक स्तरों पर स्त्री को अपनी जगह देकर अपने स्वत्व की अलग पहचान निर्माण करना ही इसका लक्ष्य है।

समकालीन कविता में स्त्री-विमर्श का सहज संप्रेषणीय रूप प्रभावी ढंग से प्रस्तुत हुआ है। समकालीन स्त्री-विमर्शी कविता में कवयित्रियों ने विपुल मात्रा में अपनी भूमिका प्रकट की है। स्त्री कविता में स्त्री-संवेदना की विस्तृत दुनिया देखी जाती है। जिसमें स्त्री अपने जीवन की अनुभूति और अनुभव को यथार्थता के साथ

प्रस्तुत कर सकती है। स्त्री के रचना संसार की मूल चेतना में स्त्री स्वयं रही है। समकालीन कवयित्रियाँ मात्र दैहिक अनुभव और यौन शोषण के बारे में नहीं लिखती हैं, बल्कि अपनी अस्मिता और अस्तित्व, मुक्ति के लिए विद्रोह एवं जीवन संघर्ष को अपनी कलम से उतारती है। उनकी कविताएँ प्रचलित पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति लड़ाई करनेवाले औजार ही हैं। स्त्री के द्वारा लिखे जाने पर इसमें स्वानुभूति की तीव्रता अधिक मिलती है। इसमें संघर्षशील एवं आत्मनिर्भर स्त्री की छवि प्रचुर मात्रा में चित्रित की गयी है। समकालीन स्त्री कविता वास्तव में स्त्री की बदलती अस्मिता की अभिव्यंजना है। इन कविताओं में स्त्री ख़ुद को उतारती है। ऐसी स्त्री कविताओं के अध्ययन करने का एक विनम्र प्रयास ही इस शोध कार्य के द्वारा हुआ है।

यहाँ शोध के लिए चुना हुआ विषय है- "बदलती स्त्री अस्मिता : हिन्दी की समकालीन स्त्री कविता में (चुनी हुई कवयित्रियों के विशेष संदर्भ में)"।

अध्ययन की सुविधानुसार प्रस्तुत शोध प्रबंध को उपसंहार सहित पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है-

पहला अध्याय है- "स्त्री-विमर्श : एक सिद्धांतपरक अध्ययन"। इसमें स्त्री शब्द के अर्थ एवं परिभाषा, स्त्री अस्मिता के विविध आयाम यानी वेदकाल से लेकर आधुनिक काल तक आते-आते स्त्री की स्थिति में आये परिवर्तन, आगे विमर्श और स्त्री-विमर्श के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए पाश्चात्य तथा भारतीय अवधारणा में स्त्री-विमर्श का चिंतन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही साथ भारतीय एवं पाश्चात्य देशों में स्त्री-मुक्ति आन्दोलन, पितृसत्ता एवं स्त्री, स्त्रीवादी संप्रदाय एवं चिंतकों के विचार पर भी चर्चा की गयी है।

दूसरा अध्याय है- “हिन्दी कविता में स्त्री-विमर्श”। इसमें आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल, छायावादी कविता, प्रगतिवादी कविता, प्रयोगवादी एवं नयी कविता और समकालीन कवियों की कविताओं में स्त्री की उपस्थिति को समझने का प्रयास किया गया है।

तीसरा अध्याय है- “बदलती स्त्री अस्मिता : हिन्दी की समकालीन स्त्री कविता में (चुनी हुई कवयित्रियों के विशेष संदर्भ में)”। प्रस्तुत अध्याय में चुनी हुई समकालीन कवयित्रियों की कविताओं का विवेचन किया गया है। स्त्री कविताओं पर वैयक्तिक, पितृसत्तात्मक, पारिवारिक, सामाजिक, शारीरिक तथा सांस्कृतिक आयामों के द्वारा अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के लिए मैं ने समकालीन कवयित्रियों में चर्चित-अनामिका, कात्यायनी, सविता सिंह, निर्मला पुतुल, प्रज्ञा रावत, नीलेश रघुवंशी, सुनीता जैन, सविता भार्गव, सुधा उपाध्याय, वन्दना मिश्रा, शीला सिद्धांतकर, सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक, कीर्ति केसर, निर्मला ठाकुर, रेखा, आशा प्रभात्, अल्का सिन्हा, सुधा अरोडा, उषा यादव को चुना है। इनकी कविताओं को केन्द्र में रखकर स्त्री-विमर्श के संदर्भ में अध्ययन- विश्लेषण किया है। स्त्री के वैयक्तिक अनुभव, पितृसत्ता से विद्रोह करती स्त्री, परिवार में स्त्री की विभिन्न भूमिकाएँ, समाज में उसकी दोयम दर्जे की स्थिति एवं प्रतिरोध, देह मुक्ति के लिए संघर्ष, परंपरागत रूढ़ियों का बंधन तथा बाज़ारीकृत दुनिया में स्त्री आज किस प्रकार अपनी अस्मिता केलिए संघर्ष करती है, इसका अध्ययन समकालीन कवयित्रियों की कविताओं के माध्यम से किया गया है।

चौथा अध्याय है- "स्त्री कविता की भाषा-शैली"। स्त्री की निजी भाषा, नये उपमान, प्रतीक, बिंब, आत्मकथन, प्रश्नातुर शैली पर इस अध्याय में चर्चा की गयी है। स्त्री भाषा-शैली की आवश्यकता पर भी विचार किया गया है।

अंत में उपसंहार है, जिसमें शोध प्रबंध का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात् संदर्भ ग्रंथ सूची में कविता संग्रह एवं सहायक ग्रंथों की सूची दी गई है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध कालिकट विश्वविद्यालय के असिस्टेन्ट प्रोफसर डॉ.वी.के. सुब्रमण्यन जी के मार्गदर्शन में संपन्न हुआ है। उन्होंने समय-समय पर अपने मूल्यवान सुझाव एवं प्रेरणा देकर मेरी जिज्ञासाओं और त्रुटियों को दूर करके मुझे प्रोत्साहित किया है। उनके विद्वतापूर्ण निर्देशों एवं परामर्श से ही यह शोध कार्य संपन्न हुआ है। अपने जीवन में भी आगे बढ़ने के लिए मुझे हमेशा उनसे प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्राप्त हुए हैं। उसके लिए मैं सदा ऋणी रहूँगी। अतः मैं हृदय की गहराइयों से उनके प्रति आभार व्यक्त करती हूँ।

इस अवसर पर हिन्दी विभाग के असिस्टेन्ट प्रोफसर डॉ. पी.जे.हेरमन जी और मेरी स्कूल टीचर श्रीमती. अजी जी के प्रति भी मैं दिल से आभार व्यक्त करती हूँ जिनके उपदेश एवं स्नेहमय व्यवहार ने मुझे हमेशा आगे बढ़ने का हौसला दिया है।

कालिकट विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो. प्रमोद कोव्वप्रत जी तथा विभाग के अन्य सभी गुरुजनों के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

उन तमाम कवयित्रियों एवं लेखकों के प्रति मैं धन्यवाद अर्पित करती हूँ जिनकी रचनाएँ मैं ने आधार ग्रंथों एवं सहायक ग्रंथों के रूप में प्रयुक्त कर अपना शोधकार्य संपन्न किया है।

कालिकट विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के पुस्तकालय कर्मचारियों एवं कार्यालय कर्मचारियों के प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ। साथ ही कोच्चिन विश्वविद्यालय के पुस्तकालय कर्मचारियों के प्रति भी धन्यवाद अर्पित करती हूँ।

आगे मैं इस शोध प्रबंध का टंकण कार्य करनेवाली श्रीमती. षैला जी को भी धन्यवाद अर्पित करती हूँ।

मेरे आदरणीय माता, पिता, दादी और बहन से भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ। साथ ही हमेशा मुझे प्रोत्साहन और हौसला देनेवाले श्री. अरुण चन्द्रन के प्रति भी मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ।

अंत में उन सभी विद्वानों, व्यक्तियों, सबसे ज़्यादा मेरे सहयोगी मित्रों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ जिनके स्नेह, प्रोत्साहन एवं सहयोग सदा मुझे प्राप्त हुए हैं। शोधकार्य करने की प्रेरणा से लेकर इसके अंत तक हर कदम पर उन्होंने मेरा साथ दिया है। अंत में सभी हितैषियों के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ।

इस शोध प्रबंध को विद्वानों के समक्ष सविनय प्रस्तुत करती हूँ।

विनीता

हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

विनीता. टी.एन
शोध छात्रा

पहला अध्याय

स्त्री-विमर्श : सिद्धांतपरक अध्ययन

1.1. स्त्री

मानव समाज नर-नारियों के समुदाय का एक व्यवस्थित रुप है। इस व्यवस्थित समाज की आगे को यात्रा एवं विकास के लिए दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। एक के बिना दूसरे का जीवन अधूरा और खाली है। दोनों का अस्तित्व बनाये रखना अनिवार्य है। नारी को नर की 'अर्धांगिनी' एवं 'सहधार्मिणी' के रुप में स्वीकार किया जाता है। उसके बिना नर के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। हमारे देश के सभी धर्म दोनों के सह अस्तित्व बोलते हैं। रामायण की कथा में इसके लिए प्रमाण मिलता है-"धार्मिक मान्यता के कारण प्रभू रामचन्द्रजी को भी सीता माता की अनुपस्थिति में अश्वमेध यज्ञ की अनुमति नहीं दी गई थी। तब उन्होंने सीता की सोने की मूर्ति बनवाकर धार्मिक कार्य को पूर्ण किया था। अनेक धार्मिक विधि-विधानों में पति-पत्नी दोनों की भूमिका समान एवं महत्वपूर्ण मानी गई है।"[1] तैत्तरीय ब्राह्मण में भी पत्नी अर्धांगिनी मानी गयी है। पुरुष के अर्द्ध अंग को नारी आकर भरने से ही पुरुष का शरीर पूर्ण हो जाते है।

सामाजिक जीवन में भी स्त्री-पुरुष की पारस्परिकता रहती है। समान स्थान एवं महत्व इन्हें दिए गए हैं। दोनों में से किसी एक से जीवन नहीं बनता। स्त्री के महत्व को स्वीकारते हुए उसे 'जगत जननी', 'गृहलक्ष्मी', 'मातृदेवी भव' कहकर गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित किया है। ये जो पद स्त्री के लिए दिए गए है उनमें उनके महत्व को स्वीकार किया गया है।

ऐसे बहुत सारी श्रेष्ठताएँ रहने के बावजूद स्त्री-जीवन की स्थिति अच्छी नहीं है। काफ़ी विषम परिस्थितियों के वे शिकार है। पुरुष का स्त्री के साथ शारीरिक,

धार्मिक और रागात्मक संबंध रहने के कारण उसके स्वरूप में भेदकता उत्पन्न हो गयी है। ऐसे, स्त्री के गुणों पर किसी को संदेह नहीं है, लेकिन स्त्री की श्रेष्ठता देश, काल, वातावरण के साथ-साथ कभी उभरती है तो कभी दबती हुई दिखाई पड़ती है।

1.1.1. स्त्री शब्द : उत्पत्ति एवं अर्थ

भारतीय जीवन पद्धति में स्त्री के महत्व एवं श्रेष्ठता निसंदेहतः कही गयी है। उसे प्रेरणा का स्त्रोत, तपस्या की मूर्ति, शांति की पूजारिन, माता आदि अनेक नामों से अभिहित भी किया जाता है।

नारी के लिए स्त्री, वामा, प्रसदा, जोषा, जोषिता, वनिता, महिला, वधु, अबला, रमणी, जाया, रमणी, भामा आदि कई नाम प्रचलित हैं। इन शब्दों में नारी अस्मिता के विभिन्न आयामों का प्रकटन स्पष्टतः आया है जैसे 'प्रसदा' शब्द में उसके सबसे बड़ा अनुग्रह जन्म देने की शक्ति का जिक्र है। वैसे अन्य शब्दों में भी इसी प्रकार के गुणों का स्वीकरण है।

ऋग्वेद में नारी शब्द से स्पष्टतः पत्नी के रूप में स्त्री का आशय है। ऋग्वेद में 'नृ' का प्रयोग वीरता का कार्य करना, दान देना, तथा नेतृत्व करने के अर्थों में हुआ है। नेतृत्व गुण नारी का सबसे बड़ा गुण है। इसलिए यह दुनिया आज की स्थिति में चल रही है। संस्कृत का शब्द है 'नारी'। वह नर शब्द का स्त्री रूप माना गया है। लेकिन ऐसे शब्द भी 'स्त्री' के लिए प्रयुक्त है जिनके भाव स्त्री के अहमियत के साथ सहयोग नहीं करते हैं। नर शब्द 'नृ' से बनाया गया है। 'नृ' नय की 'अञ' से संधि होकर 'नर' शब्द बना है और नारी शब्द 'न + अञ' ङीन् के संधि से बना है।

अमरकोशकार के अनुसार नारी शब्द के पर्यायवाची शब्द हैं- महिला, स्त्री, प्रतीपदर्शिनी, अबला, वनिता, सीमंतिनी, जोषा, योषित्, वामा, भीरू, वधू, सुंदरी, कामिनी, वामलोचना, कांता, ललना, प्रमदा, स्वयंवरा, कुलपालिका, कोपना, रमणी, कुटुंबिनी, पतिवरा, अधिभिन्ना आदि। इन शब्दों में भी स्त्री के व्यक्तित्व की ओर संकेत किया गया है। "टीकाकार दुर्गाचार्य नारी की 'स्त्री' संज्ञा उसके लज्जाशील होने के कारण मानता है, किंतु पाणिनी के धातु पाठ में 'स्त्यै' का अर्थ लजाना नहीं मिलता। धातुपाठ के अनुसार 'स्त्यै' शब्द का अर्थ है, शब्द करना तथा 'इकट्ठा करना'। जान पड़ता है कि नारी का स्त्रीनाम संभवतः उसके वाचाल होने के कारण ही पड़ा।"[2] महर्षि पतंजलि ने 'अष्टाध्यायी' में इस प्रकार बताया है कि नारी को स्त्री इसलिए कहते हैं कि गर्भ की स्थिति उसके भीतर रहती है। मैथिली शरण गुप्त नर-नारी शब्द की तुलना करते हुए बताते हैं कि नर शब्द एक-एक मात्रा का बना है तो नारी शब्द दो-दो मात्राओं से बना है जिससे उसका श्रेष्ठत्व सिद्ध होता है।

राजपाल अंग्रेज़ी- हिन्दी शब्दकोश में woman शब्द को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है

woman - human female
- स्त्री
औरत
नारी जाति (female sex)

Oxford Dictionary में woman शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है

woman - A female worker or employee
- A female domestic help
- A wife of lover

मानक हिन्दी कोश में नारी को नर का स्त्री रूप मानते हुए अर्थ दिया है कि वह रूप जो गर्भ धारण करके प्राणियों को जन्म देता है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने नारी के लिए अनेक शब्द दिए गए हैं- तीय, त्रिया, दारा, नारी, पत्नी, प्रदीपादर्शिनी, वनिता, बनी, वामा, बाला, बीवी, बैयर, भामा, भामिनी, महिला, मादा, मानवी, योषा, योषिता, ललना, लुगाई, वासिता, श्यामा, सामतिनी, सारंग, गेहनी, प्रिया, संगिनी, सजनी, सहचरी, भार्या, स्त्री, रहम, हृदयेश्वरी, घर्मणी, नंदिनी, प्राण, प्रणयिनी, प्राणवल्लभ- आदि।

नारी को 'स्त्री' इस कारण कहा गया है कि वह परिवार का सूत्रधारक होती है। नारी के लिए योषा, योषिता शब्द ऋग्वेद एवं ब्राह्मण ग्रंथों विशेषकर शतपथ ब्राह्मण में अधिक मिलते हैं। इसका अर्थ है सेवा करनेवाली। नारी विविध प्रकार की सेवा करनेवाली है। नारी अपने केशों का विन्यास बख़ूबी करने से उसे 'सीमंतिनी' कहलाती है। 'अबला' नाम का प्रचलन इससे हुआ कि नारी का शारीरिक बल पुरुष की अपेक्षा कम होता है। 'वामा' वह होती है जो स्नेह का वमन करती है। विपरीत दृष्टि रखनेवाली होने के कारण नारी को प्रदीपदर्शिनी कही गयी है। 'वनिता' वह है जिसमें राग उत्पन्न होता है। सुन्दर अंगोंवाली नारी को 'अंगना' कहलाती है। उसे महिला (महा + इलच् + आ = महिला) इस कारण कहा गया है कि जो वह पति का सम्मान करनेवाली होती है। 'वधू' वह है जो विवाह करने योग्य होती है। जो डरनेवाली एवं कायर होती है उसे भीरू कहलाती है। 'कामिनी' वह है जिसमें कामवासना अधिक रहती है। सभी को आनन्द देनेवाली नारी को प्रमदा नाम दिया गया है। सौन्दर्ययुक्त नारी 'सुन्दरी' नाम से विख्यात है।

पुरुष की सहधर्मिणी एवं साथी को 'पत्नी' की संज्ञा दी गयी है। स्त्री के लिए शतपथ ब्राह्मण तथा कौषीतकि ब्राह्मण में पत्नी शब्द का अधिक प्रयोग हुआ है। 'जोषा' शब्द से उसे इसलिए पुकारा जाता है कि उसमें प्रेम और सेवा करने के साधन उपलब्ध हैं। जो नारी पुरुष एवं पूरे घर का भरण-पोषण करती है उसे 'भार्या' कहलायी जाती है। नारी में जन्म देने की शक्ति है इसी वजह उसे 'जाया' कही गयी है। इस शब्द का प्रयोग भी ऐतरेय ब्राह्मण, और मनुस्मृति में पाया जाता है। नारी को क्रोध करनेवाली कहकर उसे 'कोपना' एवं 'चण्डी' नाम मिले है। सुन्दरता एवं गुण से युक्त नारी को 'पुरंध्री' बतायी गयी है। जो चाह अधिक करती है या जिसकी चाह की जाती है उसे 'कान्ता' कही गयी है। जिस नारी में चंचलता, चाह, इच्छा, अधिक होती है उसे 'ललना' दिया गया है। 'गृहिणी' वह नारी है जो घर का आधार है। जिस नारी के कुटुम्ब की पर्याप्त वृद्धि हो चुकी है, उसे 'कुटुम्बिनी' बुलायी गयी है। 'कुलपालिका' उसे पुकारती है जो कुल का पालन करती है।

नारी के लिए अनेक पर्यायवाची शब्द उपलब्ध हैं। इससे हमें यह ज्ञान होता है कि नारी के विभिन्न रूप होते हैं। साथ ही साथ नारी के स्वरुप में भी वैविध्य है। एक तरफ वह करुणा, सहानुभूति, सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति होती है तो दूसरी तरफ शक्तिस्वरुपा रुप भी पाया जाता है। स्त्री अपने गुणों से सारी दुनिया को सुखमय बना देती है। नारी की शक्तिस्वरुपा रुप उसे विश्वविधायिनी बना देती है।

लेकिन इन शब्दों के निर्माण में स्त्री के संस्पर्श का अभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। अगर इन शब्दों के निर्माण स्त्री के यथार्थ स्वत्व को देखा गया था तो

उसका अर्थ स्वरुप अलग होता। जैसे 'अबला' शब्द कभी भी स्त्री के लिए भूषण नहीं है। 'भीरु' शब्द भी इस प्रकार विलोम भाव को प्रकट करता है। इन सभी में पुरुषवादी व्यवस्था का हस्तक्षेप ज़रुर है। किसी साहित्यकार की भावना में पैदा हुई 'स्त्री' के लिए सामान्य शब्द है ही नहीं। इन शब्दों में स्त्री पक्ष चिंतन की गुंजाईश तक नहीं है। सामंती व्यवस्था के पुरुषवर्चस्ववादी मानसिकता में पैदा हुए इन शब्दों में स्त्री के 'सेंकड सेक्स' का भाव अभिव्यक्त है। 'स्त्री' शब्द की अधिकांश परिभाषाओं में उसके शक्तिस्वरुपा भाव रहता है। लेकिन व्यवहार में ये रुप लाने के लिए उसे अनुमति नहीं है। इसलिए स्त्री की दशा चाहे घर में हो, समाज में हो कहीं भी हो श्रेयस्कर नहीं। वह कई प्रकार के बंधनों में जकडी हुई है।

1.2. अस्मिता

आधुनिक युग की बीसवीं शताब्दी में दो विश्वयुद्ध हुए थे। साथ ही साथ टेकनॉलजी एवं विज्ञान की प्रगति भी हुई थी। सारी की सारी सुख्र-सुविधाओं के साधन दुनिया में उपलब्ध हुए। जीवन में यंत्र का स्थान अधिक होने लगा। मशीन के प्रभाव से मनुष्य का जीवन भी मशीन बनने लगा। जीवन एवं चिंतन में मशीन ने प्रभाव डाला। हृदय के स्पंदन से भी ज़्यादा महत्व मशीनों के टिक-टिक आवाज़ को मिला। इससे उसकी मानवीयता में ह्रास होने लगा। वह अपनी मनुष्य होने की पहचान ख्रोने लगी। व्यक्ति अपने आप को निरर्थक महसूस करने लगा। यही स्थिति व्यक्ति को कुण्ठाग्रस्त कर दिए जाने का दृश्य दिख्राई देने लगा। वह इससे बचना चाहती थी क्योंकि ऐसी कुण्ठाग्रस्त स्थिति को लेकर वह आगे की यात्रा तय नहीं कर सकती थी। अंत में वह ख्रुद अपने की ख्रोज करने लगी। इसका नाम है अस्मिता।

1.2.1. अस्मिता : अर्थ एवं परिभाषा

मानक हिन्दी कोश के अनुसार अस्मिता का अर्थ मनोवृत्ति की एक विशिष्ट सत्ता है अर्थात् 'मैं हूँ।'[3] राजपाल हिन्दी- अंग्रेज़ी शब्दकोश के अनुसार अस्मिता का अर्थ 'vanity, egotism, identity' है। बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार 'अस्मिता' का अर्थ 'अहंकार' 'अस्तित्व' अर्थात् 'विद्यमान होना' है।

राजपाल अंग्रेज़ी- हिन्दी शब्दकोश के अनुसार 'identity, individuality' का अर्थ- 'व्यक्तित्व, विशिष्टता' से है।

बदलती परिस्थितियों में हम अस्मिता का अर्थ "मैं हूँ" लगा सकते हैं। फ्रायड़ ने मन की तीन अवस्थाओं की कल्पना की:- इदं, अहं, परा अहं। फ्रायड़ ने ईगो (अहं), इड और सुपरईगो (पराअहं) के आपसी संबंधों का परिणाम बताया। उन्होंने भी 'मैं' को 'हम' से अलग किया। अहम (ego) (इगो) में विवेक होता है, व्यवहार कुशलता होती है, वहाँ 'इदं' मूलवृत्तियाँ और इच्छाएँ वासनाएँ होती हैं। हमारे स्वप्न में हमारे चित्तीय जीवन की सूचनाएँ व्यक्त होती हैं। इसी तरह लालसाएँ और इच्छाएँ हमारे भाग्य को संचालित एवं नियंत्रित करती हैं।

जर्मनी के प्रसिद्ध गणितज्ञ 'लीबनित्ज' ने बताया कि- "प्रत्येक वस्तु का अपने साथ या अन्य वस्तुओं के साथ समानता का संबंध नहीं होता। सभी व्यक्ति समान शारीरिक संरचना से निर्मित होने पर भी पृथक्- पृथक् का संबंध रखते हैं और वही उनकी पहचान या अस्मिता होती है।"[4] जास्पर्स ऐसा मानता है कि एक व्यक्ति का

स्थान दूसरा व्यक्ति ले ही नहीं सकता। मतलब 'मैं' वह है जो दूसरा नहीं है। दूसरा इसलिए हैं कि 'मैं' है।

हर व्यक्ति परिवेश में अपने अनुरूप जीवन जीना चाहता है। लेकिन वह जी नहीं पाता। तब उसे अपने परिवेश में अपने अस्तित्व की खोज करनी पड़ती है। अस्तित्व शब्द का प्रचलित अर्थ है- किसी वस्तु का किसी स्थान में होने की सूचना। इसका तात्पर्य यह होता है कि 'कुछ वहाँ' है। अस्मिता व्यक्ति को संपूर्ण परिवेश के सवालों से रुबरु कराती है। अस्मिता अद्वितीय होती है। वह अपनी निजी अर्थात् सिर्फ स्वयं की अनुभूति होती है।

1.2.2. बदलती स्त्री अस्मिता

मनुष्य अपना व्यक्तित्व स्वयं निर्धारित करना चाहता है। लेकिन समाज में मनुष्य का अधिकांश व्यक्तित्व दूसरों के द्वारा निर्धारित होता है। मनुष्य निजता एवं आत्मनिर्णय के साथ जीना चाहता है। व्यक्ति अपनी विशिष्टता एवं महत्व को रेखांकित करना चाहता है। तभी अस्मिता में निजता एवं आत्मनिर्णय का भाव प्रधान रुप से आता है। इस स्थिति में व्यक्ति को अपनी पहचान दिखाने के लिए 'अस्मिता' का प्रचार प्रसार करना पडता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में 'अस्मिता' एक आन्दोलन के रुप में सामने आया है। जैसे: जातीय अस्मिता, क्षेत्रीय अस्मिता, भाषायी अस्मिता, दलित अस्मिता, स्त्री अस्मिता आदि। सभी अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं। 'नारी अस्मिता' से तात्पर्य एक नारी की अपनी विशिष्टता बनाये रखने में है अथवा अपनी पहचान को बनानेवाले

मूलभूत तत्वों से हैं। पुरुष के समान ही नारी को भी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि अधिकार प्राप्त हो।

स्त्री श्रद्धा और सम्मान की आधिकारिणी तो सदा से ही है। लेकिन इक्कीसवीं सदी की स्त्री अपने अधिकार, अपने अस्तित्व एवं अपनी अस्मिता के प्रति जागरुक हुई हैं। पुरुष व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ भी उठाती है। भारत में हुई स्त्री मुक्ति आन्दोलनों में ब्रह्म समाज की स्थापना, प्रार्थना समाज की स्थापना, महिला विश्वविद्यालय की स्थापना 1927 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन आदि स्त्री के सुधार कार्य की दिशा में सफल प्रयास माना जा सकता है जिससे स्त्री को अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करने की शक्ति मिली। अपने अधिकारों के प्रति सजग भी हुई। आजकल स्त्री स्वतंत्र होकर यह कहने लगी है कि 'इंसान हूँ, कोई चीज़ नहीं और मुझे भी अपनी ज़रूरतें हैं।'

आजकल की नारी अपने अधिकारों को पहचान रही है। उन अधिकारों को हकीकत में बदलने का तीव्र प्रयत्न कर रही है। वह यह कहना चाहती है कि "मैं हूँ" और "मैं हूँ"।

1.3. स्त्री अस्मिता के आयाम

भारत में मानव के आविर्भाव से लेकर वैदिक-युग तक के काल को प्रागैतिहासिक युग के नाम से जाना जाता है। प्रागैतिहासिक युग में भारतीय संस्कृति का सूत्रपात हुआ। सिन्धुघाटी में विशेषकर मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा में प्राप्त अवशेषों से आदिम-मानव की प्रगति और विकास का ज्ञान प्राप्त होता है। इन अवशेषों से भारतीय सभ्यता की झलक मिलती है। सारे विश्व के इतिहास में नारी परिकल्पना

के विकास का लंबा इतिहास है। स्त्री विषयक चिंतन का विकास अनेक युगों में निरंतर होता ही रहा है। आदिम-युग में नारी-समाज से संबंधित सामग्रियाँ एवं मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इससे उस समय की मातृदेवी की उपासना व्यापक रुप से हुई थी। स्त्रियों की वेश-भूषा, वस्त्रालंकार, अभिरुचि के संबंध में जानकारी भी मिलती है। तत्कालीन गुफा चित्रों में भी प्रचुर मात्रा में स्त्री के रुपों का अंकन मिलता है।

1.3.1. आदिम युग में स्त्री का स्वरुप

आदिम समाज का जन्म और उसका निर्माण मातृ-सत्ता द्वारा ही हुआ था। इस युग में मातृ परंपरा के अनुसार पीढ़ियाँ चलती थीं। स्त्री के आरंभिक रुप की ओर प्रकाश डालते हुए 'विनोद शाही' का मानना है कि "आदिम कबीलाई समाज में नारी-केन्द्रित कबीले होते थे, जहाँ नारियाँ मुखिया होती थीं अतः तत्काल में इन्ट देवता के रुप में मातृ देवियों का ही आधिपत्य दिखाई देता है। तत्कालीन देवी 'काली' अति भयानक और अति शक्तिशालिनी काल-रुपा देवी कालांतर में पुरुष राक्षसों को अपनी जीभ लपलपा कर ही दाँतों तले चबाकर हजम करने वाली शक्ति का प्रतीक 'दुर्गा' बन गई।"[5]

इस सूचना से हमें यह पता चलता है कि स्त्री की शक्ति को उस समय के समाज ने पहचाना था। काली जैसी भयानक रुपक वास्तव में स्त्री की अनुपम शक्ति को रुपकों में बाँधकर समझाता है।

मातृसत्तात्मक समाज में स्त्री बलवती एवं संपत्ति की अधिकारिणी थी। संपत्ति हमेशा शक्ति का मापदण्ड रही थी। स्त्री, गृह की स्वामिनी मानी जाती थी। मतलब उसका वरीय स्वत्व उस समय स्थापित किया गया था। इस युग में स्त्री और पुरुष

का श्रम सामाजिक श्रम माना जाता था। सामाजिक श्रम में स्त्री के श्रम का अनुमोदन स्वस्थ समाज की उपस्थिति की ओर इशारा करता है। पुरुष शिकार करता था, युद्धों में भाग लेता था जबकि नारी घर का प्रबंध करती थी। स्त्री के श्रम के कीमत वे पहचानते थे। युद्ध के लिए पुरुष तभी जा सकते हैं जब स्त्री घर को संभालती है। ऐसा, स्त्री की शक्ति और स्वत्व की मान्यता उस समय स्वीकार की गयी थी और समाज में पुरुष एवं नारी की मर्यादा में कोई अन्तर नहीं था।

1.3.2. वैदिक-काल में स्त्री का स्वरुप

भारत में आर्य जाति के आगमन से ही वैदिक काल की शुरुआत हुई। वैदिक-साहित्य के द्वारा हमें वैदिक काल का परिज्ञान मिलता। वैदिक-साहित्य जनभाषा का साहित्य है, ग्राम संस्कृति का साहित्य है। वेद हमारी सभ्यता-संस्कृति एवं अध्यात्म-शास्त्र के मूलस्त्रोत है। इन वेदों से तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति का ज्ञान हम प्राप्त कर सकता हैं। वैदिक साहित्य के अंतर्गत चार वेद आते हैं :- ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा सामवेद। ऋग्वेद चारों वेदों में प्रथम और सर्वप्रमुख वेद माना जाता है। इन ग्रन्थों का अध्ययन करने पर अनेक बातों की जानकारी प्राप्त होती हैं। आर्यों के आगमन और सामाजिक व्यवस्था के बाद परिवार की अवधारणा आती है। ऋग्वैदिक काल में पितृसत्तात्मक समाज हुआ करता था। लेकिन नारी की स्थिति उन्नत रही है। ऋग्वैदिक काल भारतीय नारीत्व का गौरवशाली युग था। स्त्री की स्थिति माता और पत्नी के रूप में अत्यंत सम्मानपूर्ण थी। समाज एवं गृह पर उसकी गरिमापूर्ण स्थिति इस मंत्र से स्पष्ट हो जाती है-

"यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवं त्वं सम्राज्ञेधि प्रत्युरस्तं परेत्य चं"[6]

उस समय की सर्वोच्य शिक्षा 'बह्मज्ञान' थी। यह प्राप्त करने में नारियों पर कोई प्रतिबंध नहीं था। अतः तत्कालीन नारियाँ ऋचाओं की रचना करती थीं। साथ ही साथ वे वेद और शास्त्रों में भी पारंगत थीं। 'आशारानी व्होरा' ने इस बात पर विचार करते हुए लिख्रा है- ऋग्वेद के अनेक सूत्र और मंत्र उस समय की ब्रह्मचारिणियों द्वारा भी लिखे गए थे। वेदों में अनेक जगह, रोमसा, घोषा, सूर्या, अपाला, विलोमी, सावित्री, यमी, विश्वंभरा, श्रद्धा, देवयानी आदि नाम मिलते हैं जो वेद और शास्त्रों में पारंगत थीं, जिन्हें ऋषिका और ब्रह्मणी कहा गया। वैदिक युग में लड़कियों को लड़कों की तरह गुरुओं के आश्रमों में रहकर उच्च-शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार रहा था। सूक्तों की रचना महिलाएँ भी करती थीं। 'घोषा' वैदिक संस्कृति में लिखनेवाली प्रथम सूत्र लेखिका मानी गई थी। स्त्रियाँ गुरु भी होती थीं। उनमें से कुछ स्त्रियों को आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त था।

महिलाएँ स्वतंत्रपूर्वक जीवन बिताती, सभा-समितियों एवं सार्वजनिक उत्सवों में भाग लेती थी। सभाओं, ग्राम-जीवन के अन्य समागमों में शामिल होकर नृत्य-गायन संबंधी क्रीड़ाओं में भाग लेती थी इससे यह मालूम होता है कि स्त्री की स्थिति उस समय किसी भी प्रकार के भेद पर नहीं चलती थी मतलब पुरुष और स्त्री स्वतंत्र व पूरक इकाई थे।

वैदिक काल में पुत्र और पुत्री दोनों समान रूप से प्रिय थे। परिवार में कन्या की स्थिति अच्छी थी। बाल-विवाह की प्रथा नहीं थी। लड़कियों के विवाह की आयु

सत्रह-अठारह वर्ष के बाद ही करने के लिए निश्चित की गयी थी। उन्हें विवाह से पूर्व लड़कों से मिलने की आज़ादी मिली थी। इस ज़माने में लड़की को अविवाहिता रहने की अनुमति भी दी गयी थी। तत्कालीन समाज में घोषा की तरह अविवाहित कन्याएँ भी होती थीं। कन्याओं को अपना जीवन-साथी चुनने का अधिकार भी दिया गया था। वेदों में इसके संबंध में सूचना मिलती है। प्रेमी के अर्थ में 'जार' शब्द का प्रयोग भी हुआ है। नारी की आज़ादी की यह हाल उस ज़माने के संस्कृत चिंतन का उदाहरण है। स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण बिलकुली सकारात्म था। वैदिक युग में कन्याओं की स्थिति सम्मानपूर्ण थी। हर क्षेत्र में वह पारंगत भी थी। वात्स्यायन के कामसूत्रों के अध्ययन से इसका उल्लेख मिलता है। उस काल की कुमारियाँ अपने पितृ-गृह में कामसूत्र और नाच, गान, चित्र कलाएँ, सीखती थीं। इसके साथ प्रहेलिकाएँ, पुस्तक वाचन, काव्य समस्यापूर्ति, पिंगल एवं अलंकारों का ज्ञान भी प्राप्त करती थीं। लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा की अच्छी व्यवस्था थी। तत्काल में राजा जनक के यहाँ गर्गी नामक एक विदुषी नारी थी। उसने महर्षि याज्ञवलक्य के साथ शास्त्रार्थ किया था। वेद और शास्त्र आदि के अवलोकन से भी पता चलता है कि उस युग की कन्यायें खूब पढ़ी-लिखी होती थीं। वे स्वयं वेदों तक का अध्ययन करती थीं।

इन बातों से स्पष्ट होता है कि वैदिक-युग में कन्याओं की स्थिति सम्मानपूर्ण थी। उनके साथ प्रेम तथा आदरणीयपूर्ण व्यवहार होता था। प्राचीन हिन्दु जाति में स्त्री का स्थान यूनानियों और रोमनों की तुलना में श्रेष्ठ था। कन्याएँ पितृगृह में रहती थी। उन्हें पिता की सहायता मिली थी। यद्यपि वे स्वतंत्र थीं फिर भी अपना-जीवन-यापन उसे किसी की सहायता के बिना साध्य नहीं था। ऐसा, हम यह सकते

हैं कि स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व होने के बावजूद किसी की सहायता लेने की बात उसके लिए आगे की यात्रा में बाधा बनकर आयी, बाद में यह बाधा स्त्री को गुलामी की जंजीरों में जकडकर रखने केलिए कारण बना। किसी की सहायता लेना, वास्तव में अपने अस्तित्व को खो देने के लिए कारण है।

विवाह, समाज का निर्माण करनेवाली प्रणाली था। विवाह से पति-पत्नी के स्थायी संबंध का निर्माण होता है। "विवाह का अर्थ समाज में प्रचलित एवं स्वीकृत विधियों द्वारा स्थापित किए जानेवाला दांपत्य संबंध और पारिवारिक जीवन भी होता है। इस संबंध से पति-पत्नी को अनेक प्रकार के अधिकार और कर्तव्य प्राप्त होते हैं। इससे जहाँ एक ओर पति पत्नी को कामसुख के उपभोग का अधिकार देता है, वहाँ दूसरी ओर पति को पत्नी तथा संतान के पालन एवं भरणपोषण के लिए बाध्य करता है।"[7]

वैदिक काल में स्त्री और पुरुष को अपना पति अथवा पत्नी चुन लेने की पर्याप्त स्वतंत्रता थी। साथ ही साथ प्रौढ़ विवाह प्रथा का प्रचलन भी था। 17, 18 वर्ष की आयु से पूर्व लड़कियों का विवाह नहीं होता था। स्त्री और पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार विवाह करते थे। उस समय वैवाहिक जीवन प्रेमपरक था। पुरुष स्त्री के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करता था। पति और पत्नी दोनों का सामूहिक नाम रखा है 'दम्पति'। दम्पति का अर्थ है- घर का स्वामी। अतः पति और पत्नी समवेत रूप में घर के स्वामी होते थे। पति-पत्नी दोनों मिलकर यज्ञ संपादित करते थे यज्ञ आदि कर्मों में नारी का स्थान नर के ही समान था। पत्नी के बिना देवताओं की प्रीति के लिये यज्ञ संपन्न करना पुरुष के लिये संभव नहीं था। इस कारण पत्नी

के साथ ही यज्ञ कर्म करते थे। साथ ही अपनी काम-वासना की पूर्ति के लिये भी पत्नी का ही अनुगमन करता था।

ऋग्वेद में पत्नी को पति का 'नेम' अर्थात् आधा अंग माना गया। याने दोनों का समान महत्व है। कोई भी पुरुष, पत्नी की अनुपस्थिति में किसी भी प्रकार के यज्ञानुष्ठान नहीं करता था। यज्ञ में पत्नी को साथ में रखना अनिवार्य था। इसी कारण रामायण में राम ने भी साथ में सोने की सीता की प्रतिमा रखकर यज्ञ किया था।

विवाहिता नारी संपूर्ण गृह की स्वामिनी होती थी। घर-बाहर के निर्णयों में उसे बराबर का अधिकार था। पत्नी को ही घर कहा गया था। पत्नी घर में रानी के समान थी। गृहस्थाश्रम की व्यवस्था से स्त्री अधिक संतुष्ट थी। पति की पत्नी बनकर वह गृह की स्वामिनी थी। गार्हस्थ्य जीवन में स्नेह के साथ-साथ उसे गौरव भी प्राप्त था।

वैदिक काल में दहेज प्रथा नहीं प्रचलित थी। लेकिन कन्या में शारीरिक दोष होने पर दहेज देना आवश्यक होता था। लेकिन विवाह के उपरांत पत्नी को सर्व अधिकार प्राप्त था। उस समय बहुविवाह की प्रथा क्षत्रिय राजा और पुरोहितों में अधिक प्रचलित थी। राजा पुरूरवा के अनेक स्त्रियाँ थीं। बल्कि ऋग्वेद में एक ही पत्नी की प्रथा पर विशेष महत्व दिया गया था। वैदिक काल में समाज द्वारा पुनर्विवाह (विधवा-विवाह) के प्रचलन का भी आभास मिलता है। ऋग्वेद में इसका उल्लेख है। "वह मनुष्य जिसने विधवा से विवाह किया हो 'दिधिषु', जिस स्त्री ने

दूसरे पति से विवाह किया हो वह 'परपूर्व' और स्त्री का दूसरे पति से उत्पन्न पुत्र 'पौनर्भव' कहलाता था।"[8]

इस काल में स्त्रियों को मृत पति के साथ जलने या सती-प्रथा का उल्लेख नहीं, अगर हुई तो क्षत्रिय परिवारों तक ही सीमित थी। पति की मृत्यु के समय कभी-कभी विधवा पत्नी स्वयं अग्नि में जल जाती थी।

ऐसे, हम समझते हैं कि वैदिक काल में स्त्री की स्थिति काफ़ी अच्छी थी। किसी भी प्रकार के भेदभाव उसे सताते नहीं थे। गौरवपूर्ण जीवन उसे मुनासिब था। इससे एक स्वस्थ समाज की खुशबू उस समय के विभिन्न उल्लेखों से प्राप्त होती है। वैदिक समाज कभी की स्त्री विरोधी नहीं नज़र आता है।

माता का स्वरुप इस काल में अत्यंत आदरणीय रहा है। वेदकालीन समाज में माता का पद ऊँचा तथा पवित्र समझा जाता था। ऋग्वैदिक काल मातृसत्तात्मक थी। ऋग्वैदिक काल में माता के नाम पर पुत्रों का नामकरण हम पाते हैं, जैसे 'मामतेय'।

वैदिक युग में नारी संतान की धात्री समझी जाती थी। पुत्र की दृष्टि में माता सदा पूजनीया रही थी। ऋग्वेद में यह भी सूचना मिलती है कि पुत्र रुप की ही कामना स्त्री से की गई थी। सद्गुण संपन्न वीर पुत्र के कारण समाज में नारी का स्थान ऊँचा था। घर में माता और पुत्रों का स्थान श्रेष्ठ माना जाता था। वशिष्ठ धर्मसूत्र के मत से पतित पिता का त्याग हो सकता है, किंतु पतित माता का नहीं, क्योंकि पुत्र के लिए वह कभी भी पतिता नहीं। समाज में सद्गुणी एवं वीर संतान की माता की स्थिति सम्माननीय थी। अपने गुरु, आचार्य एवं उपाध्याय से भी माता

श्रेष्ठ है। स्त्री जीवन के तीन स्तर हैं। एक पितृ स्तर जीवन, दूसरा पति स्तर जीवन, और तीसरा पुत्र स्तर जीवन होता है।

पति पुत्रहीन स्त्रियों को दूसरे पुरुषों के पास भी भेज सकता था। उस प्रकार से उत्पन्न पुत्र परिवार का ही एक अंग बन जाता था। 'नियोग' की पद्धति भी इस काल में प्रचलित थी। नियोग का अर्थ है, आज्ञा, गुरु की अथवा कुल के अधिपति की आज्ञा। यदि कुलवधु की पुत्रहीन अवस्था में पति चल बसता है तो कुल के बड़े व्यक्ति, पति के भाई, अन्य सजातीय पुरुष, की सहायता से संतति का निर्माण कर लेती थी। इतिहासकारों का मानना है कि वीर पुत्रों की कामना के पीछे योद्धाओं की अधिक आवश्यकता का होना है। अगर कन्या रुप में जन्म हो गया तो भी उसकी स्थिति अच्छी कही जा सकती है। आधुनिक काल के समान हत्या के प्रयत्न नहीं किए जाते थे।

इस प्रकार, स्त्री के पास जो माँ का स्वत्व है उसे समझने और स्वीकारने की संवेदनात्मक पहचान उस समय लोगों के पास थी। उन्होंने यह समझकर रखा था कि स्त्री का स्वत्व पुरुष के स्वत्व के साथ तुलना करने की चीज़ नहीं है।

इस युग में स्त्री-शिक्षा का यथेष्ट प्रसार रहा था। वैदिक काल में स्त्री भी वेदाध्ययन करती थी। तब उसका स्थान सभी विषयों में पुरुष के समकक्ष था। सामाजिक एवं धार्मिक विषयों में भी दोनों का अधिकार समान था। उच्च वर्णवाली रमणियाँ पुरुषों के समान सामाजिक तथा धार्मिक विषयों में भाग लेती थीं।

उस समय शस्त्र-संचालन की शिक्षा स्त्री को दी जाती थी। स्त्रियों को युद्ध-विद्या भी प्राप्त थी। महिलाएँ अपना साहस एवं पराक्रम समरभूमि में प्रकट करती

थीं। स्त्रियाँ भी पति के साथ युद्ध में भाग लेती थी। युद्ध में विजय एवं शांति प्राप्त करने के लिये उसका सहयोग आवश्यक भी था।

ऐसा, स्त्री की शक्ति को स्वीकारता एक समाज तब बरकरार था। स्त्री जीवन को बडा अंगीकार मिलता था। स्त्री और पुरुष सिर्फ कुदरत के द्वारा दिए गए शारीरिक विशेषताओं से ही भिन्न थे न कि उनके अधिकारों के वास्ते।

1.3.2.5. वैदिक काल में स्त्री की अवनति

वैदिक काल के अंत तक पहुँचते-पहुँचते जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन आने लगे। सामाजिक व्यवस्था में बदलाव आए। सबसे बड़ा परिवर्तन मातृसत्तात्मक व्यवस्था से पितृसत्तात्मक व्यवस्था की ओर समाज का प्रस्थान था। पुरावस्तु ख़ुदाई से अनेक मातृ मूर्तियाँ मिली थीं। इससे यह ज्ञात होता है कि यहाँ माताओं की पूजा होती थी। मोहन जदाड़ो एवं हारप्पन सभ्यता से इसका उल्लेख्र मिलता है। घर का मालिक स्त्री थी। उसे सम्मान दिया गया था। परिवार में स्त्री का शासन होता था। घर के वरिष्ठ नारी के हाथ में अधिकार दिया गया था। आर्थिक सत्ता उसके हाथ में रही थी।

इसी दौरान आर्यों का आगमन हुआ। आर्यों की सामाजिक व्यवस्था पितृसत्तात्मक थी। आर्यों की जीवन रीति, विचार, रीति-रिवाज़ सब अलग थे। उन लोगों ने अपनी संस्कृति का फैलाव यहाँ किया।

प्राचीन काल में अर्थ, ज़मीन की अधिकारिणी स्त्री थी। मातृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री का सम्मान भी था। लेकिन, धीरे-धीरे पुरुष लोग काम करने के लिए बाहर जाने लगे। फिर संपत्ति का नियंत्रण ख़ुद करने लगे। पुरुष घर चलाने की ज़िम्मेदारी

करने लगे। घर एवं अर्थ का संचालन खुद करने लगे। ज़मीन का मालिक बनकर अधिकार को अपने कब्जे में कर दिया गया। तब स्वामित्व का भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसी तरह 'प्राइवट प्रोपरटी' की अवधारणा उत्पन्न होने लगी। इस अवधारणा ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था के आर्विभाव को बढ़ावा दिया।

"एंगेल्स अपनी पुस्तक 'द ऑरिजन ऑफ फैमिली, प्राइवेट प्रापर्टी एंड स्टेट' में मानते हैं कि सभ्यता के प्रारंभिक चरण में जब आदि-मानव ने पहिए का आविष्कार करने के बाद आखेट की अपेक्षा कृषि एवं पशुपालन को अपना प्रमुख व्यवसाय बनाया, तब पुरुष का वर्चस्व धीरे-धीरे बढ़ने लगा। वह कमज़ोर कबीलों पर आक्रमण करके उन्हें जीतने लगा और उनकी पशु संपत्ति एवं पराजित समूह को दास के रूप में रखने लगा। साथ ही, अपनी सम्पदा को अपनी ही संतान के हाथ सौंपने की अभिलाषा भी कुलबुलाने लगी। स्त्रियों को उत्पादन क्षेत्र से हटा कर उसे घर के दायित्वों की ओर उन्मुख कर दिया गया था। इससे स्त्रियों की पूर्ववर्ती स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर अवस्था समाप्त हो चली थी और वे अधिकाधिक पुरुष पर निर्भर रहने लगी थीं। फलतः विवाह एवं नैतिकता के दोहरे मानदंडों का प्रयोग करते हुए उसने स्त्री की यौनिकता पर कड़े प्रतिबन्ध लगाने शुरू किये। आर्थिक क्षेत्र में सक्रिय भागीदारी न रहने के कारण स्त्री धीरे-धीरे पूरी तरह उस पर आश्रित हो गयी।"[9]

धीरे धीरे पितृसत्तात्मक व्यवस्था समाज में ज़ोर पकड़ने लगी। घर एवं परिवार का मुखिया पुरुष बनने लगा। धन के अधिकार पुरुष के हाथ में आ गए। परिवार में निर्णय लेने का अधिकार उन पर तक सीमित कर दिया गया। बच्चों के ऊपर अधिकार भी मात्र पुरुष के पास सुरक्षित रखा गया था। इस व्यवस्था ने स्त्री को दोयम दर्जे के प्राणी माने थे। घर का पालन एवं शिशु परिपालन से ऊपर उसे कोई

स्थान भी नहीं दिये थे। वैदिक काल के अंत तक आते-आते स्त्री-अवनति का समय शुरू हुआ। सामाजिक व्यवस्था मातृसत्ता से पितृसत्ता की ओर बदलने लगी। इसी कारण स्त्री का शोषण भी शुरू होने लगा। आगे उत्तर वैदिक काल, उपनिषद काल, रामायण-महाभारत आदि कालों में इस शोषण का सिलसिला तेज़ होने लगा।

ऐसे, स्त्री के जीवन का तामसिक दौर शुरू हुआ याने स्त्री के जीवन के सुवर्ण युग का अंत हुआ। इसकी परिणति यह हुई कि मनुष्य के सांस्कृतिक विकास की यात्रा के दौरान जो अनंत संभावना की उम्मीद की जा सकती थी उसमें स्त्री चेतना की भागीदारी का मौका सदा केलिए समाप्त हो गया। गुलामी की जंजीरों में जकड दी गयी स्त्री मनुष्य जीवन के विकास के पथ पर अपने योगदान को जोड़ नहीं सकी। इससे जो नुकसान मानव-समाज को हुआ है उसको कभी आंका नहीं जा सकता।

1.3.3. उत्तर-वैदिक काल में स्त्री का स्वरूप

वैदिक काल में समाज के सभी क्षेत्रों में स्त्रियों का स्थान सम्मान पूर्ण था। लेकिन धीरे-धीरे नारी केन्द्रित समाज का पतन हुआ और पुरुष केन्द्रित समाज की ओर प्रस्थान शुरू हुआ। यानि कि मातृसत्ता से पितृसत्तात्मक व्यवस्था का आरंभ हुआ। साथ ही साथ सामाजिक संहिताओं में भी परिवर्तन आ गए। ऐसे, बदल गए नियमों में वधू से जुड़ी एक महत्वपूर्ण बात यह है कि विवाहानन्तर वधू को पितृगृह छोड़ कर पति के घर में जाना पड़ा था।

उत्तर वैदिककाल में स्त्री की स्थिति नीचे आने लगी। स्त्री-पद का पतन होने लगा। इस काल में मनुष्यों का ध्यान जीवन के आनन्दों से हटकर तपस्या की ओर

अधिक लगने लगा था। तपस्या के कार्य में नारी को सबसे बड़ी बाधा मानी जाने लगी। नारी की निन्दा भी की जाने लगी।

वेदों के उपरांत ब्राह्मण-ग्रंथ, ऐतरेय ब्राह्मण, मैत्रायणी-संहिता, शतपथ ब्राह्मण, तैत्तरीय संहिता, जैमिनी ब्राह्मण आदि सभी में नारी का चित्रण हीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में नारी को अनर्थ की जड़ माना गया है मैत्रायणी-संहिता में नारी को मदिरा और जुआ माना गया है। शतपथ ब्राह्मण में नारी को बुरे रूप में चित्रित किया गया है। तैत्तरीय- संहिता में नारी को शूद्र बतलाया गया है। जैमिनी ब्राह्मण में कन्या को भेंट में देने का उल्लेख मिलता है।

इस काल में स्त्री के स्वातंत्र्य में भी बाधा पड़ने लगी। जैसे विवाह संबंधी स्वातंत्र्य भी अब कम हो गया था। माता-पिता के द्वारा ही विवाह का प्रबंध किए जाने लगा। अब बहुविवाह की प्रथा अधिक प्रचलित हो गयी। पुरुष को अनेक स्त्रियाँ रखने का अधिकार था, स्त्री के अनेक पति नहीं। ऐतरेय ब्राह्मण में ऐसा उल्लेख है कि पुरुष कई पत्नियाँ रख सकता था किंतु एक स्त्री एक ही समय में कई पति नहीं रख सकती थी। ऐसा स्त्री जीवन काफ़ी मुश्किल समय से गुजरने के लिए मज़बूर हो गयी। यह मनुष्य समुदाय के लिए तनिक भी लाभदायक नहीं था, क्योंकि इस स्थिति से जीवन के विकास में स्त्री अपनी भूमिका अदा नहीं कर पायी।

1.3.4. उपनिषद में स्त्री

उपनिषद ग्रंथों में आचार्यों द्वारा शिष्यों को दी गयी विद्या एवं दर्शन संबंधी उपदेशों का उल्लेख मिलता है। इस युग में स्त्री की अस्मिता अस्वीकारना शुरु हुआ। स्त्री को नीच माने जाने लगा। इस युग की विशेषता यह थी कि अब कर्म

काण्ड की जटिलता बढ़ने लगी। नारी को मोक्ष प्रप्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा मानने लगी। यह सोच पुरुषवादी मन की उपज थी। फलस्वरूप नारी के प्रति चारों ओर से अत्याचार होने लगे। उसके वेदाध्ययन पर निषेध, बहुपत्नीत्व का प्रचलन, नारी को मात्र भोग्या मानना, नारी को सेविका-रुप में देखना आदि कुप्रथाएँ फैलने लगीं। स्त्रियों को शूद्र माना जाता था। इसी कारण उसे वेदाध्ययन के लिए अयोग्य बताया गया। उनके लिए वेदाध्ययन का मार्ग सदा के लिए बन्द हो गया। यह स्त्री के प्रति किया गया सबसे बड़ा अपराध था। वेदाध्ययन के अभाव के कारण बाल विवाह शुरु होने लगा। इस काल में पुरुषों में तपस्या की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। साथ ही साथ संसार-त्याग को ही आदर्श माना जाने लगा। इसलिए इस त्याग में सबसे बड़ी बाधा 'स्त्री' को माना भी गया था। इसके कारण उसे अनादर का शिकार बनना पड़ा। यज्ञ-क्रिया में पति के साथ बैठने का अधिकार भी उससे हड़प लिया गया। यह वास्तव में पुरुष वर्चस्वी मानसिकता का स्त्री के ख़िलाफ़ इस्तेमाल किया गया हथियार था। स्त्री स्वत्व को हाशिए पर रखने के लिए यह कुनीति सहायक सिद्ध हुई। स्त्री को आध्यात्मिकता से बाहर रखने का यह अतिचार एक ऐतिहासिक गलती थी। इस गलती का फल आगे स्त्री को भोगना पड़ा। आध्यात्मिकता की ओर पुरुष के आगमन के कारण सबसे अधिक दुर्योग स्त्री को ही भोगना पड़ा।

वैदिकोत्तर युग में बहुपत्नीत्व की प्रथा का प्रचलन होने लगा। इससे नारी की स्थिति बड़ी दयनीय बन गयी। इस प्रथा के प्रचलन के कारणों के पीछे पुरुषों की संतान-प्राप्ति की इच्छा ही थी। पुत्र प्राप्ति के द्वारा पितरों को नरक की यातनाओं से मुक्त करना ही था। तो इस लक्ष्य-सिद्धि के लिए पुरुष को कई विवाह करने की अनुमति थी।

हमेशा संप्रदाय और विश्वास स्त्री के विरुद्ध हो जाते है। क्योंकि इनके निर्माण की प्रक्रिया में स्त्री की भागीदारी नहीं थी। आधिकतर संप्रदाय जो संसार में पैदा हुए है वे स्त्री के पक्ष में कभी भी खड़े नहीं थे। संप्रदाय पुरुष की सृष्टि है। स्त्री की ओर से संप्रदाय अकसर पैदा नहीं होते हैं। क्योंकि वह संप्रदायेतर स्वत्व का मालिक है।

वैदिक समाज में नारी आदरणीय पद पर अधिष्ठित थी। लेकिन उपनिषद-युग में स्त्री को साधन के रूप में माना जाने लगा। स्त्री को पुरुष की कामवासना को तृप्त करने की वस्तु मानने लगी। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि "पुरुष की शारीरिक इच्छाओं को तृप्त करने के लिये ही नारी का जन्म हुआ है। सृष्टि के आरंभ में पुरुष अकेला था, अतः उसे जीवन में कोई आनन्द नहीं मिलता था। उसे एक जीवन-सहचरी की आवश्यकता महसूस हुई तो उसे पत्नी के रूप में सहचरी मिल गयी जो उसकी इच्छाओं को तृप्त करती थी, तथा आनन्द बाँट देती थी।"[10] उपनिषद्-काल से ही भारतीय नारी की अधोगति का प्रारंभ मानना समीचीन होगा।

1.3.5. पौराणिक-काल में स्त्री

हमारे धार्मिक साहित्य में पुराणों का स्थान महत्वपूर्ण है। पुराणों में जीवन के पहलुओं के संबंध में उल्लेख्र किया गया है। ब्रह्म, पद्म, वैष्णव, शैव, भगवत्, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्यत्, ब्रह्मवैवर्त, लैंग, वाराह, स्कन्द, वामन, कौर्म, मत्स्य, गरुड़, ब्रह्माण्ड पुराणों का विषयक्षेत्र बहुत विस्तृत है। इस काल में स्त्रियों के वेदाध्ययन समुचित थी। पुराणों में अनेक विदुषी महिलाओं की चर्चाएँ डई है।

लेकिन धीर-धीरे नारी की अवनति का चित्रण इसमें भी पाया जाता है। उपनिषद्काल के समान इस काल में भी नारी पुरुष की कामवासना को तृप्त करने का साधन माना जाने लगा। अथर्व मंत्रों में ऐसा एक कथन है पत्नी को भगवान ने उसे इसलिये दी है कि वह उसकी सेवा-सुश्रूषा करे तथा संतान प्राप्त करने में वह सहायिका हो सके। अनेक पुराणों में स्त्री-पातिव्रत्य के संबंध में, उसके कर्तव्यों के संबंध में बताया गया है। बिल्कुल उसकी ज़िन्दगी को दायरेबंध कर दिया गया है। पद्मपुराण में ऐसा बता दिया है कि वही स्त्री पतिव्रता है, जो दासी की भाँति गृह-कार्य करें, माता के समान परिवार का पालन-पोषण करे।

इस युग में बहुपत्नीत्व की प्रथा का भी प्रचलन था। उसकी तुलना निचली श्रेणी की मानी गयी। इस युग में भी पुरुषों में संतान-प्राप्ति की अतृप्त इच्छा थी। इसी वजह से बहुपत्नीत्व की प्रथा का प्रचलन अधिक मात्रा में हुआ था। उस ज़माने का भी यह विश्वास था कि विवाह का लक्ष्य पिता को पुत्र-प्राप्ति के द्वारा नरक की यातनाओं से मुक्ति मिले। इसी कारण पुरुष को कई विवाह करने की अनुमति भी थी।

1.3.6. महाकाव्य काल में स्त्री

हमारे लैकिक संस्कृत साहित्य की आदिम रचनाएँ हैं ‘रामायण’ तथा ‘महाभारत’। रामायण एवं महाभारत दोनों महाप्रबंध काव्य कहलाते हैं। ये दोनों काव्य भारतीय समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति के दर्पण ही हैं। दोनों काव्यों में तत्कालीन नारी-स्थिति के वास्तविक रूप प्राप्त होते हैं।

1.3.6.1. रामायण में स्त्री

ईसा के लगभग 600 वर्ष पूर्व रची गई वाल्मीकि रामायण करुण रस का एक महाप्रबंध काव्य है। वाल्मीकि के कथनानुसार रामायण आदर्श नारी का ही चरित्र चित्रण है। सीता को पति-सम्मानिता कहा गया है। रामायण में सीता की प्रेम-भावना एवं रूपलावण्य का चित्रण मिलता है। इसमें पातिव्रत्य-धर्म की महिमा गायी गयी है। जनकदुलारी सीता अपने पति से वन जाने की प्रार्थना करती हुई कहती है कि 'बिना पति के स्त्री को सुख्र नहीं मिल सकता।' इस काल की नारी के रूप को तप, पति-सेवा, योग्य-माता, त्याग आदि गुणों से पूर्ण गृहस्वामिनी के अंतर्गत रूपायित किया गया था। ऐसा माना गया था कि पति ही देवता है। पति ही प्रभु है। पति धर्म एवं गति है। पत्नी के रूप में पतिव्रता धर्म के पालन का आदर्श था। ऐसे प्रसंगों का अध्ययन करने के पश्चात पता चलता है कि स्त्री की स्थिति में निरंतर गिरावट आती रही थी। स्त्री को अपने आप कोई अस्मिता नहीं मिली थी।

रामायण काल में कन्या का जन्म प्रसन्नता का विषय नहीं माना जाता था। विवाह योग्य कन्याएँ माता-पिता के लिए बोझ ही थी। लेकिन कहीं कहीं पर कन्याओं को मांगलिक तथा उनका दर्शन शुभ एवं सौभाग्य माना जाता था। शिक्षा के क्षेत्र में भी महिलाएँ आगे बढ़ी थी। ऋषियों के परिवारों में रहकर गुरु से विद्या सीख्रती थीं। कौशल्या, कैकेयी, सीता आदि सभी शिक्षित स्त्रियाँ थीं। विद्यार्जन के साथ-साथ उन्हें युद्धीय-प्रशिक्षण, धनुर्विद्या, राज-धर्म ज्ञान भी प्रदान किया गया था। साथ ही साथ चित्रकला, नृत्यकला, संगीत आदि भी ग्रहण करने का मौका मिला था। विवाह स्वयंवर द्वारा होते थे। पिता की अनुमति से वयस्क कन्या की शादी होती थी। विवाह के अवसर पर दहेज प्रथा का भी प्रचलन था। दहेज के रूप में

बहुमूल्य वस्तुओं के साथ दास-दासियों के समूह भी प्रदान किया जाते थे। लेकिन वैधव्य, स्त्री के लिए कठोर विपत्ति मानी जाती थी। विधवा की स्थिति दयनीय थी। विधवा-पुनर्विवाह की कल्पना भी नहीं की गयी थी। उच्च-वर्ग में विधवाएँ सती हो जाती थीं। इस समय बहुपत्नीत्व की प्रथा प्रचलित थी। दशरथ की तीन पत्नियाँ थीं। इसके अतिरिक्त नारी-अपहरण, बलात्कार, अवैध संबंध एवं स्त्री को भोग-विलास के साधन के रूप में भी देखा जाता था।

1.3.6.2. महाभारत में स्त्री

ईसा के लगभग 500 वर्ष पूर्व ही महाभारत की रचना का समय माना जाता है। महाभारतकार व्यास के अनुसार समाज में स्त्री का स्थान उत्कृष्ट है। उनका कहना है 'घर को घर नहीं कहते पत्नी को ही घर कहा जाता है' (गृहम् गृह तिम्याहु गृहिणी गृहमुच्यते)। यह सब कहने के बावजूद भी तत्काल में स्त्री को वस्तु से अधिक नहीं माना गया था।

इसमें भी पातिव्रत्य धर्म को विशेष बल दिया गया था जैसा कि रामायण काल में था। स्वयंवर में अर्जुन द्वारा जीती जाने वाली द्रौपदी को पाँचों पांडवों की पत्नी बनकर जीवन जीना पड़ता है। मात्र एक वस्तु की हैसियत उसे दे दी गयी है। पाँचों पांडवों ने अपना दूसरा विवाह भी किया था। लेकिन उसे पातिव्रत्य धर्म का पालन करना पड़ा। उसे दाँव पर लगा दिया गया था, साथ ही राजघराने में निर्वस्त्र भी किया गया था। महाभारत के वनपर्व में पतिव्रता-महात्म्य-पर्व भी है। वहाँ कहा गया है कि नारी को स्वर्ग लोक पर विजय प्राप्त करने के लिए पति-सेवा करना ज़रुरी है।

महाभारत में नारी की निंदा ख़ूब की गयी थी। नारी को पापिन, माया, विष, झूठी, चंचल, दुश्चरित्रा और साँप कहा गया है। स्त्री को स्वतंत्रता न देने की बात का जिक्र मिलता है। साथ ही स्त्री संसर्ग से दूर रहने का उपदेश देता रहा था। नारी को मात्र पातिव्रत्य के दायरे में रहने के लिए विवश किया गया था।

इस काल में भी नियोग की प्रथा प्रचलित थी। पुत्रहीन स्त्रियाँ एवं विधवाएँ किसी अन्य पुरुष से शारीरिक संबंध स्थापित कर पुत्र उत्पन्न करा सकती थीं। महाभारत के अनुसार राजा पाण्डु की रानियों कुन्ती और माद्री ने ऋषियों द्वारा कई संतानें उत्पन्न करायी थीं। पुत्र जन्म की आवश्यकता के लिए, राज्य की उत्तराधिकारी के लिए और परिवार की वृध्दि के लिए स्त्री को 'नियोग' की प्रथा को अपनानी पड़ी।

वेदाध्ययन नारी के लिए निषेध किया गया था। महाभारत में स्त्री को अधिक अपमानित किया जाता था कि पुत्री के जन्म पर वेद मंत्रों का अध्ययन नहीं होता था। धार्मिक संस्कारों से स्त्री को अलग कर दिया गया था। तत्काल समाज में बहु-विवाह और बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। बहुपत्नीत्व की प्रथा समाज में व्याप्त हो गयी। महाभारत के योद्धा अर्जुन ने अनेक विवाह किये, द्रौपदी, सुभद्रा, उलूपी आदि। बहु-विवाह प्रथा को इस युग में सामाजिक स्वीकृति मिल चुकी थी। ऐसा ज़ात होता है कि इस काल में स्त्री अपनी स्वतंत्रता ख़ो चुकी थी। उसका संसार मात्र अपना घर तक ही सीमित हो गया था।

इन सबके बावजूद इस काल में नारी का मातृ-रुप सबसे अधिक आदरणीय माना जाता था।

'नास्ति-भातृ समा छाया नास्ति मातृ समा गतिः।
नास्ति-मातृ समं त्राणं नास्ति मातृ समा प्रिया।।'

(महाभारत, शांतिपर्व)

महाभारत काल में स्वयंवर की प्रथा के विवरण मिलते हैं। स्वयंवर में कन्या पूर्ण स्वेच्छा के साथ अपने पति का वरण करती थी। इससे स्पष्ट होता है कि स्त्री को अपने वैवाहिक कार्यों में स्वतंत्रता थी। महाभारत के अनुसार कुंती का विवाह स्वयंवर के नियमों से संपन्न हुआ था। कुंती ने अपनी इच्छानुसार पांडु को स्वयंवर हार पहना दिया था। लेकिन बाद में यह प्रथा बंद हो गयी थी।

महाभारत काल में स्त्री अपनी अस्मिता खो चुकी थी। वह मात्र एक वस्तु के समान पुरुष की संपत्ति मानी जाती थी। उसे सहधर्मिणी का पद न देकर परिवार की दासी बना दिया गया था। केवल मातृ रूप को ही आदर मिला था। इन सबके बावजूद भी द्रौपदी, कुंती, कैकेयी, सीता, सावित्री जैसी नारियाँ अपने युग की नारी की भावना को स्पष्ट करने में सक्षम हुई हैं। ये स्त्रियाँ नारी-जीवन की शक्तियों की प्रतीक हैं। मातृत्व, त्याग, पत्नीत्व उसके व्यक्तित्व की शक्तिशाली छवियाँ हैं।

1.3.7. स्मृतिकाल में स्त्री

इस काल तक आते स्त्रियों की स्थिति और भी कष्ठतापूर्वक बन गई। उसकी राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और वैयक्तिक स्थिति निकृष्ट हो गई। उसकी स्वतंत्रता पर बंधन लग गए। 'मनु स्मृति' कार मनु ने स्त्रियों को कटु नियमों के अंदर बाँध दिया था। इसके फलस्वरूप स्त्री को स्वयं अपने बारे में भला-बुरा सोचने की शक्ति भी नष्ट हो गई। उन्होंने स्त्री-शिक्षा पर प्रहार कर दिया। उपनयन

संस्कार से पितृ-गृह में वे थोड़ा पढ़ पाती थीं, वहीं स्त्रियों के लिए अध्ययन बन्द कर दिया गया। तद्पश्चात् शिक्षा के अभाव के कारण बाल्यावस्था में ही शादी होने लगी। वेदाध्ययन के अभाव के कारण धार्मिक कृत्यों में भी उसकी उपेक्षा होने लगी। इससे पत्नी रूप में उसकी सम्मानजनक स्थिति में भी बाधा पड़ने लगी। साथ ही सती-प्रथा, विधवा पुनर्विवाह न होने देना, बाल-विवाह, बहुविवाह जैसी कुरीतियाँ फैलने लगीं। विधवा स्त्री की स्थिति जानवरों से बदतर थी। उसे केवल घर तक सीमित कर दिया गया था। पुनर्विवाह के अधिकार को छीन लिया गया। मांगलिक अवसरों पर आने से रोक लगा दिया गया एवं सामाजिक, उन्नति को अवरुद्ध करा दिया गया था।

इस काल में भी पतिव्रता धर्म पर बहुत ज़ोर दिया गया था। मनु एवं अन्य स्मृतिकारों का यही मानना था कि स्त्रियों के लिए पति की सेवा करनी चाहिए। पति-सेवा से ही वे स्वर्ग लोक में पूजित हो सकती हैं। पत्नी, मात्र पति की पूजारिन हो गई थी। पति के मरने के बाद पत्नी को वैधव्य जीवन अपनाना पड़ा। जीवन पर्यंत ब्रह्मचर्य धारण करने का नियम बनाया गया था। मनु ने माता के रूप में स्त्री को सम्माननीय स्थान प्रदान किया था। कुलमिलाकर स्मृतिकारों ने नारी के संपूर्ण अधिकार पर पाबंदी लगा दी थी।

1.3.8. मध्यकाल में स्त्री

मध्यकाल तक आते-आते स्त्री की स्थिति आधिकाधिक पतनोन्मुख्र एवं ह्रासोन्मुख्र होती आयी है। इस समयावधि के साहित्य में यानि आधुनिक काल के पहले 19 वीं शताब्दी के पूर्व स्त्री की स्थिति का चित्रण मिलता हैं। मध्यकाल में हूण, ग्रीक, मुस्लिम आदि अनेकों ने आक्रमण किए जिनका परिणाम स्त्री जीवन पर

भी पड़ा था। आशारानी ब्होरा ने लिखा है-"मध्ययुग तक आते-आते स्त्रियों की स्थिति में बहुत बदलाव आया। भारत पर मुसलमानों के आक्रमणों और बाद में मुगलों के शासनो में भारत में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई। हिन्दु धर्म की रक्षा, सतीत्व की रक्षा, रक्त की शुद्धता आदि के नाम पर स्त्रियों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाए गए, जिससे उनका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हुआ।"[11] भारतीय समाज में हिंदु जाति में धार्मिक मर्यादा का पालन कट्टरता से होने लगा। हिंदु धर्म की रक्षा के नाम पर स्त्री को बंधनों में जकड़ दिया गया। उसे सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, स्वतंत्रता नहीं दी गयी थी। स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा गया था। इस समय भी छोटी आयु में विवाह करने की प्रथा थी। शादी के बाद अन्य लोगों के सामने उसे पर्दा पहनकर चलना पड़ा। इस तरह पर्दा-प्रथा का प्रचल आरंभ हो गया। विधवा-विवाह बंद हो गए। इस काल में सती-प्रथा ज़ोरों पर पहुँच गयी थी। उसे 'निम्न स्तर' का प्राणी बना दिया गया था।

1.3.9. आधुनिक काल में स्त्री

आधुनिक काल की शुरुआत मुगल शासन के अंत से एवं ब्रिटीश काल, नवजागरण काल और स्वातंत्र्योत्तर काल के विस्तार के साथ हुई है। ब्रिटीश शासन ने भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन को प्रभावित कर दिया। यह काल नारी जागरण के शैशव काल के रूप में माना जाता है। अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था ने रुढ़िगत मान्यताओं का निर्मूलन कर दिया, समाज में नये आदर्शों की स्थापना की गयी थी, विशेषकर स्त्रियों के जीवन में कई सुधार हुए। पाश्चात्य शिक्षा एवं विचारों के कारण नारी को समाज में महत्वपूर्ण स्थान मिलने लगे। 1858 में मद्रास, कलकत्ता, बंबई आदि शहरों में विश्वविद्यालय खुले गये। 1827 ई में ईसाई

मिशनरियों ने कन्या पाठशालाएँ खोलीं। अंग्रेज़ी शिक्षा के माध्यम से नारी की शैक्षणिक जागृति को जगा दिया।

आधुनिक काल में नारी-उत्थान के लिए समाज-सेवी सुधारकों ने प्रयत्न किया था। राजा राम मोहन रॉय (ब्रह्म समाज), महर्षि दयानंद (आर्य समाज), ईश्वर चंद विद्यासागर (Hindu Widow Remarriage Act), ज्योतिबा फुले, सावित्री फुले, पंडिता रमाबाई, महात्मा गाँधी आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन समाज-सुधारकों ने नारी के जीवन स्थिति में सुधार लाने का प्रयत्न किया। सती-प्रथा, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, अशिक्षा, बहु-विवाह आदि कुप्रथाओं का कट्टर विरोध किया था। स्त्री-शिक्षा और विधवा विवाह एवं स्त्री अधिकार को प्रधानता दी गयी थी। शिक्षा के प्रसार के कारण नारी के अंदर आत्मगौरव के भाव जन्म लेने लगे। इस बदलते परिवेश के सम्बन्ध में महादेवी वर्मा का मानना है आधुनिक काल में स्त्री भी अपनी अधोमुखी स्थिति से बाहर आने की कोशिश करती रही है। स्त्री शिक्षा का प्रसार होने लगा और नारी घर के चार दीवारों से बाहर आई। अपनी अस्मिता को बनाने के लिए संघर्ष करने लगी।

स्वाधीनता संग्राम में भी नारियों ने भाग लिया। गाँधीजी ने स्वतंत्रता संग्राम की विजय-प्राप्ति के लिए नारियों का सहयोग महत्वपूर्ण माना था। उन्होंने नारी को अबला नहीं, शक्ति कही है। 1930 के 'नमक सत्याग्रह' के आन्दोलन में हज़ारों की संख्या में नारियों ने गाँधीजी का साथ देकर अपना सहयोग दिया था। इस आन्दोलन ने नारी की स्थिति पर गहरा असर डाल दिया था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी की स्थिति में काफ़ी सुधार आये। उसने रुढ़ियों के बंधन से मुक्त होने के लिए संघर्ष करना शुरु किया। अपने-आप को पहचानकर

निडर होकर आगे बढ़ने लगी। इसी बीच में नारी को जगाने के लिए कई महिला संगठनों का उदय भी हुआ था। उनमें प्रमुख हैं- महिला भारतीय समिति, भारत महिला परिषद्, इंडिया वुमेन्स कान्फरेन्स आदि। इन संगठनों के द्वारा पुरुषों के बराबर स्त्री को भी राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्राप्त कराना लक्ष्य किया गया था।

स्वातंत्र्योत्तर युग में स्त्रियों की उन्नति और विकास के लिए अनेक कानून और योजनाएँ बनाई गयी हैं। किशोरी शक्ति योजना, बालिका समृद्धि योजना, स्वशक्ति योजना आदि। संविधान ने पुरुषों के समान स्त्रियों को भी आर्थिक, सामाजिक, व राजनैतिक अधिकार प्रदान करने के लिए प्रावधान बनाने की अनुमति दी है। पुरुष के समान वेतन मिलने का अधिकार, काम में छुट्टी का प्रावधान, दहेज प्रतिबन्ध अधिनियम, विधवा को पति की संपत्ति का अधिकार आदि बातें स्त्रियों के लिए लागू कर दी गयी।

आधुनिक काल में शिक्षा प्राप्ति एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव से नवीन जागरण स्त्री जाति में उत्पन्न हुआ। आधुनिक नारी आत्मनिर्भर होकर जीती है। आज नारी में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक चेतना भी दिखाई पड़ती है। आज स्त्रियाँ अपने ऊपर होनेवाले अन्याय का विरोध करने लगी हैं। आधुनिक स्त्री सभी क्षेत्रों में पुरुष के बराबर खड़े होने के लिए सक्षम हैं।

1.4. विमर्श : अर्थ एवं परिभाषा

विमर्श का अर्थ है जीवन्त बहस। किसी भी समस्या या स्थिति का विश्लेषण विभिन्न कोणों से किया जाता है। इसमें विविध दृष्टियों, संस्कारों, भिन्न-भिन्न

मानसिकताओं के साथ उलट-पुलट कर देखने की रीति होती हैं। अतः समग्रता में समझने की इसमें कोशिश की जाती है। और अनेक जीवन संदर्भों से जोड़कर निष्कर्ष निकाल दिया जाता है। लेकिन यह निष्कर्ष कभी भी अंतिम नहीं होता है। उसे समय-समय पर चिंतन-मनन करके नया स्वरूप ग्रहण किया जाता है।

साहित्य के विशाल संसार में 'विमर्श' आधुनिक काल की देन है। 'विमर्श' शब्द से सीधा तात्पर्य है गहन सोच-विचार, विचार विनिमय तथा चिंतन मनन करना। भोलानाथ तिवारी के अनुसार विमर्श का अर्थ है- "तबादला- ए ख्याल, परामर्श, मशविरा, राय बात, विचार-विनिमय, विचार-विमर्श, सोच-विचार।"[12] मानक हिन्दी कोश में विमर्श का अर्थ दिया है-किसी बात या विषय पर कुछ सोचना समझना, विचार करना, जाँचना और परखना। भाषा विद्वान डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार 'विमर्श' का अंग्रेज़ी समानार्थी शब्द है 'consultation'. अंग्रेज़ी विश्वकोश 'Encyclopedia Britanica' में विमर्श के लिए प्राप्त अंग्रेज़ी पर्याय 'consultation' है। क्रिस बार्कर ने विमर्श की परिभाषा इस प्रकार दी है, "विमर्श में ज्ञान की वस्तुओं का बोधगम्य तरीके से परिकल्पना करते हैं, संरचना करते हैं, निर्माण करते हैं; साथ ही तर्क के अन्य तरीकों को अबोधगम्य बनाते हैं।"[13] उपर्युक्त अर्थ से यह स्पष्ट होता है कि विमर्श का सीधा संबंध सोच, बहस, परामर्श, विनिमय, विचार, चिंतन आदि से होता हैं। किसी विषय पर गंभीरता से सोच-विचार, विवेचन और विचार-विनिमय करना ही विमर्श है।

विमर्श का फलक व्यापक है। क्योंकि विमर्श किसी भी विषय को लेकर हो सकता है। जीवन से संबंधित किसी भी पक्ष याने व्यक्ति, समाज, धर्म, आदि सब

को हम विमर्श के अंतर्गत हम रख्र सकते हैं। संसार के किसी भी विषय पर सूक्ष्मता एवं तर्कसंगत विवेचन करना ही विमर्श है। लेकिन वस्तुनिष्ठता एवं तर्कसंगत सोच-विचार इसमें आने चाहिए।

आज साहित्य में अनेक विमर्श चल रहे हैं। स्त्री, आदिवासी, दलित, मीड़िया, पारिस्थितिकी, पॉपुलर कल्चर आदि विमर्श के अंतर्गत मंडरा रहे हैं। ताकि विषयों को विमर्श के धरातल पर नये रूप दे रहे हैं। विमर्श को केन्द्र में रख्रकर साहित्यिक पहल के श्रीगणेश राजेन्द्र यादव ने ही किया था। हंस के जरिए उन्होंने स्त्री विमर्श, सत्ता विमर्श, दलित विमर्श पर गंभीर चिंतन किया था। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, सत्ता-विमर्श, मीड़िया विमर्श, पारिस्थितिक विमर्श, विख्रंडन विमर्श, उत्तराधुनिक विमर्श, विघटन विमर्श, सेक्स विमर्श, बाज़ार विमर्श जैसे विषय आज साहित्य जगत् में चिंतन-मनन के विषय बन गए हैं।

1.5. स्त्री- विमर्श : अर्थ एवं परिभाषा

स्त्री-विमर्श दो शब्दों के मेल से बना हैं। स्त्री + विमर्श = स्त्री-विमर्श। व्युत्पत्ति के अनुसार स्त्री शब्द का अर्थ है 'स्त्री सूत्री जन्मदात्री'। यानि परिवार की सूत्रधार एवं जन्म देनेवाली कहलाती है। दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार- शब्द, स्पर्श, रस और गन्ध का समुच्चय स्त्री है। पुरुष की कामवासनाओं की तृप्ति स्त्री से ही होती है। जैसे यह कहा गया है कि विमर्श का मतलब किसी विषय पर गंभीरता एवं वस्तुनिष्ठता से विचार विनिमय करना है। अतः स्त्री विमर्श का अर्थ है स्त्री के संबंध में चर्चा करना, बहस करना।

स्व के प्रति सजग हो जाना, अपने अधिकार एवं अस्तित्व के प्रति जागरूक रहना स्त्री विमर्श की मुख्य ऊर्जा है। स्त्री को अपनी 'अस्मिता' की पहचान, 'स्व' की चिंता, अपने अधिकार एवं अस्तित्व के अवबोध को जागृत करनेवाला दीप है स्त्री विमर्श। अपनी अस्मिता के बोध ने स्त्री को विमर्श की प्रेरणा दी। स्त्री जहाँ 'मैं' की चिंता करने लगी वहाँ से स्त्री-विमर्श की शुरुवात माननी चाहिए। स्त्री-विमर्श के अंतर्गत स्त्री की आत्मचेतना, आत्मसम्मान, आत्मगौरव, समता और समानाधिकारी की बातें आती हैं।

स्त्री-विमर्श ने स्त्रियों को अधिक बल दिया। स्त्रियों ने भावना की अपेक्षा बुद्धि को महत्व दिया, लिंगात्मक विवेचना को पार करने को सोचा, समता की कसौटी को अपनाने की कोशिश की। इस प्रकार स्त्री विमर्श का निर्धारण करें तो स्त्री को केन्द्र में रखकर समाज, संस्कृति, परंपराएँ एवं इतिहास का पुनरीक्षण करना ही है। साथ में स्त्री की स्थिति पर मानवीय दृष्टि से विचार विमर्श करते हैं। स्त्री विमर्श के अंतर्गत भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालखंडों का विश्लेषण होता है। वर्तमान स्त्री के बारे में प्रभा खेतान की मान्यता है कि "आज स्त्री ने सदियों की खामोशी तोड़ी है। उसकी नियति में बदलाव आया है। उसके व्यक्तिगत जीवन का उद्देश्य, दर्शन, उसका मन-मिजाज सभी तो बदल रहा है।"[14] इस तरह अपनी अस्मिता के प्रति अवगत होना स्त्री-विमर्श की मुख्य शक्ति बनी है।

स्त्री अस्मिता, स्त्री विमर्श, स्त्रीवाद और नारी मुक्ति के बीच परस्पर संबंध हैं। स्त्री अस्मिता बोध ने ही स्त्री विमर्श की भूमिका तैयार की है। आज स्त्री की अस्मिता बदलती जा रही है। स्त्री अपने बारे में सोचने लगी है, लिखने लगी है।

अपने अधिकार के प्रति सचेत भी है। खोई हुई अपनी अस्मिता को वापस लेने के लिए स्त्री आज जाग गई है।

स्त्री विमर्श आज साहित्य का एक सशक्त माध्यम है। स्त्री विषयक सोच-विचार और सिद्धांतों को जनता तक ले जाने केलिए यह सहायक हुआ है। बदलते अस्मिता-बोध स्त्री को खुद अपने आप को समाज के सामने पेश करने के लिए मज़बूर कर देता है। यही अस्मिता बोध नारी मुक्ति एवं स्त्रीवाद की नींव बन गया है। ऐसा, स्त्रीवाद एक विचारधारा है। इसका उद्देश्य महिलाओं की मुक्ति का प्रयास करना है। स्त्रियों के दमन एवं शोषण के विविध रूपों का अध्ययन इसके द्वारा किया जाता है। शोषण एवं दमन से स्त्री को मुक्त करने की दिशा में आंदोलन करना ही नारी मुक्ति आन्दोलन है।

साहित्य के माध्यम से स्त्रीवादी चिंतक स्त्री स्वतंत्रता, उसकी अस्मिता, अधिकार, चेतना, जागृति की शक्ति शाली रूप को स्त्री विमर्श के रूप में हासिल कर रहे हैं। इसलिए ये संज्ञाएँ जैसे स्त्री अस्मिता, स्त्रीवाद, स्त्रीविमर्श, स्त्रीमुक्ति आदि एक दूसरे के साथ संबंध रखते हैं। कुलमिलाकर कहें तो संस्कृति, कला, धर्म, विज्ञान, राजनीति, साहित्य आदि क्षेत्रों में नारी विषयक सोच-विचार, और विचार-विमर्श ही नारी विमर्श है।

हिन्दी में नारीवादी शब्द का अंग्रेज़ी रूपांतरण है 'FEMINISM'। 'फेमिनिज़्म' की व्युत्पत्ति लैटिन के 'फेमिना' शब्द से हुई है (Femina = Woman) जिसका अर्थ है "नारी के गुणों से युक्त"। The Oxford English Dictionary के अनुसार Feminism का अर्थ है- 'The qualities of females'. स्त्री-विमर्श के संबंध में कुछ अवधारणात्मक परिभाषाएँ इस प्रकार है- लेखिका क्षमा शर्मा का मानना है

कि "स्त्रीवादी विमर्श समग्र आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, भाषिक और सांस्कृतिक विमर्श हैं।"[15] 'रेखा कस्तवार' कहती है कि- "स्त्री का स्त्री के लिए, स्त्री के द्वारा लेखन स्त्री विमर्श है।"[16] कवयित्री अनामिका के शब्दों में "स्त्री और पुरुष के बीच की लड़ाई में दो पीढ़ियों के बीच की लड़ाई की तरह हित-निकाय अलग-अलग नहीं होते हैं। दोनों का हित निकाय एक ही होता है- परिवार। कुल मिलाकर यह एक ऐसी लड़ाई है, जिसमें सत्ता का हस्तान्तरण उतना महत्वपूर्ण मुद्दा नहीं, जितनी दृष्टियों और व्यक्तियों का शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व और सामंजस्य।"[17] कवयित्री कात्यायनी मानती है "स्त्री विमर्श अथवा नारीवाद पुरुष और स्त्री के बीच नकारात्मक भेदभाव की जगह स्त्री के प्रति सकारात्मक पक्षपात की बात करता है। वस्तुतः इस रुप में देखा जाय तो स्त्री-विमर्श अपने समय के समाज के जीवन की वास्तविकताओं और संभावनाओं की तलाश करने वाली दृष्टि है।"[18]

मैत्रेयी पुष्पा का मानना है कि स्त्री की यथार्थ स्थिति की चर्चा ही स्त्री विमर्श है। स्त्री शरीर पर पुरुष समाज का अधिकार है। वह गुलाम की तरह शोषण सहती रहती है। ऐसी स्त्री का चित्रण स्त्री-विमर्शी साहित्य में मिलता है। नामवर सिंह का मानना है कि स्त्री अब स्त्री के लिए एक नयी भाषा, नयी दृष्टि अपनायी है। डॉ. आदित्य प्रचाण्डिया स्त्री-विमर्श के अंतर्गत बाल-विवाह, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, स्त्री-पुरुष के बीच मौजूद असमानता, स्त्री स्वास्थ्य, स्त्री मुक्ति आदि विषयों को भी समेटती हैं। जॉन स्टुअर्ट मिल ने स्त्री देह के रुप में स्त्री का अनुभव अभिन्न मानते है। पुरुष जो ज़्ञान स्त्रियों के बारे में हासिल करते हैं वह अधूरा ही है। स्त्री-विमर्श ने स्त्री समस्या को ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उठाया है। जन्म

से ही स्त्री धर्म और वंश-शुद्धि की अत्याचारी परंपरा में पराधीन होकर जी रही है। तो स्त्री की इस हकीकत का सशक्त दस्तावेज है 'स्त्री-विमर्श'।

1.5.1. स्त्री- विमर्श : स्वरुप

स्त्री विमर्श अपने मूल में स्त्री और पुरुष दोनों की स्वतंत्र अस्मिता पर बल देते हैं। दोनों को जीवंत मानवीय इकाई (A living human being) के रूप में देखने की रीति है। यह स्त्री को भोग्या, वस्तु, दोयम दर्जे की प्राणी, श्रद्धा-योनि माननेवाली परंपरागत मान्यताओं का विरोध करता है। स्त्री विमर्श की विकासयात्रा में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित चार घटनाएँ महत्वपूर्ण हैं।

1. 1789 की फ्रांसीसी क्रांति। जिसने स्वतंत्रता, समानता, और बंधुत्व को प्रतिष्ठित किया। साम्राज्यवाद और राजतंत्र के विरुद्ध लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के लिए लड़ाई लड़ी। मानवीय अधिकार को प्रतिष्ठा देने में फ्रांसीसी क्रांति ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

2. भारत में राजाराम मोहन रॉय का आगमन। समाज में नूतन परिवर्तन लाने में उनका योगदान महत्वपूर्ण है। 1829 में सती प्रथा का कानूनी विरोध का महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने किया था। जिससे प्रथम बार स्त्री के अस्तित्व को मनुष्य के रूप में स्थान दिया।

3. सिनेका फॉल्स न्यूयार्क 1848 में ग्रिमके बहनों की रहनुमाई में आयोजित स्त्री-पुरुषों की सभा एक महत्वपूर्ण घटना है जिसमें तीन सौ स्त्री-पुरुष लोग शामिल हुए थे और जिसने स्त्री मुक्ति आन्दोलन पर बल दिया था। स्त्री मुक्ति

आन्दोलन की नींव डाली। स्त्री की दासता पर विचार-विमर्श किया गया था।

4. ब्रिटीश पार्लियामेंट में 1867 में स्त्री के वयस्क मताधिकार के लिए प्रस्ताव रख्या गया था। प्रसिद्ध अंग्रेज़ दार्शनिक एवं चिंतक जॉन स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill) ने यह महत्वपूर्ण काम किया था। इसने स्त्री-पुरुष की कानूनी एवं संवैधानिक समानता की अवधारणा पर बल दिया था।

इन चारों घटनाएँ स्त्री उत्पीड़न को आवाज़ दी हैं।

1.6. स्त्री मुक्ति आन्दोलन : ऐतिहासिक संदर्भ

दुनिया में अनेक आन्दोलन हुए हैं। आज भी बहुत से आन्दोलन दुनिया भर में चलते रहते हैं। आन्दोलन कभी-भी समाप्त नहीं होते हैं। क्योंकि दुनिया में मुद्दे अनेक पैदा होते हैं। इतिहास की संरचना की भूमिका में मुद्दों का महत्व है। मार्क्स का मानना है कि इस दुनिया में सभी चीज़ों के बीच संघर्ष चलते रहते है। संघर्ष से ही समाज का विकास होता है। इतिहास की संरचना दो विरुद्ध सामाजिक, आर्थिक शक्तियों के बीच की हितकारी संघर्ष से संभव है। इन दोनों विरुद्ध शक्तियों के बीच के समन्वय एवं संयोजन से एक नई सामाजिक व्यवस्था पैदा होती है।

विरुद्ध मुद्दों के संघर्ष से ही सामाजिक विकास होता है। जब तक मुद्दा उत्पन्न होते रहेंगे तब तक आन्दोलन भी चलते रहेंगे। बहुत से आन्दोलन दुनिया भर में चल चुके हैं। आज भी चल रहे हैं। जैसे :

- ❖ ब्रह्मसमाज
- ❖ Anti-War Movement

- Labour Movement
- Rural Peoples Movement
- Civil Rights Movement
- Black Power Movement
- चिपको आन्दोलन
- Arab Spring
- Occupy Wall Street Movement आदि

ब्रह्मसमाज एक सामाजिक आन्दोलन है। सन् 1828 में राजा राममोहन रॉय ने धार्मिक विचारों में परिष्कार के लिए ब्रह्मसभा नामक संस्था की स्थापना की जो बाद में ब्रह्मसमाज के रूप में विकसित हुई। सामाजिक कुरीतियों से लड़कर धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक सुधार प्रदान करना इसका उद्देश्य था। सामाजिक सुधार के संदर्भ में स्त्री सशक्तीकरण का कार्य महत्वपूर्ण है। इस सिलसिले में राजा राम मोहन रॉय का योगदान प्रशंसनीय है। भारत में नारी समाज के बीच की सबसे बड़ी कुप्रथा के रूप में सती प्रथा को मानते थे। पति की मृत्यु पर पत्नी के शरीर-दहन को सतीव्रत माना जाता था। सती प्रथा विधवा दहन के रूप में एक धार्मिक कुरीति बन गई थी। ऐसी निर्मम कुरीती को ब्रह्मसमाज ने बन्द करा दिया। इस आन्दोलन ने जाति प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठायी। विधवा-पुनर्विवाह एवं स्त्री-पुरुष समानाधिकार के समर्थन के लिए इस आन्दोलन का योगदान स्मरणीयत है।

Anti-war movement का आरंभ अमेरिका में हुआ था। अमेरिका में 1812 के युद्ध के अंतिम दिनों में इस आन्दोलन की शुरुवात हुई। यह एक सामाजिक आन्दोलन है। किसी राज्य की राष्ट्रीय नीति के विरुद्ध, सैनिक नीतियों के विरुद्ध संघर्ष करना इसका उद्देश्य था।

19 वीं सदी में यूरोप में औद्योगिक क्रांति तेज़ होने लगी। इसके साथ-साथ Labour movement की भी शुरूवात हुई। औद्योगिक क्रांति से कार्षिक वृत्ति कम होने लगी, ज़्यादात्तर काम फाक्टरियों में होने लगे यानि यंत्रों का उपयोग करके काम करना शुरु कर दिया था। काम करने की नीति में बदलाव आ गई तो उससे कर्मचारियों ने सुचारू ढंग से काम करने के लिए नई मांगें की । दिन में 8 घंटा काम करने की समय-सीमा रखना, कर्मचारियों को काम करने केलिए अच्छे वातावरण को प्रदान करना, कर्मचारियों को काम की बजाय वेतन देना, काम संबंधी नियम लागू करना ऐसे अनेक माँगें करके कर्मचारियों ने आन्दोलन करना शुरु किया था। इस आन्दोलन के फलस्वरूप कर्मचारियों के वेतन, काम करने के समय संबंधी हितकारी बातें लागू हो गयी। कर्मचारियों के संरक्षण के लिए अनेक नियम बनाये गये थे।

Rural Peoples Movement की शुरूवात 1928-1933 में उत्तर जर्मनी में हुई थी। कृषक लोगों ने इसका नेतृत्व किया था। तत्कालीन सरकार ने कृषक लोगों के विरुद्ध अनेक योजनाएँ बनायी थी। कम वेतन दे देते थे। इसके फलस्वरूप सरकार की आय नीति के विरुद्ध कृषक लोग संघर्ष करने लगे।

1950-1960 के आसपास अमेरिका में Civil Rights Movement की शुरुआत हुई थी। मनुष्य को व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूप से अनेक अधिकार प्राप्त होते हैं। जीवन जीने का अधिकार, वर्ग, जेन्डर, वर्ण, आयु, लैंगिक स्वतंत्रता, धर्म, वैयक्तिक अधिकार जैसे सोचना, बोलना, मत प्रकट करना ये सब मानव के अधिकार के अंतर्गत आते हैं। लेकिन उन्हें इन सब अधिकारों से वंचित रखा गया था। गुलाम

बना गया था। Civil Right Movement के माध्यम से इन अधिकारों की माँग एवं रक्षा करने लगे थे।

अमेरिका में 1960-1970 के बीच में शुरू हुआ एक आन्दोलन है Black power movement. यह एक राजनैतिक आन्दोलन है। काले रंग की जनता का उत्थान इसका लक्ष्य था। समाज में काले वर्ग की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए इस आन्दोलन ने क्रांति और शांति दोनों मार्ग अपना लिया था।

उत्तर प्रदेश के पहाड़ी इलाके में 1973 में चिपको आन्दोलन का आरंभ हुआ था। चमोली जिले में जंगल कटने से बचाने के लिए आन्दोलन की शुरूआत हुई। पेड़ों को कटने से बचाने के लिए आन्दोलनकारी पेड़ों पर चिपक जाते थे। इसलिए इस आन्दोलन को 'चिपको' कहा गया। इसका स्वभाव अहिंसक और सत्याग्रही था। पहाड़ी क्षेत्र के पर्यावरण को बचाना इसका लक्ष्य था। यह आन्दोलन मुख्यतः महिला आन्दोलन के रूप में देखा जाता है। साहसी स्त्रियों का यह आन्दोलन स्त्रियों के नैतिक सरोकार और पर्यावरणीय दृष्टि का सूचक था। मीरा बहन, सरला बहन, विमला बहन, गौरा देवी, रिमा देवी अन्य कई पहाड़ी स्त्रियों ने इस आन्दोलन में भाग लेकर प्रतिरोध की संस्कृति की मशाल जलायी थी।

'Arab spring' एक क्रांतिकारी आन्दोलन है। यह आन्दोलन अरब देश में हुआ था। इसकी शुरूवात 2010 में 'टुनिष्या' में हुई थी। प्रचलित व्यवस्था के प्रति आक्रोश इसमें पाया जाता है जबकि न्यू योर्क सिटी के wall street financial district में सितंबर में शुरू हुआ आन्दोलन है 'Occupy wall street movement' । यह अमेरिका सहित दुनिया भर के सामाजिक एवं आर्थिक असमानता के विरुद्ध बनाया गया संघर्ष है।

व्यक्ति एक सामाजिक जीव है। वह समाज में जन्म लेता है और जीवन पर्यंत समाज का होकर रहता है। हर व्यक्ति का समाज के साथ कुछ संबंध में रहता है। परिवार, वर्ग, समाज, धर्म-संस्थाओं तथा राष्ट्र के साथ प्रत्यक्ष व परोक्ष संबंध रखकर वह जीता है। अपने व्यक्तित्व के विकास और आत्माभिव्यक्ति के लिए इन सबकी सत्ता को स्वीकारना पड़ता है। परिणामस्वरूप स्वतंत्र इकाई होने पर भी मानव को अपनी आवश्यकताओं के लिए इस संबंध रुपी बंधन को स्वीकारना पड़ता है। लेकिन इस बंधन से उसकी स्वतंत्र चेतना का हनन या स्वतंत्र अस्तित्व अवरुद्ध होते हैं, तब व्यक्ति स्व-मुक्ति के लिए संघर्ष करेगा। अपनी अस्मिता को बचाने के लिए विद्रोह करेगा। चाहे समस्या स्त्री अस्मिता से जुड़ी हो, दलित अस्मिता, किसान वर्ग, बेघर की समस्या, रोटी की समस्या, युद्ध की समस्या, वर्ण-वर्ग की समस्या हो इन सबकी मुक्ति के लिए संघर्ष एवं आन्दोलन करना ज़रूरी है।

1.6.1. औद्योगिक क्रांति और स्त्री

औद्योगिक क्रांति की शुरूआत अट्ठारहवीं सदी में इंगलैण्ड में हुई थी। यह घटना आधुनिक इतिहास की प्रमुख चालक शक्ति बना गयी। क्योंकि इसके पहले मानव, श्रम के आधार पर उत्पादन करते रहते थे। इससे आर्थिक विकास की गति बहुत सीमित थी। पहले कृषि, खनन, विनिर्माण मानव श्रम से करते आये थे। मशीनों का उपयोग नहीं करते थे। कुशल कर्मचारियों का अभाव एवं तकनीकि सूचनाओं के अभाव से समाज का विकास नहीं होता था। इस समय सामंती व्यवस्था चल रही थी। मानव अपने अधिकार एवं स्वतंत्रता के बारे में विचार नहीं करते थे। सामंती लोग उसे गुलाम बनाकर काम करते आये थे। क्योंकि उस ज़माने

में मुनाफ़े के लिए साधारण लोगों का शोषण वे करते थे और अधिक से अधिक काम करवाते थे।

लेकिन 1750 के बाद पूरे यूरोप तथा सारी दुनिया बुनियादी रूप से बदल गयी। औद्योगिक क्रांति के परिणाम स्वरूप जीवन के समस्त रूप में बदलाव आने लगे। विश्वभर में आर्थिक उत्पादन खेतिहर के दायरे से निकलकर कारखाना आधारित मैन्यूफ़ैक्चरिंग के दौर में पहुँचा। इससे मुनाफा बढ़ गया एवं आर्थिक स्थिति बदलने लगी। इस क्रांति के दौरान लोहे और इस्पात को पहली बार उत्पादन के केन्द्र में लाया गया था। कारख़ाना आधारित वस्तुओं के निर्माण में अभूतपूर्व प्रगति प्राप्त हुई। खेती भी मशीनीकरण की तरफ़ बढ़ गयी। मज़दूरों के रूप में एक नया वर्ग सामने आया। जो वर्ग अपने अधिकार के संबंध में सोचने लगा एवं शोषण को पहचान लिया उसने औद्योगिक पूँजी वर्ग के सामने राजनीतिक-सामाजिक चुनौती पेश की। सत्ता के मुकाबले आवाज़ उठायी जाने लगी।

औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप पुरुष के साथ-साथ स्त्री को भी औद्योगिक क्षेत्र में काम करने का मौका मिला। स्त्री को भी उत्पादन के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति पेश करने का अवसर प्राप्त हुआ। लेकिन उन्हें कम वेतन मिलते थे। फिर भी औद्योगिक क्रांति के आगमन से स्त्रियों को घर की चौखट लांघने का मौका मिला। स्त्रियाँ धीरे-धीरे अपने अधिकार एवं स्व-विकास के संबंध में सोचने लगीं। अन्याय और अत्याचार को मिटाने के लिए आन्दोलन करने के लिए वे तैयार हो गयीं। इसी तरह नारी को नई दिशा एवं नयी राह मिलने लगी।

1.6.2. स्त्री मुक्ति आन्दोलन : पश्चिम में

18 वीं सदी औद्योगिक क्रांति तथा जागरण का युग है। इसके फलस्वरुप पाश्चात्य देश में सामंती संप्रदाय के विरुद्ध आवाज़ उठाने लगा। नारी समुदाय भी कई शोषण को सहने के बाद उसके विरुद्ध स्वर मुखरित करने लगा। इस संदर्भ में अमेरिकी महिला नेत्री सराह हेल का नाम उल्लेखनीय है। क्योंकि उसे विश्व नारी मुक्ति आन्दोलन की पहली प्रवर्तक महिला के रुप में माना जाता है। सराह हेल ने 'लेडीज़ मेगज़ीन' नामक पत्रिका के अमेरिकी संपादिका बनकर नारी मुक्ति का काम किया। इस पत्रिका के माध्यम से विश्व भर नारी मुक्ति चेतना का स्वर बुलंद किया गया था। सराह हेल के ज़माने में स्त्रियों की स्थिति बहुत दर्दनाक थी। समाज में पुरुषों का अधिकार था। स्कूल तथा कॉलेजों में जाकर पढ़ने की अनुमति लड़कियों को नहीं थी। स्त्रियों को पुरुष की कामपूर्ति की वस्तु समझी जाती थी। ऐसे समाज में सराह हेल ने घर से ही शिक्षा प्राप्त करके अध्यापिका की नौकरी प्राप्त कर ली। सराह हेल ने पुरुषों के मनमानी के विरुद्ध अभियान चलाया। महिलाओं के अधिकारों के लिए आन्दोलन भी उन्होंने चलाया था। लड़के-लड़कियों के लिए बराबर की शिक्षा माँगी गयी। महिलाओं को मात्र घरेलू काम करवाने के विरुद्ध आवाज़ उठायी गयी थी। स्त्रियों को स्कूलों-कॉलेजों में अध्यापिका बनाने एवं नर्सरी का प्रबंध कराने में सफलता प्राप्त हुई। स्त्रियों एवं बच्चों के उत्थान के लिए प्रयत्न वे करती रही। सराह हेल ने अपनी लेखनी भी चलायी। 1823 में अपनी कविताओं की किताब 'दि जीनियस ऑफ ओवलीवियन' के नाम से प्रकाशित हुई। समाज की कई समस्याओं पर उसमें निडरतापूर्वक आवाज़ उठायी गयी थी। अपने जीवन के अंतिम

समय तक सराह हेल ने नारी स्वतंत्रता के लिए लड़ाई लड़ी थी जिसके परिणामस्वरूप एलिजावेथ नामक एक अमरीकी युवती को मेडिकल कॉलेज में प्रवेश मिला था।

विश्व इतिहास के पूँजीवादी युग की एक परिघटना है नारी मुक्ति आन्दोलन। कवयित्री कात्यायनी के मत में- "पश्चिम के देशों में बुर्जुआ जनवादी, क्रांतियों की पूर्व पीठिका तैयार होने के साथ ही यानी प्रबोधन काल के दौर में नारी मुक्ति की चेतना का जन्म हुआ और बुर्जुआ, क्रांतियों के दौर में स्त्री समुदाय ने अपने सामाजिक-राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष की शुरूआत की थी।"[19] पश्चिम में स्त्री-मुक्ति आन्दोलन को विस्फोट के स्तर तक आने में फ्रांसीसी क्रांति, अमेरिकी क्रांति, मज़दूर आन्दोलन, समाजवाद का उदय पुनर्जागरण तथा औद्योगीकरण आदि तक इन्तज़ार करना पड़ा। इस दौर में स्त्रियों ने संगठित होकर अपने विरुद्ध हो रही असमानता, अत्याचार, शोषण के विरुद्ध संघर्ष करना शुरु कर दिया था। सन् 1791 में ओलिंपा ने राष्ट्रीय असेम्बली के समक्ष 'मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा' तैयार करके प्रस्तुत की। बाद में अमेरिकी क्रांति के दौरान मार्सी वारेन और एबिगेल एडम्स के नेतृत्व में स्त्रियों ने पहली बार, मताधिकार और संपत्ति के अधिकार की माँग की थीं। स्त्री समस्याओं को संविधान में शामिल करने के लिए दबाव भी डाला लेकिन बुर्जुआ वर्ग के एक बड़े हिस्से के विरोध के कारण यह संभव नहीं हो सका। 18 वीं सदी के अंत तक आते-आते स्त्रियों ने अपने अधिकारों के लिए लड़ाई मज़बूर की। इस काल में ओलिंपी दि गूजे, अफ्रा जैन, मर्सी वारेटन एबिगेल एडमस, सुसान ऑकिन, मेरी वाल्सटन क्राफ्ट, हारिफ्फ जेलर, जॉन स्टुअर्ट मिल आदि स्त्रीवादी कार्यकर्ताओं ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने के लिए कई आन्दोलन चलाए। तदुपरांत 1791 में कानून द्वारा स्त्री शिक्षा का प्रावधान, 1792 में

एक विज्ञप्ति द्वारा स्त्रियों को नागरिक अधिकार प्रदान करना, 1794 के कानून द्वारा तलाक की प्रक्रिया को आसान बना देना आदि चले। लेकिन स्त्रियाँ मताधिकार से वंचित थीं। मताधिकार मिलने के लिए कई वर्ष और लड़ाई लड़नी पड़ी।

यूरोप (इंगलैंड) में मेरी वाल्सटन क्राफ्ट (1750-1797) द्वारा रचित 'द विंडीकेशन आफ द राइटस ऑफ वूमैन' (स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन) नारी मुक्ति आन्दोलन के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज मानी जाती है। यह नारी के अधिकार एवं प्रतिष्ठा के लिए प्रकाशित सर्वप्रथम रचना थी। उसने स्त्री-पुरुष समानता की बात की थी। विपरीत परिस्थितियों में क्राफ्ट ने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई थी। इसलिए आज भी उसे मुक्ति आन्दोलन की सूत्रधारिणी कही जाती है। उनका मानना था कि स्त्री मात्र पुरुष के उपभोग की वस्तु नहीं है। उसने राजनीति, शिक्षा, नौकरी, घर आदि क्षेत्रों में स्त्री को पुरुष के साथ समान अधिकार मिलने की वकालत की। उनका मानना है कि स्त्री बचपन से ही अपने मानस को शरीर के अनुरूप ढाल लेती है। अपनी पूरी ज़िन्दगी पिंजरे में डालने के लिए भी तैयार होती है। मेरी वोल्सटन क्राफ्ट ने कपटपूर्ण समाज व्यवस्था की प्रखर आलोचना करती थी। समाज ने स्त्री को नारीत्व के आदर्शों के दायरे में जीने के लिए मज़बूर करती थी उनकी पुस्तक के फ्लैश-बैक पर लिखा है- "अभी यह नारीवादी आन्दोलन अपनी सत्ता जमा ही रहा था जैसे 1791 ई. में एक कानून द्वारा स्त्री-शिक्षा का प्रावधान, 1792 की एक आज्ञप्ति द्वारा स्त्रियों के लिए कई नागरिक अधिकारों का प्रावधान तथा एक कानून द्वारा तलाक की प्रक्रिया को आसान बनाने जैसे कुछ कदम उठाए ही जा रहे थे कि थर्मिडोरियन प्रतिक्रिया ने स्त्री आन्दोलन की ये उपलब्धियाँ छीन लीं और स्त्री एक बार फिर परिवार, शादी, तलाक,

अभिभावकत्व और संपत्ति के अधिकारों के मामले में वैधिक तौर पूरी तरह से पुरुषों के अधीन हो गई।"[20]

पश्चिम में नारी मुक्ति आन्दोलन का विकास 19 वीं से लेकर माना जाता है। 19 वीं सदी के प्रारंभ में स्त्रियों ने सामाजिक समस्याओं तथा मानव अधिकार के प्रति ध्यान दिया। समाज-सुधार के लिए वे संघर्ष करती रहीं। इस दृष्टि से 1844 ई. में फ्रांस की 'फ्लोला टिट्स्टन' ने स्त्रियों की माँग प्रस्तुत करने के लिए एक महिला संगठन की स्थापना की थी। इसी बीच सन् 1848 में सिनेका फाल्स, न्यूयार्क में एक महत्वपूर्ण घटना हुई थी। उधर प्रथम 'नारी अधिकार कांग्रेस' हुई थी। इस कांग्रेस में स्त्री स्वतंत्रता पर एक घोषणा पत्र भी ज़ारी किया गया था। न्यूयार्क में सन् 1857 मार्च 8 को विश्व में स्त्रियों का प्रथम प्रदर्शन हुआ। कपड़ा मिलों की कामगार महिलाओं ने न्यूयार्क की सड़कों पर प्रदर्शन चलाया। अधिक वेतन और काम के घंटे घटाने की माँग को लेकर प्रदर्शन किया था। इसी घटना को याद करते हुए 8 मार्च को 'अंतराष्ट्रीय महिला संघर्ष दिवस' के रूप में मनाया जाता है। सन् 1865 में संवैधानिक रूप में नव-मुक्त अश्वेत लोगों को मताधिकार दिया गया। लेकिन स्त्रियों को अब भी इस अधिकार से वंचित किया गया था। सन् 1869 में 'नेशनल वूमन सफ्रेजिस्ट एसोसिएशन' (NWSA) और 'अमेरिकन वूमन सफ्रेजिस्ट एसोसिएशन' (AWSA) जैसी संस्थाओं की स्थापना हुई थीं। इसके फलस्वरूप स्त्रियों ने अपने निजी अधिकारों, विशेषकर राजनैतिक अधिकारों की माँग की थी। सन् 1870 में इन दोनों संगठनों ने मिलकर 'नेशनल अमेरिकन वूमन सफ्रेज एसोसिएशन' (NAWSA) की स्थापना की। अमेरिकी नारी आन्दोलन में इस संगठन का योगदान महत्वपूर्ण है। इस दौरान अंतर्राष्ट्रीय कामकाजी महिलाओं के संघ की

स्थापना से यूरोप तथा रूस की कामकाजी औरतों में एक नयी चेतना आयी। इंगलैंड सहित पूरे यूरोप में स्त्री मुक्ति आन्दोलन ज़ोर पकड़ा था। जॉन स्टुअर्ट मिल (1805-1873) ने इंगलैड में अपनी पुस्तक 'द सब्जेकशन ऑफ विमेन' ('स्त्रियों की पराधीनता') के द्वारा स्त्री मुक्ति की माँग की। साथ ही साथ उसके अधिकारों के लिए भी आवाज़ उठाई। जे.एस. मिल का मानना है कि स्त्रियों को पुरुषों के समान बराबरी का दर्जा मिल जाना चाहिए। उनका विश्वास था कि स्त्री की पराधीनता को मिटाने के लिए उसे शिक्षित होना ज़रूरी है। साथ ही साथ आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होना भी ज़रूरी है। जॉन स्टुवर्ट मिल ने स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को मताधिकारों की माँग के द्वारा उठाया था।

सन् 1865 में एलिजाबेथ मिलर, लूसी स्टोन आदि महिलाओं ने अमेरिका में स्त्री-मुक्ति आन्दोलन की शुरुवात की। 1869 में 'हेग' में महिलाओं की एक युद्ध-विरोधी अंतर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस हुई। महिला मताधिकार की माँग भी इसी वक्त शुरु हुई। 19 वीं सदी के मध्य तक आते-आते समाज में पूँजीवाद का आधिपत्य हो चुका था। पूँजीवादी व्यवस्था में नारी की दशा शोचनीय थी। इस समय कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक ऐंगेल्स का उदय हुए। दोनों मानववाद का समर्थन करते थे। साथ ही साथ नारी समुदाय के शोषण तथा गुलामी के विरुद्ध उन्होंने आवाज़ उठायी। सन् 1884 ई. में एंगेल्स ने एक पुस्तक लिख्रीं "परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति"। स्त्रीवादी विमर्श में इस किताब का महत्वपूर्ण योगदान है। एंगेल्स ने महिलाओं के रोजगार को महत्व दिया। क्योंकि इससे उनकी स्थिति प्रगतिशील बन जायेगी। इसी तरह उन्होंने स्त्री-मुक्ति को आर्थिक स्वतंत्रता से जोडकर देख्रा था। उनका मानना है कि "आधुनिक वैयक्तिक परिवार नारी की प्रत्यक्ष या परोक्ष, घरेलू दासता पर

आधारित है... स्त्रियों की मुक्ति की पहली शर्त यह है कि पूरी नारी जाति फिर से सार्वजनिक उद्योग में प्रवेश करें और इसके लिए यह आवश्यक है कि समाज के आर्थिक होने का वैयक्तिक परिवार का गुण नष्ट कर दिया जाए।"[21] एंगेल्स ने नारी मुक्ति की बातें की। स्त्री और पुरुष को एक दूसरे के विरुद्ध नहीं बल्कि एक साथ मिलकर काम करने की बात की। उन्होंने स्त्री को, घर से बाहर निकलकर काम करने की आवश्यकता को बढ़ावा दी।

इसी तरह 19 वीं सदी के मध्य-तक स्त्री-मुक्ति आन्दोलन पूरे पश्चिम में फैल गये। आन्दोलन का मुख्य मुद्दा मताधिकार ही था। परिणामतः 1869 में केवल टैक्स भरने वाली स्त्रियों को वोट देने का अधिकार मिला। सन् 1918 में ही स्त्रियों को विधानसभा तथा संसद में वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ था। इस समय पूरे यूरोप में महिलाओं के नारे गूँजने लगे थे। 1913 ई. में 'जार' के रूस में महिलाओं ने युद्ध विरोधी नारे लगाकर सड़कों पर जुलूस निकाली थी। 1923 ई. में हज़ारों स्त्रियों ने पेरिस के सड़कों पर प्रदर्शन चलाया। अन्ततः अमेरिका में सन् 1920 में महिलाओं को राष्ट्रव्यापी स्तर पर वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ। ब्रिटेन में 1928 में स्त्रियों को पुरुषों के समान वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ। इसमें ब्रिटेन के दो संगठनों का नाम महत्वपूर्ण हैं। 'नेशनल यूनियन ऑफ वूमेन्स सफ्रेज सोसाइटी' (NUWSS) और 'वूमेन्स सोसिअल एण्ड पोलिटिकल यूनियन' (WSPU)। इन दोनों संगठनों के सम्मिलित काम की वजह से ब्रिटेन में यह कार्य साध्य हुआ था। साथ-ही-साथ फ्रांस में भी 1946 में महिलाओं को मताधिकार प्राप्त हुआ। इसकेलिए काफी संघर्ष करना पड़ा था। 19 वीं सदी के अंत में कुछ सीमित

देशों की स्त्रियों को मतदान का अधिकार मिल गया था। लेकिन 20 वीं सदी के प्रारंभ से नारी को पूर्ण रूप से मतदान का अधिकार प्राप्त हुआ था।

बीसवीं शताब्दी के मध्य तक लगभग सभी पश्चिमी देशों में स्त्री को पूर्ण रूप से मतदान का अधिकार मिल चुका था। साथ ही साथ नारी मुक्ति आन्दोलन की लहर स्वीड़न, रूस, नोर्वे, जर्मन आदि देशों में फैल भी गई। फिनलैंड में 1906 में महिलाओं ने मताधिकार प्राप्त किया। तथा सन् 1907 में नोर्वे की महिलाओं को मताधिकार मिला। समान अधिकार एवं समान वेतन की माँग करके सन् 1909 में 'ऑस्ट्रेलियन नेशनल वुमन' की स्थापना की। बेइजिंग में सन् 1911 में नारी मतदान अधिकार के लिए आन्दोलन चलाया गया। अर्जन्टीनिया में नारी अधिकार संगठन की स्थापना सन् 1919 में हुई थी। सन् 1932 में ब्रज़ील में नारी को मतदान का अधिकार मिला। तुर्की में सन् 1934 एवं सन् 1945 में पुर्तुगाल की महिलाओं को मताधिकार प्राप्त हुआ था। सन् 1950 में फ्रांस तथा इटली में नारियों को मतदान का अधिकार मिल गया था।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद नारी आन्दोलन की गति तीव्र हो गई। इस समय चीन, जापान, भारत आदि देशों में भी नारी जागरण ज़ोर पकडा था। स्त्री मुक्ति आन्दोलन एवं अनेक संगठन सामने आने लगे। कुछ संगठनों ने स्त्रियों के लिए संरक्षणात्मक कानून बनाने की माँग की थी तो अन्य संगठन पुरुषों के साथ बराबरी के लिए आवाज़ उठाई। इस बीच विश्व में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई। संघ ने विश्व भर की स्त्रियों को समान राजनैतिक, सामाजिक व शैक्षणिक अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से स्त्रियों की सामाजिक स्थिति संबंधी आयोग का गठन किया। संघ की इकाइयों, 'अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन' और 'यूनेस्को' आदि की भी स्त्रियों की

समानता के अधिकार के अभियान में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सन् 1945 में पेरिस में 'विमेन्स इन्टरनैशनल डेमोक्राटिक फेडरेशन' की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य यह रहा था कि स्त्री आन्दोलनों को संगठित करके संघर्ष करने का अभियान चलाना। बेट्टी फ्राइडन की अध्यक्षता में सन् 1966 में नेशनल आर्गनाइजेशन ऑफ वूमैन (NOW) की स्थापना हुई। स्त्री के अधिकारों की स्थापना इसका लक्ष्य था। सन् 1971 में कुछ महिला आन्दोलनकारियों ने 'रेप क्रइम सेन्टर' की स्थापना की थी। बलात्कार के शिकार हुई नारियों की मदद करना इसका उद्देश्य रहा है। इस बीच (विमेन एगनस्ट वायालन्स इन पोणोग्राफी एण्ड द मीडिया' नामक संगठन की भी स्थापना की। अश्लील साहित्य के विरुद्ध आवाज़ उठाना एवं पुरुष के शोषण के विरुद्ध संघर्ष करना इसका लक्ष्य था। ऐसी कई संगठन एवं नारी आन्दोलन का प्रभाव दुनिया भर पडा था। नारी समस्याओं पर सोचने के लिए अब सब लोग मज़बूर हो गए। सन् 1975 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने 'महिला वर्ष' घोषित किया। अगला दशक, वर्ष 1985 को 'अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक' के रूप में मनाया गया था।

इस प्रकार नारी की समस्याओं का हल करने के लिए योजनाएँ बनायी गयीं। नारी के संबंध में विचार-विमर्श भी हुआ। आज स्त्री शिक्षा, उसकी समानता, परिवार में उसकी स्थिति आदि को लेकर चर्चाएँ होती रहती हैं। आज स्त्री किसी भी क्षेत्र में पुरुष से पीछे नहीं है। पुरुष के समान वह सक्षम बन गयी है।

1.6.3. स्त्री मुक्ति आन्दोलन : भारत में

पश्चिमी नारी मुक्ति आन्दोलन और भारतीय नारी मुक्ति संघर्ष दोनों का स्वरुप अलग हैं। क्योंकि पश्चिम में नारी, जातीय अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी।

यहाँ भारत में स्त्रियों ने पुरुषों के विरुद्ध लड़ाई नहीं लड़ी। पश्चिम में पुरुष नारी की प्रतिद्वन्दी थी लेकिन भारत में नारी, पुरुष की प्रतिद्वन्दी नहीं थी। क्योंकि भारत की स्त्री-मुक्ति आन्दोलन में पुरुष की भूमिका 'सहयोगी और मार्गदर्शक' की ही है। पुरुष वर्ग ने ही नारी-मुक्ति, नारी-जागरण, नारी शिक्षा जैसे विचारों को प्रश्रय दिया था। अशारानी ब्होरा के अनुसार "भारतीय नारी का मुक्ति-संघर्ष पश्चिम के मुक्ति संघर्ष से बिल्कुल अलग रहा है। वहाँ नारी अपने जातीय अधिकारों के लिए लड़ी, वह आज भी लड़ रही है। यहाँ की नारी पुरुष की प्रतिद्वंद्वी नहीं, सहयोगिनी के रूप में उसके कंधे के साथ कंधा भिड़ाते हुए देश की आज़ादी के लिए, राष्ट्र की मुक्ति के लिए लड़ी और आज भी उस आज़ादी को बनाए रखने के लिए लड़ रही है।"[22] नारी की पतनोन्मुख स्थिति को देखकर पुरुषों ने ही उसे मुक्त करने के लिए कदम बढ़ाया था। नारी को उसका अधिकार, स्त्री-पुरुष समानता, राष्ट्रीय कार्यों में उसकी भागीदारी, स्त्री-स्वतंत्रता आदि के संबंध में उसको जागृत करनेवाला पुरुष ही था।

भारत में नारी-मुक्ति आन्दोलन का अपना एक इतिहास है। पहले सामंतवादी युग में नारी सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित थी। चाहे आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, अधिकार क्यूँ न हो। लेकिन बाद में पूँजीवादी शासनकाल में स्थिति बदल गई। फ्रांसीसी क्रांति, अमरीकी क्रांति जैसे विश्व स्तर की क्रांति का प्रभाव भारतीय नारी पर भी पड़ा था। वैसे सर्वप्रथम यहाँ नारी क्लबों के रूप में महिला संगठन का आरंभ हुआ था। उसमें समानता, विकास और आज़ादी की माँग उठी थी।

भारत में नारी मुक्ति आन्दोलन की शुरुआत समाज सुधारकों एवं राष्ट्रनेताओं ने किया था। इसमें राजाराम मोहन रॉय का ब्रह्मसमाज, दयानन्द सरस्वती का

आर्यसमाज, विवेकानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महादेव गोविन्द रनाडे, बहरामजी मलबारी, गोपालकृष्ण अगरकर, ज्योतिबा फुले, महर्षि घोंडो केशव कर्वे, महात्मा गाँधी आदि समाज सुजारकों का योगदान महत्वपूर्ण हैं। साथ ही साथ अनेक स्त्री नेता भी हैं जैसे श्रीमती रमाबाई पंडिता, श्रीमती एनी बेसेंट, मारग्रेट कज़िन्स, डॉ. सरोजिनी नायडू, श्रीमती मुथ्युलक्ष्मी रेड्डी, श्रीमती अचला बोस, सावित्रीबाई फूले आदि।

1.6.3.1. ब्रह्मसमाज एवं राजाराम मोहन रॉय

राजाराम मोहन रॉय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना सन् 1828 में की। उन्होंने मानवतावादी, प्रगतिवादी दृष्टिकोण का प्रचार प्रसार किया था। समाज के सुधारवादी कार्यों में ब्रह्मसमाज ने विशेष भूमिका निभायी। उन्होंने जनता के सामने क्रांतिकारी विचार रख्रा। इस विचार के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में नवीनता का शंखनाद किया। उनका चिंतन प्रगतिशील रहा है। इसलिए अंधविश्वास, सांप्रदायिक एवं धार्मिक कट्टरता, धर्मों में प्रचलित रुढ़ियों का विरोध उसने किया था। सच्चे अर्थों में उन्होंने ही सुधारवादी आन्दोलनों को जन्म दिया था। राजाराम मोहन रॉय के अथक परिश्रम से सन् 1829 ई. में सतीप्रथा के विरुद्ध कानून पारित किया गया था। इससे स्त्रियों को समाज में आगे बढ़ने का मौका मिला था। ब्रह्मसमाज का मुख्य उद्देश्य नारी-शिक्षा, समाज सेवा एवं आज़ादी की नई चेतना जगाना था। उन्होंने बालविवाह जैसे सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठायी। कहना होगा कि वे एक सच्चे मानवतावादी एवं लोकतंत्रवादी थे।

1.6.3.2. आर्यसमाज एवं दयानन्द सरस्वती

दयानन्द सरस्वती ने सन् 1875 में आर्यसमाज की स्थापना की थी। उन्होंने आर्यसमाज के द्वारा नारी सुधार के लिए अनेक कार्य किये थे। आर्यसमाज के द्वारा हिन्दु समाज में प्रचलित कुप्रथाओं को मिटाने की कोशिश की। कन्याओं के लिए विद्यालय खोलना, पर्दा-प्रथा का विरोध एवं घर के बाहर उसकी स्वतंत्रता पर भी ज़ोर दिया था। नारियों की शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज ने क्रांतिकारी परिवर्तन किये थे। आर्यसमाज संस्था के द्वारा गुरुकुलों तथा कन्या छात्रवासों की स्थापना की। उनका मानना है कि शिक्षित नारी ही अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकती है। सती प्रथा के विरुद्ध भी आर्यसमाज ने आवाज़ उठाई, साथ ही साथ विधवा पुनर्विवाह का भी समर्थन दिया। बालविवाह के विरुद्ध अभियान छेड़ा। यह संदेश भी दिया गया है कि विवाह के लिए माता-पिता की अनुमति ही पर्याप्त नहीं, बल्कि वर-कन्या की अनुमति को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। बहुविवाह का भी जमकर विरोध किया था। परिवार में नारी का स्थान सर्वोपरि मानकर उसे गौरव देने की बात इसमें किया करते थे। दयानंद सरस्वतीजी ने स्त्रियों की मर्यादा करते हुए उसकी मुक्ति और विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

1.6.3.3. विवेकानन्द

विवेकानन्द स्त्री में मातृत्व भाव देखते थे। उनके मन में अपने माँ के प्रति अथक प्यार और आदर थे। वे अपने मन को ऐसा प्रशिक्षण दे रहे थे कि अन्य स्त्रियों के साथ भी ऐसा भाव रखें। स्त्री की आत्म शक्ति पर उनका भरोसा था। उनका मानना है कि 'पाँच सौ समर्पित व्यक्तियों के साथ देश को सुधारने में 50 वर्ष लगेंगे लेकिन 50 समर्पित स्त्रियों के सहयोग से यह कार्य कुछ ही वर्षों में संपन्न किया

जा सकता है। विवेकानन्द ने नारी-शिक्षा पर विशेष बल दिया था। बाल-विवाह का विरोध भी किया था। स्त्रियों को ज्ञान प्रदान करना वे आवश्यक मानते थे।

1.6.3.4. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजाराम मोहन रॉय की तर्कविधि अपनानेवाले एक सशक्त समाज सुधारक थे। विधवाओं की मुक्ति के लिए उन्होंने आवाज़ उठाई। विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया था। उनका मानना है कि विधवाओं को पुनर्विवाह करने से ही नया जीवन जीने का अवसर प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए भी वे काम करते रहे। कन्याओं की शिक्षा के लिए बैथ्यूम कॉलेज की स्थापना की। उन्होंने बहुविवाह का कठोर विरोध किया था। बाल-विवाह के प्रति भी आवाज़ उठाई। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्न के उपरांत 1860 में बालविवाह के विरुद्ध कानून पारित किया था।

1.6.3.5. महादेव गोविन्द रानडे

नारी समस्या को दूर करने के लिए रानडे ने महत्वपूर्ण काम किया है। स्त्री-शिक्षा पर उन्होंने विशेष बल दिया था। अपनी निरक्षर पत्नी रमाबाई को शिक्षित करके उन्होंने इसका समर्थन किया था। इंडियन नेशनल सोश्ल कॉन्फ्रेंस की स्थापना की। बालविवाह का विरोध किया। साथ ही विधवा-पुनर्विवाह का समर्थन भी किया। इससे जुड़कर 'विडो रिमैरिज एसोसिएशन' की स्थापना भी की थी।

1.6.3.6. ज्योतिबा फुले

उन्होंने स्त्री-शिक्षा को बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया था। समाज के पिछड़े वर्ग में शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया। अपनी पत्नी को शिक्षा देकर उन्होंने इस कार्य में अपना योगदान दिया था।

1.6.3.7. महात्मा गाँधी

गाँधीजी स्त्री और पुरुष को बराबर अधिकार देने के समर्थक थे। उनका मानना था कि जब तक स्त्री को अधिकार नहीं मिलेगा तब तक इस देश का विकास नहीं हो पायेगा। उन्होंने स्त्रियों को स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहन दिया। क्योंकि उनके मतानुसार स्त्री को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में समान अधिकार देना ज़रूरी ही है। स्त्री-शिक्षा पर उन्होंने विशेष बल दिया। बाल-विवाह का कटु-विरोध किया तथा विवाह की आयु बढ़ाने पर भी समर्थन दिया। लेकिन विधवा-पुनर्विवाह का विरोध करते थे। उनका यह विचार स्त्री-विरोधी प्रतीत होता है।

1.6.4. महिला उत्थान में महिला सुधारकों का योगदान

1.6.4.1. पण्डिता रमाबाई

उन्नीसवीं सदी में 'पण्डिता रमाबाई सरस्वती' की महिला उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने स्त्री-शिक्षा, पुरुष से स्वतंत्रता एवं देर में विवाह करने के अधिकार का समर्थन किया था। अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दिया। इसकेलिए स्वयं अन्तर्जातीय विवाह भी किया था। स्वामी विवेकानन्द ने रमाबाई की गतिविधियों को देखकर यह विचार किया कि मानव को स्त्रियों के विकास के लिए समान अवसर प्रदान करना चाहिए। क्योंकि स्त्री में अपनी समस्याओं को सुलझाने की क्षमता अधिक होती है। रमाबाई का मानना है कि स्त्रियों की दयनीय स्थिति का कारण उनका अशिक्षित होना ही है। इसलिए रमाबाई ने स्त्रियों को अशिक्षत करनेवाली रुढ़िवादी ब्राह्मण व्यवस्था का कठोर विरोध किया था। नारी उत्थान के लिए सन् 1882 में पूना एवं बम्बई में 'आर्य महिला समाज' की स्थापना की थी।

1.6.4.2. सावित्रीबाई फूले

भारत की क्रांतिकारी नेत्रियों में सावित्रीबाई फूले अग्रणी है। महात्मा ज्योतिराव फूले और सावित्रीबाई फूले दम्पति ने मिलकर महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए काम किया था। नारी समता एवं स्वतंत्रता पर वे बल देते थे। विधवा-पुनर्विवाह को भी प्रोत्साहन दिया गया था। स्त्री-शिक्षा का प्रचार-प्रसार भी किया गया। इसी तरह नारियों के उत्थान के लिए सावित्रीबाई के नेतृत्व में एक संस्था की स्थापना भी की गयी थी- 'महिला सेवा मंडल', यह भारत की प्रथम सेवा संस्था थी।

1.6.4.3. श्रीमती एनी बेसेंट

एनी बेसेंट थियोसोफिकल सोसाइटी की संस्थापिका है। उन्होंने भारतवासी स्त्रियों को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। स्त्रियों में जागृति पैदा करने के लिए इंडियन वूमेन्स एसोसिएशन की स्थापना भी की थी।

1.6.4.4. सरोजिनी नायडू

सरोजिनी नायडूजी ने स्त्री शिक्षा एवं स्त्रियों की स्वास्थ्य-सेवा के लिए विशेष महत्व दिया था। स्त्री-मताधिकार पर भी बातचीत की। अतः स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास भी किया था।

सन् 1979 में थियोसोफिकल सोसाइटी की कई शाखाएँ भारत में खुली। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य नारी स्वतंत्रता ही था। एनी बेसेंट ने सन् 1893 में इसका संचालन ले लिया। सन् 1917 में 'ऑल इंडिया विमेन्स असोसिएशन' की स्थापना हुई। इस समय नारी अधिकार के आन्दोलन शुरू हुए। साथ में 'मारगरेट कज़िन्स'

के नेतृत्व में महिला मतदान आन्दोलन भी चलाया गया। परिणामस्वरूप स्त्रियों को सीमित मताधिकार दिया गया था। बाद में सन् 1925 में श्रीमती सरोजिनी नायडू कांग्रेस अध्यक्ष पद पर प्रथम भारतीय महिला के रूप में आई। उनके प्रयासों के बावजूद सन् 1926 ई. भारतीय स्त्रियों को प्रथम बार चुनाव में भाग लेने का मौका मिला। सन् 1916 में प्रो. कर्बे ने 'इंडियन वूमेन यूनिवर्सिटी' की स्थापना की। इससे स्त्री-शिक्षा को एक नया वातावरण मिला था। 1917 में दक्षिण की नारियों ने मद्रास में स्त्री संगठन स्थापित किया था।

भारतीय महिलाओं की सामाजिक, राजनैतिक व शैक्षिक उत्थान के लिए सन् 1926 में एक संस्था स्थापित हुई थी जिसका नाम है 'ऑल इंडिया विमेन्स कॉन्फ्रेंस'। इसका प्रथम अधिवेशन पूना में सन् 1927 में हुआ। देश के विभिन्न भागों से आकर स्त्रियों ने इसमें भाग लिया। अंत में 'आल इण्डिया वूमेन्स आर्गनाइजेशन' की स्थापना करके अधिकारों के लिए उन्होंने संघर्ष किया।

सन् 1935 में भारत सरकार के अधिनियम के अनुसार 21 वर्ष की सभी नारियों को मतदान का अधिकार मिला। सन् 1943 में स्त्री को आगे बढ़ाने के लिए अनेक संस्थाएँ स्थापित हुई। पंजाब वनिता स्वयं संरक्षण लीग, आध्रा महिला संघ, तमिलनाड्डू गोलडन विमेन्स असोसिएशन आदि। नारी शिक्षा, नारी सुधार, नारी के पुनर्वास, नारी मुक्ति को ध्यान में रखकर अनेक संस्थाओं की भी स्थापना हुई थी। इसमें नारी निकेतन, अखिल भारतीय महिला आश्रम, नारी रक्षा गृह, पश्चिम बंगाल गणतांत्रिक महिला समिति,1982 में ऑल इंडिया जनाधिपत्य महिला संघ, 1954 में नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन विमेन आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी को हर क्षेत्र में पुरुषों के समान प्रतिष्ठा प्राप्त हो रही है। सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक क्षेत्र में नारी की अपनी पहचान प्राप्त हो रही है।

1.7. साहित्य एवं स्त्री विमर्श

दर्पण दीपक के प्रकाश को प्रत्येक कोण में प्रतिबिम्बित कराता है, ठीक वैसी साहित्य भी अपने युग की घटना को अभिव्यक्त करता है। लेकिन किस रुप में देखता है यह अहम बात है। स्त्री और पुरुष परस्पर पूरक मानते हैं। दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व हैं। लेकिन पुरुष की स्वतंत्र अस्मिता मानी गई है। स्त्री की नहीं उसे दोयम दर्जे की प्राणी मानी गई। साहित्य में भी ऐसा ही हुआ था। साहित्य में, स्त्री का स्त्री रुप में वर्णन कभी नहीं किया गया था। कभी उसका वर्णन देवी के रुप में, रमणी नारी, श्रृंगार की मूर्ति, दासी, वस्तु या भोग्या के रुप में चित्रित किया गया था। लेकिन कभी भी उसकी पीड़ा, वेदना, समाज में उसकी स्थिति, उसके स्वत्व के बारे में साहित्यकारों ने ध्यान नहीं दिया था। लेकिन जब यही वेदना, आत्मबोध, पीड़ा असहनीय हो गई तब इसके संबंध में जाँचने के लिए, लिखने के लिए साहित्यकार मज़बूर हो गए थे। साहित्यकार स्त्री के बारे में सोचने लगे। चर्चा करने लगे, विभिन्न दृष्टिकोणों से उस पर विचार-विनिमय करने लगे। इसी तरह साहित्य में स्त्री-विमर्श की नींव आने लगी।

स्त्री की बुरी स्थिति के पीछे उसका स्त्री जन्म ही है। लेकिन स्त्री, जन्म से स्त्रीत्व का भाव लेकर नहीं आती है। उसके अपने आसपास के वातावरण ही उसे इस मानसिकता में तब्दील कर देते हैं। ऐसी मानासिकता में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का हाथ बहुत बड़ा है। पितृ-सत्ता उसे सहनशील, वाणीहीन, लज्जालू बनाकर रखना

चाहती है। इसीलिए लडकी को बचपन से ही चुप रहना या कम बोलने की शिक्षा दी जाती है। डॉ. प्रतिभा पाठक के अनुसार "नर और नारी की मानसिक भिन्नता का अनेक प्रकार से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि नारी की मानसिकता उसकी शारीरिक संरचना-विशेष के कारण ही नर से भिन्न नहीं है। सामाजिक परिवेश, पारिवारिक तथा व्यक्तिगत परिस्थितियाँ, संस्कार और मूल्य सब मिलाकर नारी मानसिकता की निर्मिति होती है। जन्म से लेकर शैशवावस्था तक नर और नारी की मानसिकता में कोई अंतर नहीं होता।"[23] इसी मानसिकता के परिवर्तन साहित्य में भी दिखाई देता है। अतः 'स्त्रीवाद' साहित्य के माध्यम से स्त्री के स्वत्व की पहचान कराना ही है। परिवार में स्त्री की भूमिका, यौन उत्पीड़न, सामाजिक शोषण, देह-मुक्ति, स्त्री-मुक्ति से जुड़ी हर समस्याओं को साहित्य के अंतर्गत चिंतन-मनन या परामर्श करना ही स्त्री-विमर्श है। स्त्री विमर्श मूलतः स्त्रियों को पुरुषों के बराबर, राजनीति, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में अधिकार पाना ही है। यह स्त्री की स्वायत्तता के लिए किए जानेवाला संघर्ष भी है। साथ ही पितृसत्ता और स्त्री विमर्श के साथ अभेध संबंध भी है। साहित्य, समाज सभी क्षेत्रों से स्त्री को ढकेल दिया है। क्योंकि स्त्री आगे बढ़ेगी तो पितृसत्ता के चाल पहचान लेगी, असल में स्त्री विमर्श पितृसत्ता के बंधनों से मुक्त होने का संघर्ष है। उसके प्रति आक्रोश ही है।

1.8. पितृसत्ता एवं स्त्री विमर्श

स्त्री की स्थिति दोयम हैसियत की है। स्त्री और पुरुष का यह भेदभाव ही ज्ञान और अज्ञान, अस्तित्वनिषेध, तर्क, अधिकार, सृजनात्मकता आदि के द्वैत की सृष्टि करता है। यह दोयम हैसियत की बात बहुत पुरानी है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था

का इतिहास भी पुराना है। इसने ही ऐसी एक द्वैत भाव की सृष्टि की है। पितृसत्ता हज़ारों साल से चली आ रही ऐसी व्यवस्था है जिसमें स्त्री पुरुष के अधीन रहती है। पितृसत्तात्मक समाज जिसमें पुरुष निजी संपत्ति का मालिक था। स्त्री को बच्चों एवं संपत्ति पर अधिकार कभी नहीं था। पितृसत्ता ने स्त्री को उपभोग की वस्तु बनायी। उसे साधन के रूप में प्रयुक्त किया।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था का इतिहास बहुत पुराना है। इस व्यवस्था ने स्त्री को पराधीन बना दिया। पुरुषों द्वारा स्त्री को पराधीन बनानेवाले अनेक क्षेत्र हैं। जैसे : स्त्री की यौनिकता पर अधिकार, स्त्री को निजी संपत्ति मानना, स्त्री के श्रम पर अधिकार, स्त्री का आर्थिक स्वतंत्रता पर अधिकार, स्त्री की प्रजनन शक्ति पर अधिकार आदि। स्त्री की यौनिकता पर पुरुष-अधिकार से तात्पर्य है, स्त्री को पुरुष की यौन संतुष्टि का साधन मानना। इसके कारण स्त्री की स्वायत्तता समाप्त करा दी गयी। पुरुष सत्तात्मक समाज ने स्त्री के यौन-संबंधों पर नियंत्रण रखा। ऐसे नियंत्रण से ही स्त्री के लिए कुलीनता एवं मर्यादा जैसी अवधारणाओं का होना अनिवार्य समझा गया। इस स्थिति ने स्त्री के यौन स्वत्व को सबसे बडा स्वत्व बनाया और उसकी रक्षा के बहाने स्त्री अपने अधीन रखने की साजिश चलायी गयी। यौन शोषण के भय को निरंतर बढ़ावा दिया। इस व्यवस्था ने घर से बाहर वेश्यावृत्ति, सेक्स बाज़ार जैसे कार्य व्यापारों को बनाये रखा।

पुरुष लोग स्त्री को अपनी निजी संपत्ति मानते हैं। ऐसे रूप में देखने के कारण उसे मात्र अपनी कामवासना की पूर्ति का साधन मानते हैं। पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को घर संभालनेवाली समझती है। इसलिए आर्थिक उत्पादन क्षेत्र से भी उसे हटा दिया। परिवार का देख-भाल करना मात्र उसका कर्तव्य माना गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा किये गये सर्वेक्षण के अनुसार विश्व भर में स्त्रियाँ कुल कार्य-घंटों का दो-तिहाई श्रम अकेले करती हैं, और कुल संपत्ति के एक प्रतिशत भाग पर ही उनका निजी स्वामित्व है। पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था स्त्री-श्रम को मान्यता नहीं देते है। लेकिन श्रम के भुगतान के रूप में होनेवाली आय का कब्जा पुरुष लोग ही करते हैं। घर से बाहर मज़दूरी करनेवाली स्त्री के श्रम को अवमाननापूर्ण भाव से देख्रा जाता है। घर के काम को निजी दायित्व कह कर उपेक्षित भी करते रहते हैं।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री के संपूर्ण जीवन पर नियंत्रण बना दिया है। परिवार, धर्म, न्यायव्यवस्था, शिक्षा आदि के माध्यम से पुरुष ने अपनी वर्चस्ववादी स्थिति को मज़बूत किया। पितृसत्तात्मक व्यवस्था को बढ़ावा देने में सबसे पहले है परिवार संस्था। क्योंकि परिवार में ही स्त्री-पुरुष की लैंगिक भिन्नता, उत्पीड़न, पुरुष की श्रेष्ठता, स्वामिभाव, यौनिकता सब उभरकर आते हैं। स्त्री को पुरुष के हित का साधन मानते हैं। उसके श्रम, प्रजनन क्षमता, यौनिकता सभी में पुरुष का निर्णय रहा है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था को मज़बूत करनेवाले एक ओर महत्वपूर्ण घटक है ‘धर्म’। विश्व की सभी संस्कृतियों में धर्म का नियंत्रण अभिजात तंत्र एवं सवर्ण जातियों के हाथ में रहा है। जिन्होंने समाज को विविध वर्णों, वर्गों, जातियों, कबीलों में विभक्त कर दिया है, जो अपनी मूल प्रकृति में पुरुषवादी ही हैं। उनकी आचार संहिता स्त्रियों के लिए अनुकूल नहीं थी।

विविध राष्ट्रों के न्याय- व्यवस्था का चेहरा पुरुषवादी ही है। परिवार, विवाह, एवं संपत्ति पर अधिकार के मामलों पर पुरुष के हित की रक्षा के लिए ही विचार किया जाता है। शिक्षा का क्षेत्र भी पितृसत्तात्मक समाज को पुष्ट करता है। स्त्री के लिए परंपरा से शिक्षा के द्वार बन्द करके आये हैं। क्योंकि स्त्री अपने अंधविश्वास एवं

अज्ञान के बीच रहे। स्त्री हमेशा पुरुष पर निर्भर रहे। लड़कों को ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वह स्वयं कर्ता, भोक्ता आदि रूप में रहे।

पितृसत्तात्मक समाज ऐसा समाज है जिसमें पुरुषों का वर्चस्व होता है। प्रभा खेतान ने ऐसा बता दिया कि "पितृसत्ता एक सामाजिक घटना है, हज़ारों साल से चली आ रही ऐसी व्यवस्था है जिसमें स्त्री की अधीनस्थता सर्वविदित है। पितृसत्ता ने स्त्री को अपने ज्ञान की वस्तु बनायी। उसे साधन के रूप में प्रयोग किया-उसके नाम, रूप, जाति, गोत्र सब अपने संदर्भ में पारिभाषित किए। स्त्री का यह अमानवीयकरण दलित के अमानवीयकरण से कहीं ज़्यादा सूक्ष्म है, क्योंकि दलित पुरुष भी तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था का सदस्य है और पुरुषोचित अहंकार के कारण स्त्री का शोषण और उत्पीड़न करने से वह भी बाज नहीं आता।"[24]

लेकिन स्त्री विमर्श स्त्री के लिए सचमुच एक मशाल ही है। स्त्री विमर्श के कारण ही उसे अपने स्वत्व के बारे में सोचने का मौका मिला था। स्त्री विमर्श ने ही स्त्री को साहित्य, समाज विज्ञान, राजनीति आदि की दुनिया में अपने अस्तित्व संबंधी अवधारणा प्रदान की। आज स्त्रियाँ अपने स्वत्वाधिकारों के प्रति जागृत हो गई हैं। अतः स्त्री विमर्श ने पितृसत्ता के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द की है।

स्त्री विमर्श वास्तव में पितृसत्तात्मक समाज में महिला-उत्पीड़न के विरुद्ध विरोध करनेवाली विचारधारा ही है। जिसका मूल विचार है स्त्रियों को भी स्वतंत्रता और समानता प्राप्त हो जाए। 'वस्तु' रूपी दृष्टि से हटकर उसे 'मनुष्य' का दर्जा दिया जाय। इस प्रकार स्त्री-विमर्श वर्तमान समय में एक ज्वलंत मुद्दा बन गया है।

1.9. स्त्री विमर्श के उद्देश्य

- **स्त्री को अपनी 'स्व' की पहचान देना :-**

स्त्री को उससे परिचित कराना स्त्रीवाद का मुख्य उद्देश्य है। पुरुषसत्तात्मक समाज स्त्री को मात्र उपभोग की दृष्टि से देखता है। उसे अपने लक्ष्मण रेखा में घेर कर रखा है। आवाज़हीन और आत्महीन बना दिया है। लेकिन स्त्री विमर्श ने स्त्री को अपने पीछे छिपे गूढ़ रहस्य को समझने का मौका दिया। आज स्त्री अपना अधिकार सिद्ध कर रही है। स्त्री को उसके सामर्थ्य का एहसास हो रहा है। वह संघर्ष करने लगी है। अपने अधिकारों के प्रति जागृत हुई। डॉ. अविनाश कांबले के मतानुसार, अपने स्वत्व की खोज करने वाले स्त्रीमन का सशक्त प्रकटन स्त्रीवाद है।

- **शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने की शक्ति :-**

पितृसत्तात्मक समाज में नारी युग-युगों से शोषण का शिकार हो रहा है। शोषण दुगुनी है। घर और बाहर दोनों स्तरों पर स्त्री को शोषण का सामना करना पड़ता है। यहाँ के धर्म, राजनीति, कानून, संस्कृति सब पुरुष के पक्ष में हैं। और ये सब स्त्री के ख़िलाफ़ भी है। इसी वजह से उसका शोषण दिन-व-दिन बढ़ता जा रहा है। स्त्रीवाद, स्त्री को नई जागृति प्रदान करती है। शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा देता है।

- **समाज में स्त्री को 'मानव' का दर्जा प्रदान करना :-**

वैदिक काल में नारी को समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। सामाजिक, धार्मिक, कार्यों में उसकी स्वतंत्रता थी। लेकिन वैदिक काल के अंत होते-होते स्त्री की स्थितियों में परिवर्तन आने लगा। पितृसत्तात्मक समाज में नारी केवल 'भोग्या',

'भोग की वस्तु' बनकर रह गयी। यह समाज कभी उसे माँ, पत्नी, बेटी के रूप में या कभी शक्तिशाली देवी के रूप में देखना पसंद करता था। लेकिन 'मानव' या 'व्यक्ति' के रूप में कभी मान्यता नहीं दी गयी थी। उसकी अभिलाषाओं को और इच्छाओं को अनदेखा किया गया था। लेकिन स्त्री विमर्श ने स्त्री को सामान्य मानव के रूप में स्थापित किया है।

- **स्त्री की मानसिकता में बदलाव लाना :-**

अगर मन में इच्छा नहीं होते तो कुछ नहीं संभव है। नारी के संबंध में भी यह बात साफ़ नज़र दिखाई देती है। क्योंकि उसकी स्थिति में परिवर्तन लाना है तो सर्वप्रथम उसकी मानसिकता में बदलाव लाना ज़रूरी है। पितृसत्तात्मक समाज ने नारी को पुरुष के अधीन बना दिया है। खुद स्त्री यह स्वीकार करती है कि पुरुष के बिना वह अधूरा है। वह पुरुष के वर्चस्व में जीना चाहती है। अपने अस्तित्व को नष्ट करके वह जीवन गुज़ारती है। स्त्री को बेटी, पत्नी, या माँ के लेबल में रहना अधिक समीचीन लगती है, क्योंकि पितृसत्तात्मक समाज ने उसे ऐसी मानसिकता में रहने के लिए मज़बूर किया था। लेकिन आज स्त्री विमर्श नारी की परंपरागत मानसिकता में बदलाव लाकर उसे अपने 'अस्तित्व' या 'अस्मिता' का रास्ता दिखा रहा है। सुदेश बत्रा ने स्त्री मन को उजागर करके बताया है, स्त्रियों को पुरुष के सामने सिर नहीं झुकाना चाहिए। पुरुष का साथ मिले या ना मिले स्त्री को अपने दिल दिमाग का सहारा लेकर आगे बढ़ना चाहिए। तभी भारतीय स्त्री का सही मुक्ति आन्दोलन संभव है।

- **सामाजिक परिवर्तन एवं स्त्री का सुधार :-**

हम सब समाज के अंग हैं। समाज में परिवर्तन आने से ही हमारी ज़िन्दगी अच्छी बन जाएगी। नारी, समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा है। तो नारी की स्थिति में सुधार लाने के लिए समाज में परिवर्तन अनिवार्य है। पितृसत्तात्मक समाज ने ही स्त्री एवं पुरुष में लिंग भेद के अंतर का निर्माण किया था। इसी कारण से स्त्री को दबाकर रखा गया था। स्त्री विमर्शवादी विचारधारा इस हीन व्यवस्था को मिटाना चाहती है।

- **देह पर्यंत समस्याओं पर विचार :-**

नारी अपने जन्म से लेकर अनेक समस्याओं से गुज़रती रहती है। कहना होगा कि उसका स्त्री जन्म ही उसकी समस्या है। नारी की सबसे बड़ी समस्या उसकी देह है। क्योंकि उसकी देह, मात्र भोग की वस्तु बनी है। अपनी देह से निर्मित अनेक समस्याओं का सामना करना उसकी नियति बन गयी है। पहले-पहल स्त्री को इन समस्याओं का एहसास तक नहीं थीं। देह के कारण ही वह अपने आपको दायरेबद्ध किया गया था। लेकिन स्त्री विमर्श ने स्त्री को इन समस्याओं के प्रति जागृत किया। अब उसे एहसास हुआ है कि देह उसके लिए समस्या नहीं बल्कि सुंदर वरदान है। स्त्री विमर्श ने स्त्री की देह पर्यंत समस्याओं को समाज के केन्द्र में लाकर खड़ा कर दिया।

स्त्री को समाज के साथ जोड़ना, उसका अधिकार उसे देना ही स्त्री विमर्श का उद्देश्य है। स्त्री भी समाज की इकाई है। उसके बिना समाज का विकास अधूरा ही है।

1.10. स्त्रीवाद के भेद

स्त्रीवाद का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। स्त्रीवाद कभी भी पुरुष के विरोधी नहीं है। बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के पुनरीक्षण का महाख्यान है। यह उसकी मुक्ति एवं अधिकारों के प्रति जागृत करता हैं। स्त्रीवादी चिंतकों ने भी इसके संबंध में अपनी मान्यताएँ प्रकट की हैं। इस विचारधारा को विभिन्न भेदों में विभाजित किया गया है।

1.10.1. बुर्जुआ संप्रदाय

बुर्जुआ स्त्रीवाद के अंतर्गत स्त्रियों ने समानता की माँग उठाई थी। 1775 में अमेरिकी क्रांति से ही स्त्री ने अपना मताधिकार एवं संपत्ति के अधिकार माँगकर आन्दोलन की शुरुआत की थी। इसके अंतर्गत स्त्री समानता, स्त्री-शिक्षा आदि अवश्यक बताया गया था।

1.10.2. उदारवादी संप्रदाय (लिबरल फेमिनिज़्म)

सन् 1960 के बाद सामने आनेवाला विचार प्रवाह है लिबरल फेमिनिज़्म। इसके उन्नायकों में जे.एस. मिल, सिमोन द बउवर, तथा बैटी फ्राइडन का स्थान महत्वपूर्ण है। इस संप्रदाय में स्त्रियों के मूलभूत मानवीय अधिकारों के लिए लड़ाई लडी गयी थी। इनका मानना है कि शिक्षा, संपत्ति, वोट एवं उत्तराधिकार के बिना स्त्री की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आएगी। उदारवादी स्त्रीवादियों ने स्त्री और पुरुष में कोई अंतर नहीं देखा है। इसलिए दोनों को विकास के समान अवसर उपलब्ध कराने की बात वे करती हैं। वे लोग स्त्री-पुरुष की समानता एवं स्त्री स्वतंत्र्य की माँग करती हैं। सरला माहेश्वरी ने कहा है, “मेरी वोलस्टनक्राफ्ट ने सबसे पहले

इस बात को स्वीकारने से इनकार किया कि स्त्रियाँ बुद्धि के मामले में पुरुषों से कमज़ोर हैं अथवा छुईमुइपन, नाजुकता तथा सतहीपन उनका नैसर्गिक गुण है। यदि पुरुष और महिलाएँ बुद्धि के समान अधिकारी हैं तो उसका प्रयोग करने की शिक्षा भी उन्हें समान रूप से दी जानी चाहिए। स्त्रियाँ सिर्फ पुरुषों के भोग की वस्तु नहीं हैं, बल्कि एक स्वतंत्र मानुषी हैं जो बौद्धिक शिक्षा पाने में समर्थ तथा उसकी अधिकारी भी हैं। ....चूँकि पुरुषों और महिलाओं की समान मानसिकता ईश्वर-प्रदत्त बुद्धि के अधिकार की हिस्सेदारी पर आधारित है, इन दोनों लिंगों के नैसर्गिक गुण भी समान होने चाहिए।''[25]

लिबरल फेमिनिज़्म में स्त्री-पुरुष समानता का विचार ज़रूर किया है। लेकिन पुरुष-प्रधानता, वर्ण, वर्ग आदि से स्त्री का जो शोषण होता है, उसकी कोई चर्चा इसमें प्राप्त नहीं है।

1.10.3. उग्रवादी/विद्रोही संप्रदाय (रेडिकल फेमिनिज़्म)

उग्रवादी नारीवादियों के मत में 'यौन स्वतंत्रता ही स्त्री मुक्ति है', यह नारा प्रमुख रूप से उभर गया था। सन् 1968 में उग्रवादी संप्रदाय अस्तित्व में आ गया था। उग्रवादी स्त्रीवाद मुख्यतः स्त्री होने के कारण आनेवाले अनुभवों पर आधारित विचारधारा है। इसमें स्त्री के निजी अनुभव, जीवन दृष्टिकोण, एहसास, सुख, दुःख आदि को महत्व दिया जाता है। उग्रनारीवादी विमर्श पुरुषों के विरोध में उठ खड़ा था क्योंकि उसने पुरुष को सत्ता के प्रतीक के रूप में मानता है। औरत की गुलामी का कारण यह पुरुष सत्ता ही है। इसमें आनेवाले उन्नायकों में प्रमुख है 'शुलमिथ फायरस्टोन'। उन्होंने अपनी पुस्तक 'द डायलेक्टिक्स ऑफ सेक्स' में स्त्री की

पराधीनता का कारण उसकी प्रजनन शक्ति को माना है। लेकिन बाद में इस विचार को बदल दिया गया और यह मानने लगा कि स्त्री की प्रजनन क्षमता पर पुरुष का नियंत्रण उसके विकास में बाधक है। इसमें स्त्री की स्वतंत्रता पर बल दिया गया था। चाहे देह की हो या सामाजिक बंधनों की। लेकिन उग्रवादी संप्रदाय ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निहित स्त्री-पुरुष पृथकता को बढ़ावा दिया था। इससे स्त्री-पुरुष के बीच की दूरी बढ़ गयी थी। सरला माहेश्वरी के अनुसार राजसत्ता और पितृसत्ता एक ही है पुरुषों के द्वारा बनायी गयी राजसत्ता में स्त्री की कोई जगह नहीं है। उसमें केवल पुरुषों के हितों का ध्यान होता है। उग्रवादी स्त्रीवादियों ने पुरुषवर्चस्व को ही स्त्री शोषण का कारण माना है।

1.10.4. समाजवादी/मार्क्सवादी संप्रदाय (सोशलिस्ट फेमिनिज़्म)

मार्क्स के चिंतन को आधार बनाकर नारी के सर्वहारा व्यक्तित्व को सूचित करनेवाली विचारधारा ही मार्क्सवादी स्त्रीवाद है। इसमें स्त्री की पराधीनता को उसकी आर्थिक स्थिति से जोड़कर देखी जाती है। इस मामले में एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' में मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धांत का प्रयोग करके यह बताया हैं कि विवाह में पुरुष की श्रेष्ठता उसकी आर्थिक श्रेष्ठता का सीधा परिणाम है। आर्थिक श्रेष्ठता समाप्त हो जाने पर वैवाहिक जीवन में पुरुष की श्रेष्ठता भी समाप्त हो जायेगी। इस प्रकार मार्क्सवाद ने नारी मुक्ति के प्रश्न को महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता के साथ जोड़ा था। उनका मानना है कि स्त्रियों की मुक्ति के लिए समाज की परंपरागत सोच में परिवर्तन लाना ज़रूरी है। साथ-साथ स्त्री की प्रजननात्मक एवं यौन शोषण के विरुद्ध आन्दोलन छेडना चाहिए। "प्रजनन को brute physiological and non-historical relam of

human existence में डालनेवाली मार्क्सवादी व्यवस्था प्रकृति पर मनुष्य की विजय को ही जब उसके विकास की कसौटी मानती है तो प्रजनन आदि सारी प्राकृतिक क्षमताएँ अपने आप आदिम और आध्यात्मिक महत्व की हो जाती है।"[26] मार्क्स ने समाज में नारियों की स्थिति को सामाजिक प्रगति का सूचकांक माना है। इसलिए नारी मुक्ति के प्रश्न को उन्होंने अन्य उत्पीड़ितजनों की मुक्ति के साथ जोड़कर देखते हैं।

1.10.5. मनोविश्लेषणवादी संप्रदाय (फ्रांसीसी स्त्रीवाद)

मनोविश्लेषणवादियों का मानना है कि स्त्रियों में दूसरों के साथ भावनात्मक रूप से जुड़े रहने की क्षमता अधिक है। जो पुरुषों में प्रायः नहीं है। इस क्षमता के कारण वे जल्द भावनात्मक स्खलन का शिकार नहीं होती। लेकिन उनका समर्पण भाव उनकी अस्मिता में बाधक बन जाता है। मनोविश्लेषणवादी संप्रदाय के विकास में फ्रांसीसी स्त्रीवादियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। फ्रेंच स्त्रीवाद भाषा पर ज़ोर देता है। इनके मतानुसार पुरुषप्रधान समाज में जिस भाषा का उपयोग होता है उस पर पुरुषों का वर्चस्व होता है। "देरिदा के संरचनावाद और लाकाँ के मनोविश्लेषणवाद को आधार बनाकर वे प्रतिपादित करते हैं कि स्त्रियों के यौन शोषण का सबसे बड़ा कारक स्वयं भाषा है जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था के संस्कारों, निर्देशों, सिद्धांतों और लक्ष्यों को रोजमर्रा की ज़िन्दगी में गूँथती चलती है।"[27] यह भाषा की पुर्नरचना पर बल देता है। इससे स्त्री की मुक्ति संभव है।

1.10.6. ब्रिटीश स्त्रीवाद

सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में परिवर्तन लाना इसका लक्ष्य रहा है। इसमें लिंग एवं वर्ग के संबंध में विचार किया गया है। साथ ही पितृसत्ता के प्रभाव के कारण स्त्री की शोचनीय स्थिति को भी स्पष्ट किया है।

1.10.7. भारतीय स्त्रीवाद

भारतीय स्त्री का संघर्ष राजनैतिक, सामाजिक एवं जैविक धरातल पर व्याप्त है। पुरुष वर्चस्व को समाप्त कर स्त्री को भी इन क्षेत्रों में समान अधिकार पाने का प्रयास ज़ारी है। परंपरागत और धार्मिक रूढ़ियों को समाप्त करके स्त्री को समानता का स्थान देना इसका उद्देश्य है।

1.10.8. लेसबियन फेमिनिज़्म (समलैंगिकता)

उग्रनारीवादी विमर्श पुरुष के ख़िलाफ़ उठ खड़ा था। पुरुष को प्रतिद्वन्दी माना गया था। क्योंकि उग्रनारीवादी विचारधारा में स्त्रियों की यौन-स्वतंत्रता पर अधिक बल दिया जाता है। यौन-उत्पीड़न को पुरुष सत्ता की प्रतीक माना जाता है। इसे औरत की गुलामी का कारण बता दिया था। पुरुषों के साथ यौन-संपर्क को बलात्कार ही माना गया था। इसके परिणाम के रूप में लेसबियन सोसाइटी सामने आया था। यह एक प्रकार से यौनमुक्ति के क्षेत्र में एक नई क्रांति थी। इसका उद्देश्य था समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था को समाप्त करना।

लेसबियन फेमिनिज़्म में व्यक्ति की निजी फैसले को प्रधानता दी गयी है। इसमें तमाम परंपरागत यौन-निषेधाज्ञाओं के विरुद्ध आवाज़ उठायी गयी है। विवाहपूर्व और विवाहेतर यौन संबंध को इसने समर्थन दिया था। स्त्री का अपना

शरीर पर पूरा हक है। जब चाहे, जिसके साथ चाहे, जिस तरह चाहे वह सेक्स का आनन्द ले सकती है। उनका मानना था कि दो असमान व्यक्तियों के बीच प्रेम नहीं हो सकता है। इसलिए स्त्री-पुरुष भेद को मिटाकर स्त्री जिसके साथ भी चाहे सेक्स का आनन्द कर सकती है। स्त्री को अपनी देह पर संपूर्ण अधिकार है।

1.11. पाश्चात्य स्त्री विमर्श : अवधारणा

स्त्री-विमर्श को दुनिया के सामने लाने में पश्चिमी देशों ने विशेष भूमिका निभाई है। समाज में अत्यंत उपेक्षित तथा तिरस्कृत समझी जाने वाली स्त्री की मुक्ति के पक्ष में सर्वप्रथम आवाज़ पश्चिम में ही उठाई गई थी। पश्चिम में भी स्त्री की स्थिति अच्छी नहीं थी। स्त्री को स्वतंत्र इकाई के रूप में मान्यता नहीं दी गयी थी। साहित्य में भी स्थिति अलग नहीं थी। पुरुष केन्द्रित रचना की दुनिया में कहीं स्त्री को साक्षात् देवत्व की मूर्ति बतायी गयी तो कहीं निम्नतम जीव के रूप में प्रस्तुत की गयी थी। लेकिन कहीं भी स्वतंत्र 'व्यक्ति' या 'इंसान' के रूप में स्थान नहीं दिया गया है। विश्वप्रसिद्ध पाश्चात्य साहित्यकार शैक्सपियर ने 'हैमलेट' में लिखा है। "फ्रेल्टी, दाई नेम इज वूमैन"[28] अर्थात् दौर्बल्य, तेरा नाम स्त्री है। इस तरह पितृसत्तात्मक समाज हमेशा स्त्री को नीचा दिखा रहा था।

परिवार में बचपन से ही स्त्री को मानसिक रूप से गुलाम बनाती चली आई है। उसे त्याग, समर्पण, वफादारी जैसे आदर्शों के पालन किए जाने के लिए मज़बूर किया जाता था। घर के बाहर काम के लिए उसकी शारीरिक संरचना कमज़ोर मानी जाती थी। स्त्री को शरीर से दुर्बल स्थापित किया गया और सामाजिक एवं साहित्यिक संसार से भी उसे दूर हटा दिया गया था।

पुरुष ने स्त्री की पहचान तो उसके देह से किया है। इसलिए स्त्री को घरेलूकार्य एवं मातृत्व के ढाँचे में सीमित करा दिए जाने की साजिश चली। स्त्री के पास जो बौद्धिक क्षमता थी उस को पुरुष लोग नकारते रहे। हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार राजेन्द्र यादव लिखते हैं "स्त्री अपनी बौद्धिक या अन्य उपलब्धियों के लिए जितनी हायतौबा मचाती रहे, पुरुष की जिद है कि साम, दाम, दण्ड, भेद से वह उसे कमर, कूल्हे, नितम्ब छातियों से ऊपर नहीं उठने देगा।"[29] ऐसे, स्त्री को केवल भोग की वस्तु मानकर उसके जीवन की अभिन्न सच्चाई को छिपाकर रखा गया। उसकी अस्मिता को झूठी साज़िशों के अंदर बाँधकर रखा गया था।

जब सबकुछ सहने की सीमा परिधि लाँघकर स्त्री जाती है तब उसके विरुद्ध कटु विद्रोह प्रकट किया जाना के लिए स्वाभाविक कार्य है। पश्चिमी देशों में भी ऐसा ही हुआ था सौकड़ों वर्षों की दासता, उत्पीड़न, यौन-शोषण का शिकार स्त्री ने अपनी मुक्ति के लिए आवाज़ उठाना शुरू कर दिया था। उसने अपने अधिकारों की माँगें की थी, संघर्ष की, और संगठनों की स्थापना भी की थी। ऐसे, नारी मुक्ति आन्दोलन की नींव वहाँ डाली गयी थी। पश्चिम देशों में स्त्री-विमर्श को, राजनैतिक, सांस्कृतिक आन्दोलनों के द्वारा उजागर किया गया था।

स्त्री-विमर्श को साहित्य के क्षेत्र में अंकुरित कराने में भी पश्चिम के देशों में कई रचनाकारों का अथक परिश्रम रहा है। इनमें मेरी वालस्टानक्राफ्ट जॉन स्टुअर्ट मिल, सीमोन द बोउवार, बेट्टी फ्राइडन, केट मिलेट, जर्मन ग्रीयर, सुलोमिथ फायरस्टोन आदि प्रसिद्ध है। स्त्री के मन की परतों को खोलने का प्रयास भी इन्होंने किया है।

1.11.1. मेरी वालस्टानक्राफ्ट

पाश्चात्य साहित्य में स्त्री- विमर्श की दृष्टि से प्रथम बार मेरी वालस्टानक्राफ्ट की पुस्तक 'द विंडीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वूमैन (1792 ई.) आयी जिसका हिन्दी अनुवाद 'स्त्रियों के अधिकारों का औचित्य प्रतिपादन' नाम से किया गया है। इस पुस्तक को स्त्री के अधिकार एवं मुक्ति के लिए प्रकाशित प्रथम रचना मानी गयी है। उसने स्त्री-पुरुष की समानता की बात की। उसने स्त्री की अस्मिता पर ज़ोर दिया। घर, शिक्षा, राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में स्त्री-पुरुष समान अधिकार के लिए लड़ाई लड़ी थी। उनका मानना है कि पुरुष और स्त्री बुद्धि के सामने समान अधिकारी हैं। इसलिए उसका उपयोग ठीक तरह से करने के लिए स्त्री को भी समान रूप से शिक्षा दी जानी चाहिये। औरतें मात्र भोग की वस्तु नहीं हैं। वे स्वतंत्र मानुषी इकाई है। मेरी वालस्टानक्राफ्ट ने समाज में स्त्रियों को समानता मिलने के लिए आवाज़ उठाया था। इसके फलस्वरूप, बाद में स्त्रियों के मतदान के अधिकार, कानूनी अधिकार, राजनीति एवं रोजगार के अधिकार के ऐतिहासिक आंदोलनों का उदय हुआ था।

वालस्टानक्राफ्ट की किताब 'Vindication of the Rights of Women' को नारियों के अधिकारों की बाइबिल कहा जाता है। "नारी आन्दोलन के समूचे इतिहास को यदि हम देखें तो उन सबमें निहित विचारों को किसी न किसी रूप में वालस्टानक्राफ्ट की अवधारणाओं के साथ जोड़कर देखा जा सकता है।"[30]

1.11.2. स्टुअर्ट मिल

मिल ने स्त्री- विमर्श को आधार बनाकर 'द सब्जेकेशन ऑफ वूमैन' शीर्षक पुस्तक लिखी थी। इसका अनुवाद 'स्त्रियों की पराधीनता' नाम से प्रगति सक्सेना ने हिन्दी में किया है। 'मिल' ने अपनी किताब में स्त्रियों की पराधीनता के बारे में ज़िक्र किया है। उन्होंने इस बात को माना है कि महिलाएँ कई अर्थों में पुरुष से कमज़ोर दिखाई देती हैं लेकिन इसकी वजह सामाजिक व्यवस्था और गलत शिक्षा है। उनका मानना है कि स्त्री, पुरुष से पीछे कदापि नहीं है। चाहे बौद्धिक मामले में हो या राजनैतिक, शैक्षिक आदि। लेकिन स्त्रियों को अपनी क्षमता को दिखलाने का अवसर नहीं दिया जाता है। उसे कमज़ोरी की सीमा में रहने केलिए मज़बूर कर दिया गया हैं। मिल ने स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व की माँग की थी। स्त्री को उत्पीड़ित करनेवाले परिवार रुपी संस्था का कड़ा विरोध मिल ने किया था।

1.11.3. सीमोन द बोउवार

फ्रांस में सन् 1949 में स्त्री मुक्ति आन्दोलन की प्रसिद्ध लेखिका 'सीमोन द बोउवार' ने 'दि सेकेण्ड सेक्स' नामक पुस्तक की रचना की। इसमें उन्होंने यह दिखाया कि 'स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि बनाई जाती है'। उनका मानना है कि स्त्री का शरीर ही उसकी गुलामी का कारण है। सीमोन ने बताया कि "शारीरिक एवं मानसिक हीनता तथा कमज़ोरी स्त्री का स्वभाव नहीं है। यह तो पुरुष द्वारा निर्मित परिस्थिति का प्रतिफल है।"[31]

बोउवार पितृसत्ता को नकारती है। खुद की ज़िंदगी के लिए व्यक्ति को ही जिम्मेदार बताती है। मातृत्व को औरत की गुलामी का कारण बताती है तथा स्त्री

को गर्भावस्था, मासिक धर्म, प्रजनन क्षमता आदि प्रक्रियाओं पर जुगुप्सा व्यक्त करती है। यह सब स्त्रियों के लिए बनाये गये जंजाल की तरह बताया है। कुलमिलाकर कहें तो बोउवार ने स्त्रीविमर्श को नए ढंग से विचार किया था। यह विश्वास किया है कि नारी मुक्ति की अनिवार्य शर्त नारीपन से मुक्ति ही है।

1.11.4. बेट्टी फ्राइडन

आधुनिक नारी मुक्ति आन्दोलन की नेत्री है 'बेट्टी फ्राइडन'। उन्होंने सन् 1963 ई. में एक क्रांतिकारी पुस्तक लिखी जिसका नाम है 'दि फेमिनिन मिस्टिक'। यह किताब आधुनिक नारी मुक्ति आन्दोलन को नयी दिशा प्रदान कर रही है। उनका मानना है कि "विश्वयुद्ध के बाद से पुरुष प्रधान समाज ने मनोवैज्ञानिक दबाव डालकर स्त्रियों को वासना पूर्ति का साधन बनने और माँ, गृहिणी तथा उपभोग की भूमिकाएँ स्वीकार करने को विवश किया है। इसके परिणामस्वरूप स्त्रियों की मौलिक प्रतिभा कुंठित हुई है, समाज में उच्छृंखलता और अस्थिरता बढ़ी हैं तथा कार्यक्षेत्र में नारी को बढ़ते कदम अपनी आधी मंजिल से ही फिर पीछे लौटने लगे हैं।"[32]

इस पुस्तक में फ्राइडन ने अमरीकी महिलाओं की स्थिति का चित्रण किया है। स्त्रियों को घर की चहारदीवारी में रहने की कष्टतापूर्ण स्थिति का ऐहसास भी दिलाया है। उसकी स्वतंत्रता एवं उसकी उपलब्धियों की संभावनाओं पर प्रकाश डालने का अहं कार्य किया है। लेकिन फ्राइडन में परंपरागत नैतिकता का गहरा बोध एवं प्रभाव था। इसलिए उन्होंने परंपरागत नैतिकता एवं पारिवारिक जीवन को ठुकराने का कोई मत प्रकट नहीं किया था। इस पुस्तक के माध्यम से

वे स्त्री के प्रश्नों को सार्वजनिक रूप से उठाया। इसके फलस्वरूप इस पुस्तक ने स्त्रियों के मन को अधिक प्रभावित किया था। अनेक स्त्री संगठन सामने आने लगे तथा पुरुष के समान दर्जे की माँग भी करने लगे।

सन् 1966 में बेट्टी फ्राइडन ने नेशनल आर्गनाइज़ेशन ऑफ वूमैन (NOW) की स्थापना की। वे इसकी अध्यक्षा थी। इस संगठन का मुख्य लक्ष्य बुनियादी मानवीय अधिकारों को लेकर चलना था। औरत में अपने अस्तित्व के संबंध में जागृति, स्त्रियों को स्वयं निर्णय लेने का अधिकार, लड़के एवं लड़कियों को समान अधिकार देना, अपनी जीवन पद्धति चुनने का अधिकार, शरीर पर स्त्री का ही अधिकार आदि को इसमें महत्व दिया गया था।

1.11.5. केट मिल्लेट

केट मिल्लेट ने 1970 ई. में 'सेक्सुअल पोलिटिक्स' नामक किताब की रचना की। उन्होंने नारीमुक्ति आन्दोलन को उग्ररुप प्रदान किया। केट मिल्लेट ने पुरुषसत्तात्मक समाज का उग्र रूप से विरोध किया। साथ ही साथ 'मुक्तकाम तथा समलैंगिकता' का समर्थन भी किया था। उनका मानना है कि 'परिवार' स्त्री के लिए कारागर के समान है। क्योंकि पितृसत्तात्मकता का प्रमुख संस्थान परिवार है। परिवार की सीमा से ही लिंग-विभाजन, शोषण आदि होते हैं।

1.11.6. जर्मन ग्रीयर

जर्मन ग्रीयर की किताब 'फीमेल यूनक' में उग्र नारीवादी दृष्टि दिखाई देती है। उन्होंने पितृसत्तात्मक व्यवस्था का कठोर विरोध किया गया था तथा यौन विप्लव का समर्थन किया था। ग्रीयर का मानना है कि- हमें क्रांति लानी है। उनका मानना

है कि स्त्री को मुक्ति चाहिए तो विद्रोह करना ज़रूरी है। विद्रोह ही क्रांति का मार्ग प्रशस्त करता है। क्रांति तभी संभव है जब स्त्रियाँ अपनी मुक्ति के लिए पुरुष प्रधान समाज से लड़ें। स्त्री को ही आगे बढ़ना चाहिए, कोई दूसरा उन्हें मुक्त नहीं करेगा।

1.11.7. सुलोमिथ फायरस्टोन

अतिवादी नारिवादी के रूप में उल्लेखनीय है 'सुलोमिथ फायरस्टोन'। उनकी किताब 'दि डायलेक्टिक्स ऑफ सेक्स' में एक अलग तरह का स्त्री-विमर्श देखने को मिलता है। उनका मानना है कि स्त्री की प्रजनन क्षमता ही उसकी गुलामी का कारण है। इसी कारण पितृसत्ता को फैलने का मौका मिला है। स्त्री की शारीरिक भिन्नता ही स्त्री-पुरुष के बीच का विभाजन का कारण बन गया है।

इसी तरह स्त्री-विमर्श को प्रेरणा देने में इन पाश्चात्य लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। इसके अतिरिक्त बेलरी ब्रायसन (Feminist Political Theory, An Introduction), क्रिस्टबेल पैंकहर्स्ट, लिसे वोगेल, क्रिस्टीन डेल्फी, एम. मोलिनिक्स, मैटी ओ. ब्रियेन (द पोलिटिक्स ऑफ रिप्रोडक्शन), डेल स्पेन्डर (वुमेन ऑफ आइडियाज), मोयरा गेटेन्स आदि लेखकों का नाम भी महत्वपूर्ण हैं। स्त्री के मन में जागृति दिलाने में ये लोग सक्षम हुए हैं।

अतः पाश्चात्य स्त्री-विमर्शवादी अवधारणा में स्त्री-विमर्श पुरुष विरोधी रहा है। वहाँ पुरुष को प्रतिद्वन्दि के रूप में माना गया है। वहाँ स्त्री का उद्देश्य पुरुष को सुधारने का काम रहा है। पुरुष समाज के प्रति घृणा की भावना स्त्री रखने लगी है। साथ ही पाश्चात्य अवधारणा ने परिवार को भी नकारा था। स्त्री स्वयं संसार निर्मित

करने का स्वप्न देख रही है। पुरुष के हस्तक्षेप को मिटाकर पुरुष के बनाये बंधनों से स्वयं को आज़ाद करना चाहती है।

1.12. भारतीय स्त्री-विमर्श : अवधारणा

पूरे संसार में स्त्री-विमर्श साहित्य का एक अहं नारा बन गया है। स्त्री-स्वतंत्रता या अस्मिता के लिए भारतीय संस्कृति में कोई स्थान नहीं मिला। क्योंकि भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज रहा है। भारतीय समाज में पुरुषों ने स्त्रियों को अपने ऊपर आश्रित रखा गया है। उसे शिक्षा, संस्कृति, ज्ञान से दूर रखा गया है। भारतीय संदर्भ में स्त्री-विमर्श पुरुष विरोधी नहीं है। वह पुरुष के प्रति प्रतिद्वन्दिता का भाव नहीं रखता है। वर्तमान समय में स्त्री पुरुष के समकक्ष एक मनुष्य होने के नाते अपने अधिकारों की माँग कर रही है। स्त्री अपने आप को स्वतंत्र इनसान के रुप में स्वीकृति मिलने के लिए संघर्ष करती है।

वैदिक काल में नारी की स्थिति गौरवमयी थी। ऋग्वेद के अनुसार उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। शिक्षा, शस्त्र विद्या का ज्ञान सब प्राप्त हुई थी। लेकिन उत्तर वैदिक काल, महाकाव्य काल, स्मृतिकाल, बौद्धकाल एवं मध्यकाल तक आते-आते स्त्री की स्थिति 'निम्न स्तर' की या पतनोन्मुख हो गयी थी। साथ-ही साथ बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, बहु-विवाह, शिक्षा से दूर रखना, सती-प्रथा आदि कुरीतियों का भी सामना करना पड़ा। आधुनिक काल में अंग्रेज़ों के शासन शुरू होते ही स्त्री को स्कूली-शिक्षा का अधिकार मिला। स्त्री संगठनों का उदय हुआ एवं समाज सुधारकों ने नारी मुक्ति एवं उसके अधिकारों के लिए उपक्रम किए थे। सती प्रथा को बन्द कराया, विधवा पुनर्विवाह, स्त्री-शिक्षा, आदि से स्त्री को आगे बढ़ने का मौका मिला।

तद्पश्चात् आज स्त्रियों के लिए आरक्षण एवं उसकी जागृति के लिए नयी योजनाएँ प्रारंभ की गयी हैं।

भारतीय स्त्री अपने परिवार में रहकर स्वतंत्रता पाने की कोशिश करती है। क्योंकि उसके लिए उसका परिवार विशेष महत्व रखता है। स्त्री, पुरुष से अपने अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयास ज़रूर करती है। इसकेलिए वह सहयोगी दृष्टिकोण अपनाती है। वह अपनी स्वतंत्रता के लिए पुरुषों का सहयोग देती है। भारतीय स्त्री के लिए पुरुष प्रतिद्वन्दि नहीं बल्कि पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था से लड़ाई लड़ी है। भारतीय अवधारणा में मातृत्व को भी उचित स्थान मिला है। यही अंतर भारतीय स्त्री-विमर्श में है। प्रभा खेतान इस संदर्भ में लिखती है, "भारतीय स्त्री खुशी-खुशी समझौता कर लेती है, इसे वह जीवन जीने का एक तरीका मानती है। उसकी इसी क्षमता के कारण भारत में स्त्री की हैसियत में जो परिवर्तन आया है उसमें वह पुरुषों से सहयोग ले सकी है। समस्याओं को केवल स्त्री का मुद्दा न मानकर उन्हें अन्य व्यापक मुद्दों के साथ जोड़ना संभव हुआ है।"[33] भारतीय स्त्री पुरुष व्यवस्था के प्रति विद्रोह करती है। लेकिन पुरुष से मिलकर अपनी पहचान को प्राप्त कर रही है।

यहाँ भारत में स्त्री-विमर्श को साहित्य के क्षेत्र में लाने में कई रचनाकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। उनमें महादेवी वर्मा, अरविन्द जैन, प्रभा खेतान, मृणाल पांडे, अनामिका, राजेन्द्र यादव आदि उल्लेखनीय हैं।

1.12.1. महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा ने अपनी रचना के माध्यम से स्त्री-विमर्श को एक नया मोड़ दिया है। उसके द्वारा रचित 'श्रृंखला की कड़ियाँ' एक महत्वपूर्ण रचना है जिसमें

हमारी सभ्यता और संस्कृति के अनुकूल स्त्रियों की मुक्ति कैसे संभव है इसके बारे में बताया गया है। साथ ही स्त्री लेखन के बारे में भी ज़िक्र है। उनका मानना है कि नारी के लिए नारीत्व अनुभव है। पुरुष के लिए नारीत्व केवल अनुमान ही है। स्त्री-पुरुष की स्वभाव विशेषताओं में भी भिन्नता है। महादेवी वर्मा का मानना है- नारी का मन अधिक कोमल एवं प्रेम-घृणादि भावों से भरी हुई है। इसलिए समाज के उन अभावों की पूर्ति करने में स्त्री सक्षम है। जो पुरुष द्वारा संभव नहीं है। महादेवी वर्मा ने स्त्रियों की आर्थिक आज़ादी पर भी बल दिया है। "यदि उन्हें अर्थ-संबंधी वे सुविधाएँ प्राप्त हो सकें जो पुरुषों को मिलती आ रही हैं तो न उनका जीवन उनके निष्ठुर कुटुम्बियों के लिए भार बन सकेगा और न वे गलित अंग के समान समाज से निकाल कर फेंकी जा सकेंगी, प्रत्युत वे अपने शून्य क्षणों को देश के सामाजिक तथा राजनीतिक उत्कर्ष के प्रयत्नों से भर कर सुखी रह सकेंगी।"[34] सामाजिक जीवन में सामंजस्य लाने के लिए स्त्री को भी घर से बाहर निकलने का मौका मिलना चाहिए। उसे भी अपने नागरिक होने के कर्तव्य को पूरा करने के लिए घर से बाहर स्वतंत्रता देनी चाहिये। हमारे सामाजिक जीवन में सामंजस्य लाने के लिए स्त्री स्वतंत्र होना ज़रुरी है। घर की सीमा के बाहर अपना कार्यक्षेत्र चुनने की स्वतंत्रता उसे देनी चाहिए।

अनुसरण करना मनुष्य जाति की प्रकृति है। लेकिन अंधानुसरण करना मुर्खता ही है। भारतीय स्त्री भी अंधानुसरण करके असंख्य अन्याय सहती आयी है। उसके पास शक्ति है, बुद्धि है, लेकिन सहने के लिए विवश होती है। इसी तरह ये विवेकहीन आदर्शाचरण से अपने व्यक्तित्व एवं समाज के विकास की ओर अधिक संकुचित बनती जा रही हैं। महादेवी वर्मा ने ऐसे स्त्री-विमर्श प्रस्तुत किया है जहाँ स्त्री

शिक्षित हो, घर और बाहर सामंजस्य स्थापित करनेवाली, सामाजिक एवं राजनीतिक अधिकार को प्राप्त करनेवाली हो, आर्थिक रूप से स्वावलम्बी हो, अपनी अस्मिता को पहचाननेवाली हो।

1.12.2. अरविन्द जैन

अरविन्द जैन ने स्त्रियों का अधिकार, कानूनी सुरक्षा के बारे में अनेक बातें बतायी हैं। 'औरत होने की सज़ा', 'औरतः अस्तित्व और अस्मिता', 'उत्तराधिकारः बनाम पुत्राधिकार' आदि स्त्री संबंधित उनके महत्वपूर्ण रचनाएँ उनकी ओर से मिली हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री से जुड़ी समस्याओं को कानूनी दृष्टि से परखने की कोशिश की है। बलात्कार, बाल-विवाह, यौन-हिंसा, भ्रूण-हत्या, विवाह संबंधी बातें आदि विभिन्न पक्षों को विस्तृत रूप से लिखा गया है।

1.12.3. प्रभा खेतान

भारतीय स्त्री-विमर्शकारों के बीच एक महत्वपूर्ण हस्ती है 'प्रभा खेतान'। उन्होंने 'दि सेकेंड सैक्स' का अनुवाद 'स्त्री-उपेक्षिता' के रूप में किया था। उसमें संपूर्ण विश्व में स्त्री की जो स्थिति है उसका विवरण है। उस रचना के माध्यम से स्त्री के प्रति अन्याय, उसकी गुलामी स्थिति, पीड़ा को उन्होंने अनुभव किया है। बाद में 'बाज़ार के बीचः बाज़ार के खिलाफ़;', 'उपनिवेश में स्त्री' जैसी रचनाओं के माध्यम से स्त्री-जीवन के विविध पहलुओं को दर्शाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' के माध्यम से प्रभा खेतान ने खुद अपनी प्रेम, बलात्कार संबंधी बातें सब खुल्लम-खुल्लम प्रस्तुत की हैं।

भूमंडलीकरण के इस दौर में पड़ी स्त्री के बारे में वह सोचती है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने स्त्री को बिकाऊ चीज़ बना दी है। उनका मानना है कि वर्तमान दौर में बाज़ार की चकाचौंध ने स्त्री को उपभोग की वस्तु बना दी है। उसकी अस्मिता को बिकाऊ माल के रूप में तब्दील कर दिया गया है। इसी तरह प्रभा खेतान ने स्त्री-शिक्षा, राजनीतिक स्वतंत्रता, उसका अधिकार आदि पर विशेष बल दिया है।

1.12.4. मृंणाल पांडे

मृंणाल पांडे ने स्त्री-विमर्श को लेकर अनेक पुस्तकों की रचना की हैं। उनमें प्रमुख हैं- 'परिधि पर स्त्री', स्त्री : देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, ओ उब्बीरी आदि। उन्होंने शोषित ग्रामीण एवं शहरी स्त्री, घरेलू महिलाओं का दुःख, मध्य, निम्न, गृहिणी, कामकाजी, दलित आदि स्त्रियों की मनोकामनाएँ, पीड़ा, दुःख, दर्द, विचार और शक्ति के बारे में बताया है। साथ ही नारी के प्रति कल्याणकारी मानवीय दृष्टि भी प्रस्तुत की है। मृंणाल पांडे ने स्त्री की संघर्षमयी रूप को पहचान लिया है। स्त्री-शिक्षा पर भी बल दिया था। उनका कहना है कि एक स्त्री शिक्षित होने से पूरा कुनबा साक्षर हो जायेंगे। उन्होंने स्त्री के प्रजनन के बारे में भी चिंतन किया था। उनके मत में शारीरिक संबंधों के बारे में स्त्री को खुलकर बातें करना ही चाहिए। प्रजनन के समय स्त्री को स्वास्थ्य सुविधाएँ अच्छी तरह से देनी ही चाहिये। मृंणाल पांडे ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था के रूढ़िग्रस्त भावनाओं के प्रति भी आवाज़ उठायी थी।

1.12.5. अनामिका

कवयित्री, स्त्रीवादी लेखिका के रूप में डॉ.अनामिका सुप्रसिद्ध है। स्त्री-विमर्श को लेकर उन्होंने कई रचनाएँ की हैं। जैसे- 'पानी जो पत्थर पीता है', स्त्रीत्व का मानचित्र, स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष, मन माँझने की ज़रूरत आदि। इनमें उन्होंने स्त्री-अस्मिता, स्त्री लेखन, स्त्री के अन्तर्द्वंद्वों, आकुलताओं, महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, भारतीय आर्ष ग्रंथों में स्त्री विषयक मान्यताएँ, समलैंगीकता आदि पर विचार विमर्श किया है। अनामिका स्त्री आन्दोलन को पुरुष-विरोधी आन्दोलन नहीं मानती है। उनके शब्दों में, "दुनिया का इकलौता पूर्णतः अहिंसक आन्दोलन है स्त्रीत्ववादः एक मनोवैज्ञानिक लड़ाई, जिसने मुकाम भी हासिल किया है तो बहनापे के ज़ोर से और युद्ध, दंगे, निःशस्त्रीकरण, रंगभेद की नीति, पर्यावरण और विश्वयान- सभी बृहत्तर प्रश्नों पर अपने उन भाइयों, बेटों और दोस्तों के साथ लगातार जूझ रही है, जो उनकी तरह ही सर्वहारा और आदि-विस्थापित हाशिए के लोग हैं।"[35] अनामिका ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति कट्टर विरोध किया है। वे पुरुष को दोषी नहीं मानती है बल्कि इस व्यवस्था को दोषी मानती है जो पुरुषों को लगातार यह पाठ पढ़ाती है कि स्त्रियाँ उनसे हीन हैं, निम्न हैं। स्त्री मात्र उपभोग की वस्तु है।

परिवार में, घर में, समाज में स्त्री के प्रति होने वाले मानसिक एवं शारीरिक उत्पीड़न का भी उल्लेख अनामिका ने किया है। तथा इन समस्याओं का समाधान ढूँढ निकालने का प्रयास करती नज़र आती है। अनामिका मानती है कि स्त्री की देह ही उसके शोषण का सर्वप्रथम आधार रहा है। स्त्री-पुरुष संबंध देह से नहीं दोनों की

बराबरी एवं दोनों के संतुलन से ही संभव होगा। इसकेलिए पुरुष को अतिपुरुष एवं स्त्री को अतिस्त्री नहीं बननी चाहिए।

1.12.6. राजेन्द्र यादव

राजेन्द्र यादव ने स्त्री से संबंधित अनेक पहलुओं पर विचार-विमर्श किया है। उनके स्त्री-विमर्श संबंधी कृतियाँ हैं- 'आदमी की निगाह में औरत', औरत : उत्तर कथा आदि। इसमें स्त्री स्वतंत्रता, उसकी स्थिति, आदमी किस निगाह से औरत को देखती है, उसकी पीड़ा के बारे में अनेक बातें बता दी है। राजेन्द्र यादव यह स्वीकार करते है कि "स्त्री हमारा अंश और विस्तार है। वह हमारी ऐसी जन्मभूमि है जिसे हमने अपना उपनिवेश बना लिया है। हमारी सोच और संस्कृति के सारे सामंती और साम्राज्यवादी मूल्य उपनिवेशों के आधिपत्य और शोषण को जायज़ ठहराने की मानसिकता से पैदा होते हैं। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दुनिया-भर में जो उपनिवेश भौतिक और मानसिक रुप से स्वतंत्र हुए उनमें 'स्त्री' नाम का उपनिवेश भी है। दलित हमारे घरों और बस्तियों से बाहर होता है। स्त्री हमारे भीतर है, इसलिए उसका संघर्ष ज़्यादा जटिल है।"[36] राजेन्द्र यादव ने स्त्री से जुडी तत्कालीन अनेक घटनाओं पर प्रकाश डाल दी हैं।

इसके अतिरिक्त समकालीन समय में प्रचलित स्त्री-विमर्शी रचनाकारों में राजकिशोर (स्त्री के लिए जगह), आशारानी ब्होरा (नारी शोषण आइने और आयाम), मृदुला गर्ग (चुकते नहीं सवाल), क्षमा शर्मा (स्त्रीत्ववादी विमर्श : समाज और साहित्य), नासिरा शर्मा (औरत के लिए औरत), सरला माहेश्वरी (नारी प्रश्न),

कात्यायनी (दुर्ग द्वार पर दस्तक), राकेश कुमार (नारीवादी विमर्श), तसलीमा नसरीन (औरत के हक में), मनीषा (हम सभ्य औरतें) आदि उल्लेखनीय ही हैं।

पाश्चात्य एवं भारतीय स्त्रीविमर्शवादी अवधारणा में स्त्री की अधीनस्थ स्थिति, पितृसत्तात्मक परंपरा का विरोध एवं उस शोषण को समाप्त करनेवाली बातों पर विचार, स्त्री-उत्पीड़न के विविध रूप, स्त्री अस्मिता पर चिंतन किया गया है। दोनों अवधारणाओं के अनुसार स्त्री की निम्न स्थिति का कारण 'पितृसत्तात्मक व्यवस्था' ही है। पुरुषसत्ता ने स्त्री को अधीनस्थ करके रखा है। भारतीय एवं पाश्चात्य स्त्री विमर्शवादी अवधारणा में पुरुष के प्रति स्त्री-विमर्श का दृष्टिकोण एवं परिवार के प्रति दृष्टिकोण में अंतर ज़रूर है। पाश्चात्य अवधारणा में स्त्री-विमर्श पुरुष विरोधी है जबकि भारतीय अवधारणा पुरुष को प्रतिद्वन्दि नहीं मानता है। भारतीय अवधारणा परिवार को महत्व देती है जबकि पाश्चात्य स्त्री विमर्श परिवार को नकारती है। लेकिन दोनों अवधारणाओं ने समाज में स्त्रियों के विकास के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। पाश्चात्य एवं भारतीय स्त्री विमर्शवादी चिंतक स्त्रियों के अधिकार, स्वतंत्रता, अस्मिता, आदि के लिए अपनी लेखनी को हथियार बनाकर विचार-मनन एवं विद्रोह करते रहते हैं।

निष्कर्ष

स्त्री विषयक चर्चा ही स्त्री-विमर्श है। इसका संबंध समाज की स्त्री की दोयम स्थिति को लेकर किए गए बहस से है। इसमें पितृसत्तात्मक समाज के शोषण एवं अत्याचार के स्वर रहते हैं और उसका प्रतिरोध भी। स्त्री-विमर्श असल में स्त्री अस्मिता और चेतना का दूसरा रूप है। स्त्री की बदलती अस्मिता ने ही विमर्श की भूमिका पैदा की है। पाश्चात्य एवं भारतीय स्त्री विमर्शवादी विचारधारा में स्त्री-

शोषण, पितृसत्तात्मक परंपरा के अन्याय, स्त्री की पहचान, यौन उत्पीड़न आदि के बारे में उल्लेख मिलता है। साथ ही स्त्रीवादी चितंकों ने स्त्री शोषण एवं उसकी अस्मिता के संबंध में अपना विचार भी प्रस्तुत किया है। आज स्त्री में आत्मविश्वास बढ़ रहा है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण स्त्री आज अपने अधिकारों के प्रति जागरूक एवं अस्मिता के प्रति जागृत हुई है। स्त्री-विमर्श सचमुच स्त्री-स्वतंत्रता, स्त्री शक्ति, स्त्री अस्मिता, स्त्री मुक्ति के विकास में प्रभावशाली भूमिका निभा रहा है।

संदर्भ-सूची

1. डॉ. रघुनाथ गणपति देसाई - महिला आत्मकथा लेखन में नारी, ए.बी.एस पब्लिकेशन, प्र.सं. 2012, पृ.63
2. के. मल्लिखार्जुनराव- हिन्दी और तेलुंगु कविता की नारी परिकल्पना, संगम प्रकाशन, प्र.सं. 1983, पृ.10
3. उद्धृत : डॉ. एन.जयश्री- उपन्यासकार कृष्णा सोबती एवं नारी अस्मिता, रोली प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.11
4. पंचशील शोध समीक्षा, जुलाई- सितंबर- 2012, अंक. 17, पृ.68
5. डॉ. प्रतिभा येरेकार-मोहन राकेश के नाटकों में नारी, विकास प्रकाशन, प्र.सं. 2009, पृ.15
6. उद्धृत : डॉ. करुणा शर्मा- कमलेश्वर के कथा साहित्य में स्त्री-विमर्श, नवचेतन प्रकाशन, प्र.सं. 2011, पृ.22
7. सं-फुलदेव सहाय वर्मा, मुकुंदीलाल श्रीवास्तव- हिन्दी विश्वकोश खंड-11, नागरी प्रचारिणी सभा, प्र.सं. 1969, पृ.107
8. उद्धृत : डॉ. वल्लभदास तिवारी- हिन्दी काव्य में नारी, जवाहर पुस्तकालय, प्र.सं. 1974, पृ.63
9. रोहिणी अग्रवाल- साहित्य की ज़मीन और स्त्री- मन के उच्छ्वास- वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2014, पृ.17
10. के. मल्लिखार्जुनराव- हिन्दी और तेलुंगु कविता की नारी - परिकल्पना, संगम प्रकाशन, प्र.सं. 1983, पृ.35

11. आशारानी ब्होरा- भारतीय नारी : दशा और दिशा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं. 1983, पृ.7

12. अर्जुन चव्हाण- विमर्श के विविध आयाम, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2008, पृ.18

13. वाक्, जुलाई- दिसंबर 1983, पृ.229

14. अर्जुन चव्हाण- विमर्श के विविध आयाम, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2008, पृ.30

15. रेखा कस्तवार- स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2006, पृ.163

16. वही, पृ.20

17. मंजु रुस्तगी- अनामिका का काव्य, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2015, पृ.26

18. हंस, मार्च 2000, पृ.95

19. कात्यायनी- दुर्ग द्वार पर दस्तक, परिकल्पना प्रकाशन, प्र.सं. 1997, पृ.104

20. मेरी वालस्टन क्राफ्ट (अनुवादक-मीनाक्षी)- स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2003, पृ. फ्लैश बैक से।

21. उद्धृत : डॉ. करुणा शर्मा- कमलेश्वर के कथा साहित्य में स्त्री-विमर्श, नवचेतन प्रकाशन, प्र.सं. 2011, पृ.66

22. छायादेवी घोरपडे- साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में परिवर्तित नारी जीवन मूल्य, विद्या प्रकाशन, प्र.सं. 2008, पृ.307-308

23. उद्धृतः डॉ. वैशाली देशपांडे- स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार, विकास प्रकाशन, प्र.सं. 2007, पृ.13

24. प्रभा खेतान- उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2003, पृ.39

25. सरला माहेश्वरी- नारी प्रश्न, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.15

26. अनामिका- स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.207

27. रोहिणी अग्रवाल- साहित्य की ज़मीन और स्त्री- मन के उच्छवास- वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2014, पृ.24

28. उद्धृत : डॉ. करुणा शर्मा- कमलेश्वर के कथा साहित्य में स्त्री-विमर्श, नवचेतन प्रकाशन, प्र.सं. 2011, पृ.62

29. राजेन्द्र यादव- आदमी के निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2001, पृ.28

30. सरला माहेश्वरी- नारी प्रश्न, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.16

31. पंचशील शोध समीक्षा, जुलाई-सितंबर 2011, अंक.13, पृ.72

32. एम.ए. अंसारी- महिला और मानवाधिकार, ज्योति प्रकाशन, तृतीय सं. 2007, पृ.13

33. उद्धृत : डॉ. मुक्ता त्यागी- समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी-विमर्श, अमन प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.26

34. महादेवी वर्मा- श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, तृतीय सं. 2001, पृ.22

35. अनामिका- स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.10

36. राजेन्द्र यादव- आदमी के निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2001, पृ. भूमिका से।

दूसरा अध्याय

हिन्दी कविता में स्त्री-विमर्श

2.1. कविता

साहित्य में समाज प्रतिबिंबित है। क्योंकि प्रत्येक देश की अपनी विशिष्ट संस्कृति एवं परिवेश होते हैं जिनका प्रभाव साहित्य पर ज़रूर पडता है। साहित्यकार कभी भी अपने परिवेश को ठुकरा नहीं सकते हैं। जिस परिवेश में वे जी रहे हैं उसका प्रभाव उसकी रचना-लोक का प्रेरक तत्व है। समाज को जगाने का काम साहित्य द्वारा संभव है। विचारों का मंथन साहित्य करता है। समाज को समझने के लिए, आसपास को पहचानने के लिए, सोचने के लिए, न्याय-अन्याय का बोध, और समसामयिक समस्याओं को समझने के लिए साहित्य हमें रास्ता प्रशस्त करता है।

साहित्य की अनेक विधाएँ होती हैं। इनमें एक प्रमुख विधा है 'कविता'। कवि जीवन की बाहर और भीतर की सच्चाई को कविता के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। वे मनुष्य के जीवन एवं अपने आसपास के लोक को काफ़ी विस्तारपूर्वक दृष्टि से देखते हैं, इसलिए तमाम अनुभव उसे आंदोलित कर देते हैं। इसलिए ऐसा कहना ठीक ही है कि कविता लिखना कवि की प्रतिबद्धता है। "कोई भी कविता कवि के जीवन की मात्र प्रतिछाया होती है। यों कविता कवि के अनुभव जगत का प्रेक्षेपण (प्रोजेकशन) अवश्य होता है लेकिन वह कृतिकार की ऐसी आलोक काया है जो समय की सीमा में होते हुए भी प्रेरणा के उन्मेष बिन्दु पर पहुँच कर उसके व्यक्तित्व, उसके समय की सीमाओं का अतिक्रमण कर जाती है। इसीलिए कृति का मूल्यांकन उसकी साहित्यिक श्रेष्ठता, मानवीय संवेदना और कृति में निहित सर्वांग जीवन दृष्टि के आधार पर ही किया जाना चाहिए।"[1] कविता अनुभवों को पहचानने और जीने की प्रक्रिया की अमूल्य अभिव्यक्ति होती है।

आज साहित्य में विमर्श का दौर चल रहा है। इस दौर में कविता भी विमर्श बन गयी है। कविताओं में जीवन और जगत के सत्य और यथार्थ को ढूँढ़ने की क्षमता रहती है और उसे बदलने का सामर्थ्य भी है। धूमिल ने कहा है 'एक सही कविता पहले एक सार्थक वक्तव्य होती है।' कविता जीवन के आधारभूत शब्दों को सही अर्थ देती है। कवि कविताओं में मानवीय दृष्टि अपनाते हैं। कवि हमारी संवेदना को जगाते हैं। बदलते समय एवं परिस्थिति से हमें जागृत करा देते हैं। कविता हमें देखे हुए में भी कुछ नया देखने के लिए अर्न्तनेत्र खोलने की प्रेरणा दी जाती है। कविता मनुष्य को जीवित रहने की प्रेरण देती है। समकालीन हिन्दी कवि अरुण कमल का मानना है कि "कविता मनुष्य की आत्मा का सर्वाधिक प्रतिरोधी, सर्वाधिक सशक्त टीका है- मृत्यु के विरुद्ध कविता एक टीका है।"[2] कविता मानव को समकालीन जीवनानुभूतियों को पहचानने का साधन है। सामूहिक अनुभूतियों को अनुभव कराने का महत्वपूर्ण कार्य भी कविता करती है।

कविता में जन मन को वाणी देने की शक्ति रहती है। समकालीन कविता इसका निशान है। सन् 1960 के बाद समकालीन कविता का विकास हुआ। इसका मतलब है कि यह कविता एक विशेष युग की है, चाहे इसका बीज कविता में पहले भी था। लेकिन पहले की कविताओं में समकालीनता का बोध, एक सीमा तक संकुचित रहा है। और इसमें प्रयोगों की अतिश्यता ही देखने को मिलती है। सन् 1960 ई. बाद के कवियों ने समकालीन बोध को अच्छी तरह पहचानती। इसलिए यह कहा जाता है कि समकालीन कविता सबसे अधिक जोखिम भरे दौर की कविता है। "एक तो उस पर परंपरावादियों द्वारा बुनियादी ढाँचे से मुक्ति के कारण आधुनिकता का आरोप लगाया जाता है, दूसरे आधुनिकतावादियों द्वारा कविता क्यों

का प्रश्न उठाया जाता है और तीसरे उसे दोनों के बीच अपनी अस्मिता की तलाश करनी पड़ती है। ऐसे में समकालीन कविता की पहचान करना समीक्षा का भी जोखिम है।"[3]

समकालीन कविता कालवाची कविता है। अपने समय की सारी गतिविधियों को ग्रहण करने की शक्ति इसमें रहती है। समकालीन कविता का स्वरूप अन्य कविताओं से अलग है। समकालीन कविता "एक कविता की अनुभूति दूसरी कविता की अनुभूति से मिलकर अपने समय की एक समर्थ काव्यानुभूति का निर्माण करती है। लगता है- जैसे अनेक काव्य स्थितियाँ एक-दूसरे के हाथ थामकर जीवन की धरती पर फैल रही हों, आगे बढ़ रही हों, सारे शोर के बीचोंबीच मनुष्यता की संवेदन-लय को बचाए चल रही हों। ... यह आपसदारी, सामूहिकता और सक्रियता समकालीन कविता की बड़ी उपलब्धि है। ...इसकी ख़ासियत है कि यह किसी कवि या कवि-समूह-विशेष की नहीं। कविता की है। उपलब्धि के मामले में संभवतः पहली बार ऐसा हुआ है कि कविता... सर्जक से आगे निकल गई है।"[4]

समकालीन कविता के समय निर्धारण को लेकर काफ़ी चर्चाएँ हो रही है। इसे लेकर सन् 1960 के बाद के दो दशकों से हिन्दी जगत में काफ़ी विवाद रहे हैं। 'अजय तिवारी' 1960 के बाद की लिखी कविता को समकालीन कविता मानते हुए कहते हैं "आजकल जिसे समकालीन कविता कहा जाता है, वह मोटे तौर पर 1960 के बाद की लिखी कविता है। समकालीन कविता में जो बात सबसे अधिक ध्यान खींचती है, यह है स्वाधीनता आन्दोलन की स्मृति और मोहभंग के हैंग ओवर से उसका पूरी तरह से मुक्त होना। यह पूरी तरह से स्वातंत्र्योत्तर पीढ़ी की रचना है।"[5]

'विश्वम्भरनाथ उपाध्याय' के शब्दों में- "समकालीन कविता अपने समय के मुख्य अंतर्विरोधों की और द्वन्द्वों की कविता है- समकालीन कविता में जो हो रहा है (बिकमिंग) का सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमानकाल का बोध हो सकता है। क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते-गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है। आज की कविता में काल अपने गत्यात्मक रूप में ठहरे हुए हैं।"[6]

'डॉ. नंद किशोर नवल' के अनुसार-"सन् 1960 के बाद की कविता का स्वर समकालीन मानव नियति से सीधे साक्षात्कार का ही स्वर है। अभिव्यक्ति के जब पुराने उपकरण, बदले हुए संदर्भों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से अपर्याप्त और अनावश्यक साबित हुए तो नये कवि समकालीन जीवन को परिभाषित करने वाली सर्वथा नयी भाषा की तलाश करने लगे और इस खोज के क्रम में साठोत्तरी कविता की भाषा या स्वर में पूरे तौर पर बदलाव आ गया।"[7] डॉ. ब्रजनाथ गर्ग के अनुसार- "आज का कवि राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का केवल हस्त्र नहीं है अपितु उनके प्रति जागरूक भी है और इसीलिए वह अत्याचार, अनाचार, अन्याय, आर्थिक विषमता, जातीयता, सांप्रदायिकता, अनुशासनहीनता, युवा आक्रोश तथा मूल्यहीन राजनीति को अपनी कविता का विषय बना कर अपने साहस और दायित्व बोध का परिचय दे रहा है।"[8] डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार- "सन् 1960 के आसपास की कविता, नयी कविता से अपने को अलग करती हुई दिखती है।"[9] नरेन्द्र मोहन लिखते हैं "समकालीन कविता केवल परिवेश परिदृश्य चित्रण नहीं है। केवल परिवेशगत यथार्थ के चित्रण या बयान से जैसे कविता नहीं बनती, वैसे ही मानसिक वृत्तियों का विवरण देने से, भी कविता नहीं बनती। सामाजिक,

राजनीतिक स्थिति के बयान भर से, उनका महज चित्रण कर देने से, सामयिक, राजनीतिक समस्याओं और घटनाओं का उल्लेख भर कर देने से परिवेश का केवल सूचनात्मक ज्ञान प्राप्त होता है- यह ऊपरी, सामान्य एवं चालू प्रतिक्रियाओं का एक ढांचा मात्र है। इससे स्थितियों की भीतरी हलचलों, गतिविधियों और क्रियात्मक हलचलों की कोई प्रौढ़ ज्ञानात्मक संवेदना नहीं जग पाती।"[10]

समग्र रुप में यह कहा जा सकता है कि समकालीन कविता छठें दशक के बाद उभरकर आयी काव्य-चेतना है। जिसका आधार यथार्थ है। जीवन की विसंगतियों को इसने विशेष बल दिया है। कविता का व्यक्ति, समाज और तत्कालीन परिवेश के साथ संबंध है और प्रतिबद्धता भी है। इसमें व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश करने की शक्ति है साथ ही आम आदमी के प्रति गहरी संवेदना भी है। यह कविता ज़िन्दगी की अंतर्व्यथाओं को उसी रुप में सीधे प्रस्तुत करती है। अस्मिता, संत्रास, निषेध, प्रतिरोध, आदि सब इसमें पाये जाते हैं। कुल मिलाकर कहें तो समकालीन कविता यथार्थ और सपाट देखने तथा कहने की कविता है।

2.2. हिन्दी कविता में स्त्री-विमर्श : स्वरुप

हिन्दी कविता में हमेशा 'स्त्री' एक प्रमुख विषय रहा है। विभिन्न कालों में कवियों ने अपने-अपने ढंग से एवं युगीन परिस्थितियों के अनुकूल नारी के जीवन के सभी पहलुओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। आदिकाल से लेकर अद्यतन काल तक स्त्री को साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान मिला है। खासकर कविता में उसको यथोचित महत्व दिया गया है। कवियों ने तत्युगीन समाज में स्त्री से संबंधित समस्याओं एवं विसंगतियों का चित्रण किया था लेकिन उसमें आक्रोश की रीति कम थी। पर समकालीन दौर की कविता में आक्रोश का प्रखर स्वर सुनाई पड़ता है।

क्योंकि आज साहित्य जगत में 'स्त्री-विमर्श' को जगह दी गयी है। याने साहित्य में, कविता में स्त्री के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, पारिवारिक आदि सभी पक्षों की समस्याओं पर विचार-विमर्श किया जाता है। साथ ही उसका समाधान भी ढूँढ़ता नज़र आता है।

समकालीन कवियों की रचनाएँ स्त्री अस्मिता की खोज करती हैं। सदियों से व्यथित स्त्री को केन्द्र में लाने के लिए एवं उसे अपने अधिकार से अवगत कराने के लिए कवि लोग अपनी कृतियों के द्वारा संघर्षरत हैं। अनामिका के अनुसार "कविता चाहती है संवाद-आत्मा का आत्मा से, प्रिय का प्रिय से, कटु का मधु से, कल्पना का यथार्थ से, शिल्प का कथ्य से, इन्द्रियों का इन्द्रियों से, सुख का दुख से, रूप का अरूप से, भाव का रस से, अतीत का वर्तमान से, परंपरा का प्रयोग से- मनुष्य का मनुष्य से।"[11] आदिकाल से लेकर आज तक की हिन्दी कविता में स्त्री-विमर्श के बहुआयामी रूप हमें प्राप्त होते हैं।

2.3. आदिकालीन काव्य में स्त्री-विमर्श

हिन्दी साहित्य के आदिकाल की अवधि सन् 769 ई. से 1418 ई. तक माना जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह काल हर्षवर्धन साम्राज्य के पतन से शुरू होता है। ऐसे में भारत पर मुसलमानों के आक्रमण निरंतर हो रहे थे। युद्ध बढ़ते रहते थे। युद्धों का कारण राज्य-प्रलोभन और नारी के प्रति आकर्षण रहा करता था। यह काल युद्धों का काल था। देश भक्ति नामक की कोई चीज़ इसमें कही भी नहीं दिखाई देती थी। इसके साथ सामन्तवाद का स्वर भी उस समय ऊँचा सुनाई पड़ता था। समाज में स्त्रियों की स्थिति बेहद दयनीय थी। पुरुषों के लिए स्त्री मात्र मनोरंजन की सामग्री के अतिरिक्त कुछ नहीं समझी जाती थी। राजपूत नरेशों के यहाँ

स्त्री सिर्फ भोग की वस्तु थी। तत्कालीन राजपूतों के हाथ में अतुल धन-संपत्ति रही थी। ऐसी आर्थिक स्थिति में उनके यहाँ सुन्दरियों के लिए अपार धनराशी का व्यय किया जाता था। स्त्री को मात्र देह मानी गयी है और मनोरंजन की चीज़ समझी गयी थी। धार्मिक स्थिति भी स्त्री के अनुकूल नहीं थी। धर्म के नाम पर निम्न-वर्ग की नारियों के साथ मनमानी चलती थी और उनके ऊपर कामाचार बढ़ता गया। इस समय बौद्ध-धर्म की प्रसिद्धि का ह्रास हो रहा था। बौद्ध धर्म ने आगे चलकर महायान, वज्रयान, सहजयान आदि कई रूप धारण कर लिये। इन संप्रदायों ने नारी के साथ न्याय नहीं किया। सिद्धि-लाभ के लिए नारियों के साथ भोग किया। नारी, पुरुष की भोग-सिद्धि का साधन बन गयी।

आदिकाल में अनेक संप्रदायों की साहित्यिक-धारणाएँ प्रचलित थीं। सिद्ध, नाथ, जैन इनमें मुख्य हैं। रासो साहित्य भी इस समय प्रचार में था। कवि लोग राजाश्रित चारण थे। उनका लक्ष्य था राजा के पराक्रम का वर्णन करना। रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार “जो भाट या चारण किसी राजा के पराक्रम, विजय, शत्रु, कन्या-हारण आदि का अत्युक्तिपूर्ण आलाप करता था, रणक्षेत्रों में जाकर वीरों के हृदय में उत्साह की उमंगें भरा करता था, वही सम्मान पाता था। जहाँ राजनीतिक कारणों से भी युद्ध होता था, वहाँ भी उन कारणों का उल्लेख न कर कोई रूपवती स्त्री का ही कारण कल्पित करके रचना की जाती थी।”[12] इस युग के काव्य में श्रृंगार रस का जमकर वर्णन मिलता है। लेकिन प्रधान रस वीर ही था।

2.3.1. सिद्ध काव्य- सरहपा

सिद्ध साहित्य में स्त्री भी वर्ण्य विषय था। लेकिन उसका रूप भोग्या का था। “सिद्ध प्रायः अशक्षित और हीन जाति से संबंध रखते थे, अतः उनकी साधना की

साधनभूत मुद्रायें-कापाली, डोम्बी आदि नायिकायें भी निम्न जाति की थीं क्योंकि उनके लिए ये ही सुलभ थीं। इनकी सांध्य भाषा की उलझी हुई शब्दावली में उनके अधकचरे दार्शनिक (Psudo Philosophers) होने का आभास भले ही मिल जाये किंतु असल में वे दार्शनिक नहीं और न ही दर्शन की कोई ऊँची वस्तु देना उनका उद्देश्य था। उन्होंने धर्म और अध्यात्म की आड़ में जन-जीवन के साथ विडम्बना करते नारी का उपभोग किया। बस यही उनका चरम गन्तव्य था। उनके कमल और कुलिश योनि और शिश्न के प्रतीक मात्र हैं।"[13]

"खाते पीते सुखहि रमन्ते। नित्य पूर्ण चक्रहु भरले।।
अइस धर्म सिध्यइ परलोका। नाथ पाइ दलिया ममलोका।।"[14]

सिद्ध साहित्य में भोग में निर्वाण की भावना देखने को मिलती है। उनका मानना है संसार रुपी विष से मुक्ति के लिए स्त्री रुपी विष की ज़रुरत होती है।

2.3.2. नाथ काव्य- गोरखनाथ

नाथ साहित्य के प्रवर्तक गोरखनाथ ने नारी से सदा दूर रहने का आदेश दिया था। उन्होंने नारी को जीवन-साधना में बाधक समझता था। गोरखनाथ ने कहा है-

"पास बैठी सोभै नहीं; साथ रमाई भुंडि।
गोरख कहै असतरी कहा सलई कहै मुंडि।।
बाये अंगे सोइबा जमचा
भोग बा संगे न वीणा पाणी?"[15]

निवृत्ति के मार्ग में स्त्री को बाधा ही समझते थे। इसलिए उसकी निंदा की गयी थी।

2.3.3. जैन काव्य- स्वयंभू

जैन साहित्य में भी स्त्री के प्रति हीन भावना देखने को मिलती है। नारी पर पुरुष के अत्याचार ही दिखाई पडते हैं। स्वयंभू ने नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट की है। लेकिन यहाँ अग्नि परीक्षा के बाद जब राम ने सीता से क्षमा-याचना कर ली तब सीता ने ऐसा कहा 'इसमें किसी का दोष नहीं है। दोष सिर्फ कर्म का है। ऐसे दोष से मुक्ति मिलने के लिए एकमात्र उपाय है फिर स्त्री योनि में जन्म न लेना पड़े।'

> "एवहि तिह करोनि पुणु रहुवई।
> जिहण होमि पडियारे तिय मई।"[16]

इसमें भी स्त्री की दयनीय स्थिति का चित्रण है।

2.3.4. रासो काव्य- चन्दबरदाई

वीरगाथात्मक रासो ग्रंथों में स्त्री केवल आलम्बन के रूप में चित्रित है। नारी के रूप वर्णन के साथ-साथ षट्ऋतुओं का वर्णन भी मिलता है। नारी सौन्दर्य के वर्णन में श्रृंगार रस, यौवनागमन, अनुराग, वस्त्रों और आभूषणों का अलंकरण, प्रथम मिलन, विरह एवं नारी का नखशिख वर्णन ही पाया जाता है।

> "नयननि कज्जल रेख तिकख तिकखन छवि धरिय।
> श्रवननि सहज कटाच्छ चित्ताकर्षन ठान ठरिय।।
> भुज मृणाल कर कमल उरज अम्बुज कालिय-दल
> जंघ रंभ कटि स्पंग गमन दुति हंस करि दल।।"[17]

नारी के नयन, श्रवण, भुज, हाथ के वर्णन के लिए कवि ने जो चित्र खींचे हैं, वे तो अद्वितीय हैं। उनमें रूपकों के इस्तेमाल के द्वारा श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति पर बल दिया है। यहाँ स्त्री का वास्तविक समग्र स्वत्व के स्थान पर श्रृंगारिक गुण को प्रमुखता दी गयी है। वास्तव में स्त्री के बहुआयामी व्यक्तित्व को अनदेखा किया है और उसके व्यक्तित्व के विकास को रोका गया है। मध्ययुगीन स्त्री को पुरुष की वासनानुभूति एवं अति कामुकतामयी रसिकता का शिकार सोचा गया था। इन काव्यों में कहीं भी स्त्री मुक्ति या अस्मिता की चर्चा नहीं हुई और नारी का अपना स्वर मुखरित नहीं है।

2.4. भक्तिकालीन काव्य में स्त्री-विमर्श

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तिकाल का निर्धारण 1318 से 1643 ई. तक किया है। भगवत धर्म के प्रचार के परिणामस्वरुप भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था। साथ ही साहित्य के क्षेत्र में भी भक्तिविषयक काव्यों की बाढ़-सी आ गयी। ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्व-मध्यकाल का आरंभ दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के राज्यकाल में हुआ। प्रायः यह काल विक्षुब्ध और संघर्षमय काल था। धार्मिक स्थिति भी अनुकूल नहीं थी। बौद्ध धर्म के विकृत आचरण के लिए स्त्रियों को अनेक प्रकार के जन्त्र, मन्त्र, अभिचार का सामना करना पड़ा था। स्त्री के प्रति वासनात्मक संबंध को साधना का आवश्यक अंग समझा जाता था। उस समय की सामाजिक स्थिति भी स्त्री के अनुकूल नहीं थी। जाति-पांति के बन्धन में भी स्त्री का हाल बेहाल था। पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह जैसी कुप्रथाओं का प्रचलन उस समय शुरु हुआ।

इस युग में भक्ति की अनेक परंपराएँ सक्रिय रही थीं। इनमें ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रमी, कृष्ण भक्ति तथा राम भक्ति की धाराएँ प्रमुख्र हैं।

2.4.1. ज्ञानाश्रयी काव्यधारा- कबीर

ज्ञानाश्रयी काव्यधारा में संत कबीर प्रमुख्र थे। संत सदैव नारी के कन्या रुप, पत्नी रुप तथा जननी रुप के प्रशंसक थे। लेकिन धर्म विराग और त्याग के मार्ग में स्त्री को इन्होंने बाधा मानी और उसकी भर्त्सना की है। कबीर ने माया को नारी-रुप में चित्रित किया था साथ ही उसे पापिनी, डाकिनी भी वे कहते हैं। उनका मानना है कि कनक और कामिनी दोनों दुर्गम घाटियाँ हैं। नारी के संग पड़ने से अंधेरा फैल जाएगा।

"नारी की झाईं परत अन्धा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कहा गति नित नारी के संग।।"[18]

कबीरदास ने पतिव्रता को अत्यंत आदर एवं भक्ति का पात्र कहा है। उनके द्धारा दांपत्य प्रेम से सम्बन्धित कई शब्द प्रयुक्त हुए हैं- जैसेः दूल्हा, दुलहिन, घूँघट, सेज आदि। पतिव्रता को कबीर ने अपनी आराधना का आदर्श माना है।

"पतिव्रता का एक पति, दूजा नाहिं सुहाय।
सिंध सदा लंघन करै, तो भी घास न घाय।
पतिव्रता मैली भली, काली कुचनल कुरुप,
पतिव्रता के रुप पर, वारों कोटि सरुप।"[19]

परमात्मा की भक्ति के लिये कबीर ने दांपत्य प्रेम को ही प्रतीक माना है। उसमें आत्मा को पत्नी के प्रतीक और परम पुरुष को पति के रूप में मानकर वर्णन किया है।

कबीर भक्त और पतिव्रता को एक ही कोटि में रखकर मान्यता देते हैं। 'हज़ारीप्रसाद द्विवेदी' का मानना है- "कबीरदास भक्त और पतिव्रता को एक ही कोटि में रखते थे। दोनों का धर्म कठोर है दोनों की वृत्ति कोमल है, दोनों के सामने प्रलोभन का दुस्तर-जंजाल है, दोनों ही कांचन धर्मी हैं... बाहर से मृदु भीतर से कठोर, बाहर से कोमल, भीतर से परुष। सबकी सेवा में व्यस्त पर एक ही आराधिका पतिव्रता ही भक्त के साथ तुलनीय हो सकती है।"[20]

कबीरदास ने नारी के तीन रूपों- आराधिका प्रकृति, पतिव्रता गृहिणी और माया फैलानेवाली कामिनी माना हैं। इसमें पतिव्रता को ही उन्होंने मान्यता दी है। उनका मानना था कि स्त्री का कामिनी रूप मोक्ष-प्राप्ति में बाधक है।

ऐसे, संत कवि यद्यपि भक्ति के क्षेत्र में उदारता दिखाई थी, फिर भी स्त्री को आदरणीय स्थान नहीं देते थे। उनके यहाँ स्त्री को माननीय स्थान नहीं मिला था। यही नहीं, स्त्री को ईश्वर के मार्ग में बाधा भी मानी गयी थी।

2.4.2. प्रेमाश्रयी काव्यधारा- जायसी

निर्गुण धारा की प्रेममार्गी शाखा को प्रेमाश्रयी काव्यधारा, सूफी काव्य आदि नामों से पुकारा जाता है। इस काव्यधारा के काव्यों में प्रेम की प्रधानता है। लेकिन इसका प्रेम तत्व परंपरागत श्रृंगार प्रेम भावना नहीं है। इस में संसार से विरक्त होकर परमात्मा के प्रेम में लीन होने के लिए प्रेम तत्व को स्वीकारा गया है। इसलिए प्रेम

को ही सर्वोच्च स्थान दिया गया है। उस परमात्मा तक पहुँचने के लिए सभी प्रकार की साधना करने के लिए वे तैयार थे। सूफी ऐसे साधक थे जो इस संसार से विरक्त होकर परमात्मा तक पहुँचने के लिए प्रेम में लीन रहते थे। सूफी मत के अनुसार ईश्वर के साथ तादात्म्य का एकमात्र उपकरण प्रेम है। यह प्रेम लौकिक से अलौकिक प्रेम की ओर उन्मुख था।

सूफी काव्य में स्त्री को आध्यात्मिक दर्जा मिला है। सूफियों ने ईश्वर को पत्नी के रूप में स्त्री की कल्पना की है, साथ ही साधक को पति रूप में। स्त्री यहाँ परमात्मा का प्रतीक है। नारी को यहाँ अपनी प्रेम साधना के साध्य रूप में स्वीकार किया है। इसके कारण सूफी काव्य में स्त्री, प्रेमी के लौकिक जीवन की भोग्य वस्तु नहीं रह जाती है बल्कि उसे उच्च और आदर्शपूर्ण स्थान दिया जाता है। नारी को अनन्त का प्रतीक माना है। जायसी का 'पद्‌मावत' जो सूफी प्रेमाख्यान परंपरा का प्रसिद्ध महाकाव्य है। 'पद्‌मावत' के नारी पात्र 'पद्‌मावती', और 'नागमती', दोनों उज्ज्वल नारी चरित्र हैं। ये नारियाँ वासना और भोग-विलास की मूर्तियाँ नहीं हैं बल्कि उपासना की देवियाँ हैं। जायसी नारी को बड़े आदर से देखते थे। जायसी की प्रसिद्धि का आधार ग्रंथ है 'पद्‌मावत'। उसमें पद्‌मावती ईश्वर का रूपक है। जीवात्मा रत्नसेन उसकी खोज में भटकता है। नागमती माया का रूपक है जो उसके मार्ग को रोकती है। लेकिन आत्मा परमात्मा से मिलन के लिए व्याकुल है। ऐसे अनेक प्रसंग हमें मिलते हैं जिनमें स्त्री को महत्व और आदर दिया गया है। जायसी के पद्‌मावत में मध्ययुगीन समाज में पुरुष मानसिकता और स्त्री की स्थिति सामने आ जाती है। सामंती समाज में एक तरफ स्त्री की पराधीनता की स्थिति प्रस्तुत की गयी है तो दूसरी तरफ़ स्त्री को आध्यात्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ देखी गयी है।

जायसी ने पद्मावत में स्त्री की पराधीनता का भी चित्रण किया है

"ऐ रानी मन देखु विचारीं। यह नैहर रहना दिन चारी।
जौ लहि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहि जौं खेलुह आजू।।
....
....
पिउ पिआर सब ऊपर सो पुनि करैं दहुं काह।
दहूँ सुख राखै की दुख दहुँ कस जनम निबाह।।"[21]

पद्मावती अपनी सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान करने जाती है। वहाँ विवाहोपरांत जीवन के बारे में बातें करती है कि ए रानी! नैहर में चार दिन रहना है, कल ससुराल जाना होगा, जब तक पिता का राज है, जो खेलना है, खेल लो। ससुराल में जाने के बाद साथ मिलकर खेलना हो सकेगा? और यह भी पता नहीं कि प्रिय हमें सुख से रखेगा या नहीं, पता नहीं आगे की ज़िन्दगी किस प्रकार होगी। इसी प्रकार 'पद्मावती' के माध्यम से स्त्री जीवन की पराधीनता का उल्लेख मिलता है।

सूफी कवियों ने प्रेमिका को परमात्मा का प्रतीक माना है। नारी अपनी अलौकिक शक्ति से विश्व को विमोहित कर लेती है। जायसी ग्रंथावली में –

"हौं कविलास काहलै करऊं, सोइ कविलास लागी ओहि मरउं।
ओहि के वार जीवनहिं वारौं, सिर उतारि निछावरि डारौ।"[22]

नारी रुपी दिव्यशक्ति के साक्षात्कार मिलने पर पुरुष बेसुध हो जाता है। उस अलौकिक परमात्मा के साक्षात् करने वाले व्यक्ति को स्वर्ग की इच्छा नहीं होगी। अतः अलौकिक रुप सौन्दर्य को आत्मसात करना जीवन का परम लक्ष्य है।

2.4.3. रामभक्ति काव्यधारा- तुलसी

मध्ययुग में राम और कृष्ण-दो-अवतारों के आधार पर सगुण संप्रदाय की स्थापना हुई। इस संप्रदाय में ईश्वर सगुण है। इन कवियों ने भक्ति को ही अपनी उपजीव्य के रुप में ग्रहण किया था। राम भक्ति धारा का विकास ईसा की छठी शताब्दी के बाद हुआ था। रामभक्त कवियों के उपास्यदेव राम विष्णु के अवतार हैं। राम काव्य में समन्वय की भावना एवं लोक-कल्याण की भावना मिलती है। राम भक्त कवियों ने ज्ञान, भक्ति और कर्म के बीच समन्वय स्थापित किया, उनका राम आदर्श पुरुष है। उनके मतानुसार राम सर्वगुण संपन्न है। साथ ही पाप विनाशक, शक्ति एवं समन्वय की मूर्ति हैं।

रामभक्ति के प्रचार-प्रसार में तुलसीदास की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। तुलसीदास ने अपने काव्य में नारी का चित्रण किया था। तुलसीदास 'पतिव्रता' नारी को उत्तम स्त्री मानते थे। उनका मानना था कि पतिव्रता के धर्म का पालन करना स्त्री के जीवन का साध्य होना चाहिए। पति की सेवा करके ही स्त्री को मोक्ष की प्रप्ति मिलती है।

"वृद्ध रोगबस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहुं पति का किए अपमाना। नारी पाव जमपुर दुख्र नाना।"[23] ----

चाहे पति वृद्ध, रोगी, जड़, निर्धन, क्रोधी, दीन, अंधा आदि हो, लेकिन ऐसे पति की सेवा करना पत्नी का धर्म है। ऐसे पति का अपमान करने से स्त्री यमपुर में भाँति-भाँति के दुःख पाती है। पति को प्रभु समझकर सेवा करना उसका धर्म माना गया है। इसलिए तुलसी ने सीता को आदर्श स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया है। सीता अपने पति के साथ रहकर सारे के सारे कष्टों को झेलने के बावजूद सुख का अनुभव करती है। इसी तरह तुलसी की दृष्टि में पतिव्रता स्त्री ही आदर का पात्र है। स्त्री विमर्श की दृष्टि से तुलसीदास के स्त्री सम्बन्धी विचार स्वीकार्य नहीं। वे अपने युग की सामंतवादी स्त्री दृष्टि से आगे, नहीं सोच सकें।

तुलसीदास ने स्त्री की खूब निंदा भी की है। उसे 'ढोल, गँवार, शूद्र, पशु नारी/ये सब ताड़ना के अधिकारी' कहकर स्त्री को भी निन्दा के लिए योग्य माना है।

> "नारी-सुभाव सत्य कवि कहहीं
> अवगुन आठ सदा उर रहहीं।"[24]

तुलसीदास का मानना है कि स्त्री के स्वभाव में ये अवगुण हैं, झूठ, भय, अविवेक, माया और निर्दयता। तुलसीदास ने स्त्री को हेय, अपवित्र और नीच भी कहा है। इस के अलावा रामभक्त कवियों ने स्त्री के कामिनी रूप की खूब निंदा भी की है कामिनी रूप के लिए हकधारी स्त्री उनके लिए स्वीकार्य नहीं है, बल्कि स्त्री के पतिव्रता रूप को श्रेष्ठ एवं आदर्श माना गया है।

यह पुरुषवर्चस्वी समाज के स्त्री विरोधी आदर्श को प्रमाणित करता है। पतिव्रता रूप में पुरुष को काफ़ी सुविधाएँ हैं बल्कि स्त्री को अपने 'स्व' की कुर्बानी इस रूप के वास्ते करनी पड़ती है।

2.4.4. कृष्ण भक्ति काव्य- सूरदास, मीराबाई

हिन्दी साहित्य में कृष्णकाव्य का उदय 15-16 वीं शताब्दी में हुआ। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार किया था। इसमें कृष्ण का प्रेममय एवं लीलामय स्वरूप दिया गया है। कवियों ने लोकरंजनकारी कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। वात्सल्यपूर्ण लीलायें, सख्यपूर्ण लीलायें एवं माधुर्य भावपूर्ण लीलाओं का गान और प्रेममय रूप की अभिव्यक्ति कृष्णकाव्य में हुई है। कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करके जीवन को आनंद की आध्यात्मिक परिपूर्णता प्रदान करना इसका उद्देश्य था। राधा एवं गोपी और कृष्ण लीलाओं का वर्णन इसमें किया गया है जिसे विश्व साहित्य की अमर निधि के रूप में माना भी जाता है।

कृष्ण काव्य में नारी पात्रों की प्रचुरता है। नारी पात्रों को वात्सल्य और माधुर्य दो भागों में विभाजित किया गया है। राधा, यशोदा, देवकी, रुक्मिणी, रोहिणी,कृष्णा, लतिका, चन्द्रावली, कीर्ति आदि का चित्रण कवियों ने सुन्दर एवं मानवीयता की दृष्टि से किया है। यशोदा की मातृ भावना, राधा का प्रेमिका रूप, गोपियों का विरह आदि के चित्रण अविकल रूप में हुआ है। कृष्ण भक्त कवियों ने स्त्री को प्रेम के साधन के रूप में स्वीकार किया है। स्त्री को दैहिक भोग के साधन के रूप में कभी नहीं स्वीकार किया गया है। स्त्री को मानवीय स्वच्छंदता के स्तर पर मान्यता दी हुई है। कृष्ण भक्त कवियों ने नारी को सम्मान एवं नारी समाज को आदर की दृष्टि से देखा गया था। कृष्ण काव्य धारा को प्रवाहित करने का श्रेय

अष्टछाप के कवियों को है साथ ही मीराबाई, रसखान, हितहरिवंश, ध्रुवदास आदि ने भी इस धारा को लोकप्रियता प्रदान करने में विशेष भूमिका निभाई हैं।

सूरदास कृष्ण-भक्त काव्य के महत्वपूर्ण कवि हैं। सूरदास ने अपने काव्य में नारी के अनेक रूपों का चित्रण किया है जिनमें प्रेयसी, पतिव्रता, माता के रुप अत्यंत प्रमुख हैं। सूरदास के काव्यों में स्त्री स्वतंत्र है। इनमें स्त्री उन्मुक्त भाव से विचरण करती है। उनके काव्यों में स्त्री, समाज के बंधनों को तोडती है और प्रिय के साथ उन्मुक्त भाव से विचरण करती है। सूरदास की रचनाओं में राधा को शुद्ध प्रेममयी रुप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रेम में विलासिता की गंध नहीं है। उसकी प्रीति मात्र श्रीकृष्ण के साथ है। राधा परम ब्रह्म की आराध्या के रूप में यहाँ प्रस्तुत है। कृष्ण की आनंद-प्रसारिणी शक्ति के रूप में उसका चित्रण हुआ है। ऐसे, राधा में जो स्त्री-शक्ति है उसके चित्रण के द्वारा स्त्री की अद्धितीयता को वाणी दी गयी है।

सूरदास ने स्त्री के मातृरुप का भी अभूतपूर्व वर्णन किया है। उन्होंने यशोदा में जो सहज, सरल, वात्सल्यमयी माता रुप है उनका मनोरम चित्र खींचा है।

> "जसुमति मन अभिलाष करे।
> कब मेरो लाल घुटुरुवनि रेंगे कब धरती पग द्वैक धरे।।
> कब द्वै दांत दूध के देखौं, कब तोतरैं, मुख वचन झरै।
> कब नंदहिं बाब कहि बोलै, कब जननि कहि मोहिं ररै।।"[25]

माता यशोदा के मन में यह अभिलाषा रहती है कि कब मेरा लाल घुटनों पर चलेगा? कब धरती पर पाँव रखकर दो कदम चलेगा? कब मैं इसके दाँत देखूँगी और कब यह तोतली बोलेगा? नंद को बाबा कब बुलाएगा? और मुझे माँ कहकर

कब बुलाएगा? ऐसे ही सूरदास ने यशोदा के माध्यम से मातृ हृदय के उत्कट वात्सल्य का चित्रण किया है।

सूरदास ने भी स्त्री के लिए पति-सेवा सबसे महत्वपूर्ण माना है। संतों की तरह स्त्री के कामिनी रूप की निंदा भी की है। स्त्री के स्वभाव की निंदा करके उसे नागिन के समान चित्रित किया है-

"सुकदेव कहनो, सुनौ हो राव। नारी नागिनी एक सुभाव।
नागिन के काटैं विष होइ। नारी चितवन रहे भाई।
नारी सौं नर प्रीति लगावै। पै नारी तिहिं मन नहिं ल्यावै।
नारी संग प्रीति जो करे। नारि ताहि तुरत परिहारै।।"[26]

स्त्री नागिन से अधिक विषधारी है। नागिन के काटने से विष चढ़ता है। लेकिन स्त्री की दृष्टि पड़ने पर मानव अचेत हो जाता है। स्त्री रुपी विष की तीव्रता अधिक होती है। पुरुष, स्त्री से प्रीति करता है परंतु स्त्री, मन से इतनी कठोर होती है कि वह पुरुष का त्याग कर देती है। सूरदास स्त्री की निंदा करके उससे दूर रहने का उपदेश देते हैं।

ऐसा, सूर की दृष्टि भी स्त्री को अपेक्षित स्थान नहीं देती है। अपने समय की स्त्री विरोधी दृष्टि से आगे बढने में सूरदास भी परिश्रम करते नज़र नहीं आते हैं।

मीराबाई कृष्ण भक्त कवियों में उच्च स्थान की अधिकारिणी है। मीराबाई की भक्ति माधुर्य-भाव की भक्ति है। मीरा स्वयं राधा बनकर कृष्ण के प्रति अपनी माधुर्य-भाव की भक्ति दिखाती है। "काव्य और प्रेम नारी-हृदय की संपत्ति है। काव्य का परम उत्कृष्ट एवं निखरा हुआ रूप नारी हृदय ही है। प्रेम एवं काव्य संवेदन-

अनुभूति अंगज है।"[27] उनकी भक्ति में मिलन, आशा, प्रतीक्षा, उत्सुकता सब शामिल थे।

मीराबाई मध्ययुग के स्त्री पक्ष की विभूति थीं। उनके जीवन और काव्य स्त्री-विद्रोह का रचनात्मक प्रमाण है। मीरा के माधुर्य भाव की भक्ति अपने आप में समाज के सामने चुनौती थी। कृष्ण के प्रति आस्था रखना, स्वयं को कृष्ण की पत्नी कहना यह सब उनका विद्रोह था, अर्थात् पितृसत्तात्मक समाज का तिरस्कार करना उनका उद्देश्य था। सामाजिक रुढ़ियों और पारिवारिक मान्यताओं को तोड़कर स्वतंत्रता का वरण उन्होंने किया था।

मध्ययुग में सामंती शासन से चारों ओर अन्याय और अमानवीय शोषण छा गया था। उस समय नारी को चारदीवारी में बन्द कर भोग की वस्तु बना दी गयी थी। नारी जीवन अन्याय-अत्याचार का शिकार हो गया था। साथ ही बाल-विवाह, सती प्रथा जैसी कुरीतियाँ भी प्रचलित थीं। ऐसी सामाजिक परिस्थिति में मीराबाई ने अपनी अस्मिता की अभिव्यक्ति के लिए 'भक्ति' का सहारा लिया है। स्त्री के अधिकारों के हडप लेने की प्रवृत्ति का मीरा ने विरोध किया। उस ज़माने में पितृसत्तात्मक समाज को चुनौती देकर मीराबाई ने अपने पति की मृत्यु पर 'सती' होने से इनकार किया था। वे कहती हैं-

"जग सुहाग मिथ्या रे सजणी होवां हो मिट जासी।
गिरधर गास्यां, सती न होस्या मन मोह्यों घनमाणी।।"[28]

इस जगत का सुहाग (पति) झूठा ही है। उसका कोई महत्व नहीं। केवल गिरधर कृष्ण ही सत्य है। वही शाश्वत है। मीरा लौकिक बंधनों से मुक्त होकर अपने आराध्य

देव कृष्ण की प्रेम-साधना में लीन होती है। प्रेम में लीन होने की स्त्री की शक्ति को छोडना वे नहीं चाहती हैं अपितु एक स्त्री की चेतना को सुरक्षित रखना चाहती है। उनके काव्यों में स्त्री स्वत्व की अभिव्यक्ति साध्य हुई है।

घर-परिवार ने मीरा को कुलनासी, पापी आदि कहा तो मीरा उसकी चिंता न करके कुल की मर्यादा को तोड़ते हुए पैरों में घुँघरू बाँधकर नाचने लगी।

“पय घुँघरू बाँध मीरा नाची रे।
लोग कहूयाँ मीरा भई बावरी, सासु कहुयाँ कुलनासीरे।”[29]

पैरों में घुँघरू बाँधकर नृत्य करते हुए वे समाज की सामंती व्यवस्था को तोड़ती है। सास उसे कुलनासी कहेगें, लोग उसे बावरी कहेंगे लेकिन मीरा के लिए कोई परवाह नहीं है। पैरों में घुँघरू बाँधकर, सरे आम सबके सामने, सबको सुनाकर मीरा प्रतिरोध करती है। मीराबाई का यह विद्रोह कला के माध्यम से परमात्मा तक पहुँचने का प्रयास है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विश्वास और मान्यताएँ स्त्री के अनुकूल नहीं हैं। इसलिए मीरा का काव्य स्त्री विमर्श का जीता जागता सबूत साबित हुआ।

पारंपरिक पर्दा प्रथा का विरोध भी मीरा करती थी। वह खुले आम घूमती थी। आज भी हमारे समाज में पर्दा-प्रथा का विरोध करने के लिए स्त्री सबल नहीं हुई है। लेकिन उस समय मीरा ने पर्दा को छोडकर विद्रोह किया था। ऐसे वे स्त्री-विमर्श के मध्यकालीन कवयित्री हैं। मीरा ने सामंती व्यवस्था एवं नारी विरोधी समाज के सामने साहस के साथ खड़ी थी। उन्होंने अपनी स्वतंत्रता का मार्ग स्वयं प्रशस्त किया था। वे कहती हैं-

"राणा जी अब न रहूँगी तोरी हटकी,

साणु संग मोहि प्यारा लगे, लाज गई घूँघट की।"[30]

राणा जी का विरोध करके बताती हैं कि अब नहीं रहूँगी राणा जी का हठ। आपकी मर्यादा और आदेश का पालन भी न करूँगी। मीरा को साधु-संतों की संगति प्यारी लगने लगी है। घूँघट, जिसे 'लोक लाज' कही गयी थीं, उसकी भी अवज्ञा मीरा करती है।

मीरा का काव्य नारी-विद्रोह का काव्य है। उसके काव्य में नारी की चुनौती, संघर्ष एवं जीवंतता निहित है। मीरा अपने आराध्य देव कृष्ण के माध्यम से स्त्री की अपनी पीड़ा-व्यथा, विद्रोह को प्रकट करती है। मीरा ने तत्कालीन समाज में स्त्री के ऊपर चलते अन्याय के विरुद्ध लड़ाई की तथा नारी-गरिमा और उसकी स्वतंत्रता के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए कमर कसकर खडी रही। मीरा का काव्य एक स्त्री की निजी आत्माभिव्यक्ति ही है।

भक्ति काव्य में स्त्री की चेतना पर मध्ययुगीन जड़ता एवं सामंती शासन के भयावह शोषण का चित्रण ध्वनित होता है। इसमें पतित जीवन जीती नारी की मुक्ति की चिंता काव्य में नहीं की गयी है। सगुण निर्गुण सभी सम्प्रदायों व काव्य धाराओं ने नारी की निन्दा की है। नारी को नीचा दिखाने के लिए भक्त कवियों ने नारी को माया, ठगिनी, झूठी, अपवित्र आदि संज्ञाओं से अभिहित किया। मात्र उसकी पतिव्रता रूप को ही आदर्श माना गया था।

2.5. रीतिकालीन काव्य में स्त्री-विमर्श

हिन्दी साहित्य का रीतिकाल लगभग सन् 1643 ई. से सन् 1843 ई. तक माना गया है। रीतिकाल का साहित्य नवीन प्रकार का साहित्य है। इसमें जीवन के प्रति भौतिक दृष्टिकोण अपनाया गया है। इस काव्य में पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति का बोलबाला रहा है। काव्य में भावुकता और कला का समन्वय देखा जा सकता है। सामान्य रूप से श्रृंगारपरक लक्षणग्रंथों की रचना इसमें हुई है। अधिकांश रचनाएँ श्रृंगारिक ही थीं। विलासी आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए कवियों ने श्रृंगारिक रचनाएँ कीं हैं। रीतिकालीन कवियों का प्रमुख वर्ण्य विषय नायिका भेद, रस, नखशिख वर्णन, अलंकार आदि का लक्षण प्रस्तुत करना ही था। उनके माध्यम से श्रृंगार का प्रतिपादन किया गया है।

तत्कालीन कवियों ने नारी को एकमात्र रूप प्रदान किया। वह था विलासिनी प्रेमिका का। कवियों ने अपने स्वामी के मानसिक विषाद को दूर करने के लिए नारी के विलासात्मक चित्र उतारते थे। स्त्री उनके लिए मात्र भोगविलास का उपकरण था। उसके जननी, गृहिणी, देवी आदि रूपों को इनकार किया गया था। मात्र उसके शरीर के सौन्दर्य का वर्णन किया था। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में- "रीति काव्य आध्यात्मिक तो है ही नहीं, परंतु वस्तु रूप में भौतिक भी नहीं- अर्थात् न उसमें आत्मा की अतल जिज्ञासा है न प्रकृति की दृढ़ कठोरता। वह तो जैसे जीवन का विराम स्थल है। जहाँ सभी प्रकार की दौड़-धूप से श्रान्त होकर मानव नारी की मधुर अंचल-छाया में बैठकर अपने दुःखों और पराभवों को भूल जाता है। उसका आधारफलक इतना सीमित है कि जीवन की अनेकरूपता के लिए उसमें स्थान ही नहीं है, उस पर अंकित जीवन-चित्र भी स्वाभावतः एकांगी है।"[31] रीति कवियों के

सामने नारी-जीवन के सामाजिक महत्व और उसकी मातृ-छवि को कोई स्थान नहीं था।

2.5.1. केशवदास

केशवदास के समय नारी को आलंबन मानकर, नारी सौन्दर्य का अंकन और श्रृंगार रूप का विस्तृत वर्णन काव्य में सर्वत्र हुए। केशवदास ने ऐसा चित्रण किया है कि-

> "दुरिहै क्यों भूषण बसन दुति यौवन की,
> देह ही की जोति होति द्यौस ऐसी राति है।"[32]

नायिका को भूषण की आवश्यकता ही क्यों है? यौवन से उन्मुक्त है उसका देह। नायिका को बड़ी देह कांति है। वह कांति, रात्रि को दिन में बदलने में समर्थ है।

2.5.2. बिहारी

नारी के अंगों का सौन्दर्य रीतिकालीन कवि की कल्पना को मोहित करता है। बिहारी के शब्दों में-

> "छुटै छुटावत जगत तें सटकारे सुकुमार
> मन बांधत बेनी बंध्यौ नील छबीले बार।।"[33]

नारी के बाल, कवि को संसार के बंधनों से विमुक्त करते हैं। नील छविमान बालों की वेणी के साथ कवि का मन बाँधा गया है। नारी का सौन्दर्य कवि को मोहित एवं रसिक बना देता है।

2.5.3. सेनापति

कवि सेनापति ने भी नारी के संयोग-वियोग श्रृंगार, नखशिख वर्णन किया है। नायिका अपने पति के चले जाने पर सुख-भोगों से अलग हो जाती है। वह अपने अरुण वसन छोड़कर जोगिन बन जाती है।

> "लाल के वियोग तैं, गुलाल हूँ तैं लाल सोई,
> अरुण वसन छोड़ि जोग अभिलाख्यौ है।
> ....
> प्यारी के नयन अंसुब न बरसत तासौं,
> भीजत उरोज देखि भानु मन भाख्यौ है।"[34]

वह स्वर्ण सेज पर सोना छोड़ देती है। उसकी आँखों में उसके प्रिय का रुप ही है। प्रिय की याद में वह फूट-फूटकर रोती है। वर्षा के समान आँसु बहाती रहती है जिससे उसके दोनों स्तन भीग जाते हैं।

2.5.4. देव

रीतिकालीन कवियों ने नारी को कभी भी स्वतंत्र व्यक्ति के रुप में मान्यता नहीं दी थी। स्त्री मात्र पुरुषों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। देव ने भी अपनी कविता में नारी के कामिनी रुप को ही उतारा है।

> "कौन गनै पुर बन नगर कामिनी एकै रीति।
> देखत हरै विवेक को चित्त हरै करि प्रीति।।"[35]

इसमें नारी को कामिनी रुप में ही देखा गया है। ऐसा कहता है कि नारी के संसर्ग से पुरुष विवेकशून्य हो जाता है। ऐसे, रीतिकालीन काव्य में स्त्री केवल पुरुषों के आकर्षण का केन्द्र रहा है।

2.6. आधुनिककालीन काव्य में स्त्री-विमर्श

आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रवेश द्वार है 'भारतेन्दु युग'। इस युग का साहित्य आधुनिक काल का संधि साहित्य है। इसमें प्राचीन और नवीन परंपराओं का मिलन हुआ है। द्विवेदी युग में जीवन की व्यापक समस्याओं का चित्रण मिलता है। काव्य में विषयगत और कलागत रूप में परिवर्तित हुआ। छायावादी युग के साहित्य में भावों की कोमलता, अनुभूति और जीवन के प्रति संवेदना पायी जाती है। यह एक महान् आन्दोलन ही है। आगे प्रगतिवादी साहित्य में जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। दलित और पीड़ित वर्ग के प्रति इसमें सहानुभूति दिखाई गई है। प्रयोगवाद और नयी कविता में आकर व्यक्तिवादी घोर अहंवादी प्रमेय मिलता है। इसमें भावात्मकता की अपेक्षा बौद्धिकता को महत्व दिया गया। आगे की कविता याने समकालीन कविता अपने समय की सारी की सारी गतिविधियों को ग्रहण करने वाली कविता है। मनुष्य जीवन के समग्र यथार्थ की अभिव्यक्ति इसका उद्देश्य है।

आधुनिक काल में आते-आते स्त्री-चिंतन की दिशाएँ बदलने लगी। यूरोप में फ्रांसीसी क्रांति एवं इगलैंड, जर्मनी के बुद्धिजीवियों ने नारीवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी थी। फलस्वरूप नारी को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रेरणा मिली। भारतेन्दु और द्विवेदी युग नवजागरणवादी युग था। नवजागरण ने स्त्री की स्वतंत्रता का बोध दिया। ऐसा यह युग स्त्री के लिए भी जागरण का युग था। ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज जैसी संस्थाएँ एवं समाजसुधारकों ने नारी की मुक्ति के लिए आवाज़ उठायी। फलस्वरूप स्त्री-शिक्षा, स्त्री-मुक्ति, स्त्री स्वतंत्रता आदि विषय काव्य के केन्द्र में आने लगे।

2.6.1. भारतेन्दुयुगीन काव्य में स्त्री-विमर्श

भारतेन्दु की कविता में भक्ति एवं श्रृंगार दोनों का सुन्दर सामंजस्य हम देख पाते हैं। इस युग में कवियों का ध्यान देश-प्रेम एवं मानव-प्रेम में था। लेकिन नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण भी किया गया है। लेकिन रीतिकालीन कवियों की भाँति अतिशयोक्ति नहीं मिलती है। भारतेन्दु के मन में नारी के प्रति प्रेम है। नारी-प्रेम का आदर्श रूप ही दिखाई देता है। श्रृंगार वर्णन की प्रचुरता इसमें नहीं है। नायिका अपने प्रेम-जन्य विवशता ऐसी करती है-

> "पूछत सखी कै एक उत्तर बतावति,
> जकी सी एक रुप आज श्यामा भई श्याम है।।"[36]

यहाँ नायिका अपने प्रियतम के ध्यान में मग्न पड़ी है। सखी के प्रत्येक प्रश्न का एक ही उत्तर देती है। हर-जगह प्रियतम को ही देखती है।

नारी-सौन्दर्य चित्रण के साथ-साथ भारतेन्दु युगीन कवियों ने स्त्री की स्थिति में सुधार लाने की बातें भी की हैं। प्रतापनारायण मिश्र ने नारी की सामाजिक दशा पर विचार किया है।

> "झूठी यह गुलाल की लाली धोवत ही मिट जाय।
> बाल-विवाह की रीति मिटाओ, रहे लाली मुँह छाय।।"[37]

कवि ने नारी की शोचनीय सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए आवाज़ उठायी है। बाल-विवाह जैसी प्रथा इस देश से बंद हो जाय तभी स्त्री की स्थिति अच्छी बनेगी।

भारतेन्दुयुग परिवर्तनों का युग है। इस काल के साहित्य में नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है। खासकर नारी की स्थिति में सुधार एवं नारी स्वातंत्र्य पर बल दिया गया है। बाल-विवाह, अनमेल-विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों से स्त्री को बाहर लाने की कोशिश भी हुई है।

2.6.2. द्विवेदीयुगीन काव्य में स्त्री-विमर्श

इस युग की कविता में स्त्री-स्वातंत्र्य संबंधी भावनाओं का भी विकास हुआ था। समाज में स्त्री की समानता की भावना अब दृढ़ होने लगी है। नारी-परिकल्पना में परिष्कार आया। श्रृंगार पूर्ण नायिका भेद की प्रवृत्ति का विरोध करने लगा। नारी को उचित सम्मान देने की बात अब उठायी गयी। राजनीति के क्षेत्र में भी स्त्री को मान्यता प्रदान दी गयी। स्त्री को आदर करने के लिए पुरुषों के समान अधिकारों की प्राप्ति के लिए आवाज़ गूँज उठी।

द्विवेदीजी ने आदर्श नारियों के चरित्र का वर्णन करने के लिए प्रेरणा दी और भारतीय नारी-समाज को सुधारने की बात पर बल दिया गया है। हिन्दु धर्म की कुरीतियों के विरुद्ध उसने विरोध प्रकट किया था। उसने बाल-विधवाओं की दयनीय दशा का अंकन किया था।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अपना महाकाव्य 'प्रियप्रवास' के माध्यम से राधा का एक नवीन रूप प्रस्तुत किया है। हरिऔध की वृषभानु-दुलारी राधा निस्वार्थ प्रणय की प्रतिमूर्ति है। राधा सच्चे हृदय से कृष्ण को पति बनाने की इच्छा करती है। इसमें जो पत्नी रूप रहती है उसको प्रकट करती है और स्त्री के

अपने पत्नी रुप को स्थापित करना चाहती है। राधा का समाज-सेविका तथा विश्व हितैषिणी के रुप भी अनुपम हैः-

"दीनों की थी बहिन जननी थीं अनाथाश्रितों की।
आराध्या थीं ब्रज अबनि की प्रेमिका विश्व की थी।।"[38]

राधा दीनों की बहिन एवं अनाथ-आश्रितों की जननी है। ब्रज की आराध्या एवं विश्व-प्रेमिका है। राधा एक आदर्श नारी है। आधुनिक युग की जागृत नारी एवं अपने कर्तव्यों का निर्वाह करनेवाली प्रबुद्ध नारी है। फिर भी नारी के अधिकारों की रक्षा के लिए आह्वान उस समय नहीं हुआ था जो बाद में देखा जाता है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी को लोकप्रिय कवियों में शीर्षस्थ स्थान है। उन्होंने नारी समाज के प्रति उदारता दिखायी है। उपेक्षिता नारियों के चरित्र को उन्होंने अपने काव्य में चित्रित किया है। उनकी 'यशोधरा' में तत्कालीन नारी के अधिकारों की माँग की तड़प है। नारी के विभिन्न रुपों का निरुपण करना उनका ध्येय रहा है। नारी की सुधार-भावना पर भी उनकी ओर से विशेष बल दिया गया है।

"नर कृत शास्त्रों के सब बन्धन हैं नारी ही को लेकर,
अपने लिए सभी सुविधाएँ पहले ही कर बैठे नर।"[39]

स्त्री की दुर्दशा देखकर कवि पुरुष समाज से क्षुब्ध होते हैं। उनके अनुसार पुरुष के द्वारा बनायी गयी व्यवस्था में स्त्री को कोई स्वतंत्रता नहीं है। सभी शास्त्र स्त्री के लिए अनुकूल नहीं है बल्कि बंधन के समान है। पुरुष लोग अपने लिए सुविधाएँ बना लेते हैं लेकिन स्त्री को बाँधकार रखी गयी है।

ऐसे, द्विवेदी युगीन कविता में नारी के आदर्श रूप का चित्रण मिलता है। नारी के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया गया है। नारी-स्वातंत्र्य संबंधी भावना का विकास हुआ साथ ही समानता की बात पर बल दिए जाने लगा।

2.6.3. छायावादी काव्य में स्त्री-विमर्श

छायावाद का आरंभ सन् 1918 में माना जाता है। छायावादी पद्धति की रचनाएँ इसके आसपास प्रकाशित होने लगी। दो महायुद्धों के बीच की स्वच्छन्ददावादी कविता को छायावाद के नाम से पुकारा जाता है। इस काल में कला और भाव-क्षेत्र में एक प्रसिद्ध आन्दोलन ही चला है। इस काव्यधारा का अपना एक अलग जीवन-दर्शन है जो इस देश की सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुआ। यह एक काव्य पद्धति है। रखने प्रकृति में मानवीकरण को काव्य में उतारा। इसकी दार्शनिक अनुभूति स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। इसमें अनुभूति की प्रधानता है। आधुनिक औद्योगिकता ने जो व्यक्तिवाद को प्रशस्त किया वह इसके मूल में है। छायावादी कविता, मतलब रूढ़िवाद और सामंती व्यवस्था के विरुद्ध किया गया विनत व्रिद्रोह है। इसके केन्द्र में सर्वात्मवाद रहता है।

छायावादी कविता में नारी के अनेक रूप सामने आते हैं। इसमें नारी का चित्रण अपेक्षाकृत सूक्ष्म है। इस काव्यधारा में स्थूलता और नग्नता नहीं है। इसमें नारी का सौन्दर्य, उसका प्रेयसी-रूप, पत्नी-रूप, माता-रूप, शक्तिमयी-रूप आदि जितने भी रूप हैं, उन सबका चित्रण किया गया है। कवि अपने आस-पास की सभी वस्तुओं में नारी का आरोप किया और उससे प्रेरणा शक्ति पाने का प्रयास भी करते रहते हैं। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा इस धारा के प्रमुख कवि हैं। इन कवियों ने अपने काव्यों में नारी को सम्मान के साथ जगह दी।

2.6.3.1. जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद छायावादी काव्य के शीर्षस्थ कवियों में एक माने जाते हैं। प्रसाद जी ने नारी को शक्ति स्वरुपा माना। प्रसाद की नारियाँ भावुक चरित्र की हैं। उनके नारी पात्र स्नेह करना ही जानते हैं। स्नेह प्राप्ति के लिए अनन्य त्याग करने के लिए भी वे तैयार हैं। उन्होंने नारी स्वत्व को बहुत उच्च पद पर प्रतिष्ठित किया है। उसे घर की सीमाओं से बाहर लाकर खडा किया गया। उन्होंने नारी स्वातंत्र्य, नारी-शिक्षा, और नारी-महत्व की अभिव्यक्ति अपने काव्यों में की है।

कामायनी में इड़ा और श्रद्धा के माध्यम से स्त्री की छवि को उन्होंने उभारा। श्रद्धा के माध्यम से नारी के विनम्र प्रतिशोध का भी चित्रण किया है।

> “विनिमय प्राणों का वह कितना,
> भय संकुल व्यापार अरे।
> देना हो जितना दे दे तू
> लेना! कोई यह न करें।”[40]

अपमान की ज्वाला में वह तपती है। प्रतिकार किये बिना संतुष्ट नहीं रह सकती।

2.6.3.2. सुमित्रानंदन पंत

पंत हिन्दी काव्य जगत के अभिनव काव्य चेतना के कवि थे। पंत जी ने भी नारी की चेतना को अपनी कविताओं में उच्च स्थान दिया है। उनकी नज़र में नारी जननी, उदार एवं मातृ मूर्ति है। उन्होंने नारी के सौन्दर्य, शोषित, पीड़ित, एवं शक्तिशाली रुप का अंकन अपनी कविताओं में किया है। ‘ग्राम्या’ काव्य संग्रह में

नारी के जीते-जागते सशक्त रूप को हमारे सामने रखा गया है। पंत जी ने नारी की मुक्ति पर विशेष बल दिया है-

"मुक्त करो नारी को, मानव
चिर बंदिनी नारी को
युग-युग की बर्बर कारा से
जननि सखी प्यारी को।"[41]

युग-युग की बर्बर व्यवस्था ने नारी को बन्धन में रख दिया था और उस में जो जननी है उस की निंदा होती रही थी।

2.6.3.3. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

हिन्दी काव्य जगत में 'निराला' को क्रांति का अग्रदूत माना जाता है। उनकी कविताओं में पूँजीवादी संस्कृति, शोषण, रुढ़ियाँ, नारी चित्रण आदि विषय आए हैं। निराला ने हमेशा नारी के प्रति मानवीय दृष्टि अपनायी है। उनका मानना है कि स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान दिन-रात आर्थिक और सामाजिक विषमताओं का सामना कर रही हैं। केवल नारी की विवशता ही नहीं उसके साथ पूंजीवादी व्यवस्था की जो क्रूरताएँ है उनका भी विरोध प्रकट हुआ है।

"वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर।
....
....
नत नयन, प्रिय कर्म रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ,

करती बार-बार प्रहार,

सामने तरु-मालिका अट्टालिका प्राकार।"[42]

कड़ी धूप में सड़क पर पत्थर तोड़नेवाली स्त्री का मज़बूत चित्रण निराला ने किया। वह अपने कर्म में लीन है। पत्थर तोड़ती स्त्री के प्रति सहानुभूति नहीं है बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह प्रकट किया गया है।

2.6.3.4. महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा को आधुनिक युग की मीरा कही जाती है। वह सजल गीतों की गायिका है। इनके काव्य में आधुनिक रहस्यवाद और छायावाद की सभी प्रमुख्र प्रवृत्तियाँ नज़र आती हैं। महादेवी वर्मा ने अपने-आपको 'नीर भरी दुःख्र की बदली' कहा है। इनकी कविता में नारी का सफल चित्रण मिलता है। ख़ुद कवयित्री और नारी होने के नाते नारी के मूल भावों को समझकर उनके चित्रण करने में अधिक सक्षम हुई हैं। इनके बारे में समकालीन कवयित्री 'अनामिका' ने ऐसा बताया कि-"महादेवी वर्मा के कई गीत रहस्यवादी स्वरूप का ख्रण्डन करते हुए उन्हें प्रख्रर स्त्रीवादी विद्रोह का तेज देते हैं।"[43] महादेवी का मानना है कि स्त्री वस्तु मात्र नहीं है। उसमें प्रतिभा है, शक्ति है, बुद्धि है, विवेक है। उसका मातृत्व और पत्नीत्व उसे अपना रास्ता निर्धारित करने से नहीं रोक सकते हैं। उन्होंने नारी के पक्ष में हमेशा लड़ती रहीं।

महादेवी ने भारतीय नारी को मुक्ति का संदेश दिया था। भारतीय नारी को पुरुष के समान स्थान देने की बात कही है। साथ ही नारी-शिक्षा की ज़रूरत पर उन्होंने ज़ोर दिया। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक कार्य करती रही।

महादेवी वर्मा आधुनिक रहस्यवादी कवयित्री हैं। उसका हृदय आत्म-समर्पण की भावना से ओतप्रोत है। यह आत्म-समर्पण माधुर्यपूर्ण प्रेमभावना ही है। वे पीड़ा में प्रियतम को खोजती है। उनके काव्य में अज्ञात प्रियतम के प्रति आकुल प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति मिलती है।

> "शिथिल-शिथिल तन थकित हुआ कर
> स्पन्दन भी भूला जाता उर
> मधुर कसक-सा आज हृदय में आय समाया कौन?"[44]

कवयित्री अपने चिरंतन प्रिय पर मुग्ध है। उस प्रेम में तन का स्पन्दन भी वह भूल जाती है। हृदय में किसी के आगमन की तीव्र इच्छा होती है। प्रेम की तीव्रता यहाँ अभिव्यक्त है।

छायावादी कवियों ने ऐसे, नारी के प्रति नवीन और उदात्त दृष्टिकोण को अपनाया है। इनके काव्यों में नारी भोग्या स्त्री नहीं है। उनकी नारी शक्तिशाली 'मानवी' है। स्त्री मन के आतंरिक सौन्दर्य का उद्‌घाटन छायावादी काव्य ने किया है। छायावादी काव्य नारी की महत्ता को माननेवाला काव्य है। लेकिन स्त्री के प्रतिरोध और प्रतिवाद को खुला रूप नहीं मिला।

2.6.4. राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता में स्त्री-विमर्श

आधुनिक युग में अनेक समाजों की स्थापना हुई तथा समाज सुधारकों के प्रभाव से राष्ट्रीय सांस्कृतिक जयघोष पुनः जाग्रत हुआ। इस युग के कवियों ने भारत की आंतरिक विषमताओं को दूर करने के लिए आह्वान किया। साथ ही साथ विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए स्वाधीनता-संग्राम में भाग लेने की प्रेरणा भी

दी। इस काव्यधारा के कवियों में सुभद्राकुमारी चौहान, रामधासीसिंह दिनकर, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि उल्लेखनीय हैं।

2.6.4.1. सुभद्राकुमारी चौहान

सुभद्राकुमारी चौहान जी की कविताएँ राष्ट्र-प्रेम और बलिदान की भावना से ओतप्रोत हैं। उनकी 'झाँसी की रानी' स्वदेश-प्रेम से पूर्ण है। 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी/बुन्देले हरबोलों के मुख्र हमने सुनी कहानी थी... वाली अमर पंक्तियाँ निर्जीव लोगों में शक्ति प्रदान करती हैं। उनकी कविताओं में नारी के पारिवारिक जीवन, आत्म-समर्पण, वात्सल्य भाव, प्रेम-भावना आदि की सुन्दर झांकियाँ मिलती हैं। नारी के वीरांगना रुप का भी चित्रण हुआ है।

> "न होने दूंगी अत्याचार, चलो मैं हो जाऊँ बलिदान
> मातृ मन्दिर में हुई पुकार, चढ़ा दो मुझको हे भगवान"[45]

अत्याचार के विरुद्ध अब स्त्री आवाज़ उठाती है। देश के लिए अपने-आप को बलिदान करने के लिए वे तैयार हैं।

2.6.4.2. दिनकर

रामधारीसिंह दिनकर राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माता के रुप में प्रसिद्ध हैं। उनकी कविता पर राष्ट्रीयता की छाप सबसे अधिक है। दिनकर जी ने अपनी कविताओं में नारी को सम्मान एवं आदर के साथ चित्रित किया है। 'उर्वशी' में नारी के आधुनिकतम रुप को प्रस्तुत किया गया है। 'औशीनरी', 'उर्वशी' का नारी

पात्र है जिसके माध्यम से उस युग की नारी की धार्मिक महत्ता को उन्होंने वर्णित किया है-

> "याग यज्ञ, व्रत-अनुष्ठान में, किसी धर्म साधन में
> मुझे बुलाए बिना नहीं प्रियतम प्रवृत्त होते थे।"[46]

'उर्वशी' काव्य में चित्रित वेद युगीन नारी की धार्मिक स्थिति में पर्याप्त महत्व की है। यज्ञादि अनुष्ठानों में पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य समझी जाती थी।

2.6.5. प्रगतिवादी काव्य में स्त्री-विमर्श

हिन्दी की छायावादी कविता में स्थूलता के विरुद्ध सूक्ष्मता ने विद्रोह किया। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप प्रगतिवादी काव्य-धारा प्रकट हुई। राजनीतिक क्षेत्र में जो समाजवाद और दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है वही साहित्य में प्रगतिवाद के नाम से अभिहित हुआ है।

प्रगतिवादी काव्य में सामाजिक यथार्थ को बुनियाद माना है। इसे समाजवाद के प्रति अटूट आस्था थी। शोषण का अंत करना इसका लक्ष्य था। शोषित वर्ग में नारी भी आ जाती है। प्रगतिवादी कवियों ने नारी के शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठायी है। उसकी नारी तर्कशील एवं सामंती आदर्शों का विरोध करनेवाली थी, कहीं आर्थिक विषमताओं के बीच ओझल होकर रहनेवाली, कहीं दूसरों को जीने की प्रेरणा देनेवाली थी।

2.6.5.1. नागार्जुन

"नागार्जुन प्रगतिवादी दौर के मानवीय चेतना के कवि हैं। उनकी कविता शोषित-पीड़ित वर्ग की कविता है। नारी के प्रति उनके मन में गहरी संवेदना रही है। वे मानते थे कि नारी समाज का महत्वपूर्ण अंग है। समाज की श्रेष्ठता का निर्णय मुख्यतः समाज में नारी की स्थिति पर निर्भर रहता है। उनकी 'तालाब की मछलियाँ' शीर्षक कविता में प्रगतिशील नारी भावना का दर्शन मिलता है। कवि नारी की मुक्ति की बात करते हैं।

> "किंतु आज तो
> कोषी की धारा ने आकर तोड़ दिया है बांध
> आज आ गई सखि हम बाहर एक-एक कर
> उथल-पुथल है जनजीवन में
> सभी ओर उत्क्रांति हो रही,
> टूट रहे है अंतपुर के ढाँचे।"[47]

पितृसत्तात्मक समाज ने नारी को मछली के समान उपभोग की वस्तु मान रखा है। मछलियों को तालाब में और स्त्रियों को हवेलियों में कैद कर रखा है। नारी के प्रति मात्र भोग की दृष्टि रखी गयी है। किंतु आज कोषी की धारा जब बांध तोड़ देती है तब मछलियाँ एक-एक कर बाहर हो जाती है। ठीक उसी तरह स्त्रियाँ भी सीमित क्षेत्र से बाहर आने की कोशिश में हैं। उनमें सभी बंधनों को तोड़कर आगे बढ़ने की शक्ति रहती है। स्त्री की आज़ादी का स्वर इसमें मुखरित है।

2.6.5.2. त्रिलोचन

त्रिलोचन की कविता में सामाजिक विषमता तथा शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठायी गयी है। विधवा स्त्री की लाचारी का चित्रण करके कवि लिखते हैं-

"अपनी नोक लौट आता था, निकली नारी
और पास आयी, चीह्ना अतवरिया थी जो
मेले में हिरा गई थी। बोली 'लाचारी'
मुझे फेर लाई, वह तजकर सरग को"[48]

समाज में नारी हमेशा से शोषित और पीड़ित रही है। नारी पति के साथ अपनी ज़िन्दगी गुज़ारती है। जब वह विधवा हो जाती है तब उसके दुःख का कोई परवाह नहीं करता। अकेले जीने के लिए स्त्री मज़बूर हो जाती है।

2.6.5.3. शिवमंगलसिंह सुमन

प्रगतिशील काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं 'शिवमंगलसिंह सुमन'। कवि नारी के प्रति विशेष सहानुभूति रखते हैं। स्त्री की स्थिति सुधारने की बात पर भी विशेष बल उन्होंने दिया है। स्त्री के भिखारी रूप का चित्रण ऐसा किया है-

"दोनों को मोहताज हो गये
दर-दर बन गये भिखारी
भूख, अकाल महामारी से
दीनों की लाचारी।"[49]

नारी भिखारी बन गयी है। भूख से अकाल महामारी में पीड़ित नारी का चित्रण किया गया है।

इस प्रकार प्रगतिवादी कवियों ने नारी की असहायता, विवशता, वेदना पर आक्रोश प्रकट किया है। कवि मात्र नारी की दयनीय दशा का चित्रण न करके उसकी मुक्ति के लिए भी आवाज़ उठाते हैं।

2.6.6. प्रयोगवाद और नयी कविता में स्त्री-विमर्श

हिन्दी कविता जगत् में प्रगतिवादी काव्य-धारा के समानांतर ही प्रयोगवाद और नयी कविता की काव्यधाराएँ शुरू हुई हैं। प्रयोगवादी कविता में नये बोध, नयी संवेदना एवं शिल्प में चमत्कार हम देख सकते हैं। प्रयोगवादी कवि अपने काव्य में ठोस बौद्धिकता को स्थान देते हैं। इस काव्य में मध्यवर्गीय जन-जीवन की पीड़ा, कुंठा, जड़ता, अनास्था, एवं संघर्ष का चित्रण मिलता है। प्रयोगवादी काव्य में घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद है, सामाजिकता का तिरस्करण हुआ है। नयी कविता की विशिष्टता जीवन के प्रति उसकी आस्था है। इसमें जीवन को पूर्ण रूप से स्वीकार कर उसे भोगने की लालसा दिखाई पड़ती है। लघु मानवत्व की बात इसमें उठायी गयी है। इसमें जीवन की एक-एक अनुभूति को सत्य मान कर उसे अपनाने की बात बतायी गयी है। प्रयोगवाद और नयी कविता की मूलभूत बातें समान है। दोनों के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तिवादिता, रूमानी दृष्टि, बौद्धिकता, जटिल संवेदना आदि देखने को मिलते हैं।

2.6.6.1. अज्ञेय

प्रयोगवाद और नयी कविता के विकास-काल में एक नई नागरिक सभ्यता का भी विकास हुआ है। इसके दौरान समाज में मानवीय मूल्यों का विघटन हुआ है। क्योंकि इसके मूल में यन्त्रयुगीन सभ्यता रहती है। इस समय के कवियों की रचनाओं

में शोषित जनता का चित्रण हुआ है, जिनमें नारी भी सम्मिलित है और उसे शोषण से मुक्त कराने के लिए प्रयास भी किए गए हैं। नयी कविता में भोगवाद एवं वासना की प्रवृत्ति भी निहित है। अज्ञेय की पंक्तियाँ हैं-

"आह मेरा श्वास है उत्तप्त
धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार
प्यार है अभिशप्त
तुम कहाँ हो नारी।"[50]

नारी को अब तक मात्र वासनातृप्ति के साधन माना जाता था। लेकिन अब नारी को अलग रुप में स्वीकार किया गया है।

2.6.6.2. मुक्तिबोध

नयी कविता में मुक्तिबोध का स्थान महत्वपूर्ण है। भूखे, नंगे, शोषित लोगों को कवि ने अपनी कविता का विषय बनाया है। नारी के प्रति भी मुक्तिबोध का दृष्टिकोण मानवतावादी रहा है। उनके अनुसार पुरुष की दृष्टि में स्त्री मात्र उपभोग की वस्तु रह गई है। कवि ने पागल युवती के शारीरिक शोषण का चित्रण यों किया है-

"वह पागल युवती सोयी है
मैली दरिद्र स्त्री अस्त-व्यस्त,
उसके बिखरे हैं बाल व स्तन लटका-सा।
अनगिनत वासना ग्रस्तों का मन अटका था
उसमें से जो उच्छृंखल था

विश्रृंखल भी था

उसने काले पल में स्त्री को गर्भ दिया।"[51]

वासनालोलुपी पुरुष लोग पागल युवती के शारीरिक शोषण करते हैं। पागल युवती के साथ ऐसी हरकत करने के लिए वे हिचकते नहीं हैं।

2.6.6.3. रघुवीर सहाय

'रघुवीर सहायजी' ने अपनी कविताओं में स्त्री के महत्व को स्थापित करने का प्रयास किया है। उनकी कविता 'नारी' में स्त्री के शोषण का मुद्दा उठाया गया है।

"नारी बिचारी है

पुरुष की मारी है

तन से क्षुदित है

मन से मुदित है

लपक कर झपक कर

अंत में चित है।"[52]

स्त्री पुरुष का जीवन सुधारती है, लेकिन पुरुष उसका सम्मान नहीं करता है। स्त्री अपने अधिकारों से वंचित हो जाती है। यहाँ कवि, स्त्री का शोषण जो पुरुष सत्ता कर रही है उसके प्रति विरोध प्रकट करते हैं।

2.6.6.4. धर्मवीर भारती

धर्मवीर भारती की महत्वपूर्ण काव्य-कृति है कनुप्रिया। उसमें राधा स्त्री बोध को स्पष्ट करनेवाली आधुनिक स्त्री है।

"तुम्हें कोई भी कसौटी नहीं मिलती
और जुए के पास की तरह
निर्णय को फेंक देते हो
जो मेरे पैताने है वह स्व धर्म
जो मेरे सिरहाने है वह अधर्म।"[53]

पुरुषवादी समाज स्त्री को दोषारोपण की केन्द्र बिंदु मानते हैं। लेकिन आज 'राधा' इस पक्षपातपूर्ण व्यवहार का विरोध करती है। उसमें नारी चेतना फूट निकलती है।

प्रयोगवादी और नयी कविता में नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है। इसमें नारी का वर्णन यथार्थवादी विचारधारा से प्रेरित होकर किया है। इसमें स्त्री के अधिकारों पर भी कवि लोग प्रकाश डालते हैं।

2.7. समकालीन कविता में स्त्री-विमर्श

समकालीन कविता अपने पूर्ववर्ती काल की कविता से अधिक विविधतापूर्ण एवं अनेक आयामी रही है। उसमें यथार्थ की अभिव्यक्ति का सामर्थ्य है। इसमें किसी भी वाद या विचारधारा की प्रमुखता नहीं है। इसी कारण समकालीन कविता में पूरे समाज को दिखाया गया है। आम आदमी के दुख-दर्द, समकालीन दुनिया की आशंका, अमानवीयता, हिंसा वृत्ति, विक्षोभ और विद्रोही स्वर समकालीन कविता का आधार है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश की सच्चाई के साक्षात्कार करने की कोशिश रही है।

समकालीन कविता के अंतर्गत 1960 के बाद से वर्तमान समय तक की कविता को स्थान दे सकते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो सन् 1960 तक नेहरु का

युग, मोहग्रस्त काल था। जनता के मन में भविष्य के प्रति बड़ी आस्था थी, लेकिन 1962 की भारत-चीन लड़ाई, सन् 1965 व 1971 के पाकिस्तान युद्ध सबकुछ ने उसे झकझोर कर दिया है। देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी है। सामाजिक और राजनीतिक स्थिति पिछड़ी रह गयी है। जातिवाद, वर्गवाद, सांप्रदायिकता का प्रचार बढ़ गया। आतंक, शोषण, भूख, निर्धनता और असुरक्षा बढ़ने लगे हैं। महंगाई और बेरोज़गारी जनजीवन पर बाधा डालने लगीं। इन स्थितियों से उत्पन्न मुद्दों ने समकालीन कवियों को प्रभावित किया। अपनी कविताओं के माध्यम से वे इन के प्रति प्रतिरोध खडा करने लगे।

आज का युग वैश्वीकरण का युग है। इसने पूरे विश्व में एक नया परिवेश पैदा किया है। सूचना प्रौद्योगिकी का विकास भी इस प्रक्रिया को त्वरित करता है। ऐसे माहौल में आज लोगों के बीच के रिश्ते टूट रहे हैं। मूल्यों का ह्रास हो रहा है। स्त्री, पारिस्थिति, दलित, आदिवासी आदि सबकी स्थिति दर्दनाक बनी हुई हैं। अब समकालीन कवियों का दायित्व और बढ़ गया है। प्रतिरोध और प्रतिवाद की दीवार खड़ा करना समकालीन कवियों का दायित्व बन गया है।

स्त्री-विमर्श समकालीन कवियों के चिंतन का प्रमुख विषय रहा है। स्त्री के अधिकार, उसकी अस्मिता, प्रतिरोध और विद्रोह का ज्ञान कराते हुए प्रचुर मात्रा में कविताएँ इस दौर में लिखी गयीं। धूमिल, भगवत रावत, पवन करण, अरुण कमल, चंद्रकांत देवताले, उमाशंकर चौधरी, मंगलेश डबराल, प्रयाग शुक्ल, लीलाधर जगूड़ी, राजेश जोशी, आलोकधन्वा, देवीप्रसाद मिश्र, विष्णु नगर, बोधिसत्व आदि कवियों की कविताओं में स्त्री एक प्रतिरोधी स्वर बनकर उभरी है।

2.7.1. धूमिल

धूमिल की कविताओं में स्त्री बार-बार आती है। यथार्थ को अधिक तीखेपन के साथ चित्रित करने के लिए और उपमा के लिए स्त्री को अपनी कविता में वे लाते थे। उनकी कविताओं में स्त्री अनेक रूपों में उपस्थित है। लड़की, पत्नी, खानाबदोश औरत आदि रुप में आयी है। औरत के प्रति उनका दृष्टिकोण 'कवि 1970' शीर्षक कविता में व्यक्त है-

> "पत्नी का उदास और पीला चेहरा
> मुझे आदत-सा आँकता है
> उसकी फटी हुई साड़ी से झाँकती हुई पीठ पर
> खिड़की से बाहर खड़े पेड़ की
> वहशत चमक रही है।"[54]

उसकी नंगी पीठ पर पेड़ की टहनियों की छाया पड़ रही है यानी मार के निशान। यह 'वहशत' है। धूमिल ने वहशत की शिकार हुई स्त्री का चित्रण किया है। लेकिन मार-पीट सहने के बाद भी स्त्री रो-रोकर रुकती नहीं है। वह अपने बच्चों को संभालती है और आगे बढ़ती भी है।

2.7.2. भगवत रावत

'भगवत रावत' की कविता में स्त्री के प्रति गहरी संवेदनशीलता है। उसकी स्त्री संवेदना मार्मिक है। स्त्री का दुःख, काम-काजी स्त्री का दर्द आदि उनकी कविताओं में विषय बनकर उभरे हैं। कवि की कविता में स्त्री अपनी परिस्थितियों से लड़ने की क्षमता रखनेवाली है। वह कमज़ोर नहीं। खुद ही विश्वास करके

आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ती है। उनकी एक कविता है- 'कचरा बीननेवाली लड़कियाँ'-

"किसी रजिस्टर में इनका नाम नहीं लिखा
ढूँढ़ने पर भी इनके बाप का पता नहीं मिलता
इनका कहीं कोई भाई नहीं दिखता
यहाँ तक कि खुद ही
अपनी माँ होती है
ये कचरा बीननेवाली लड़कियाँ"[55]

कचरा बीननेवाली लड़कियों का नाम किसी रजिस्टर में नहीं लिखा है। इनके बाप का, भाई का भी पता नहीं है। लेकिन वह खुद ही अपनी माँ होती है। संघर्षों को झेलती हुई परिस्थितियों से लड़कर स्त्री आगे बढ़ती है।

2.7.3. पवन करण

'पवन करण' ने अपनी कविताओं में स्त्री को, उसकी पहचान और समस्याओं को दर्शाने का प्रयास किया है। आज की स्त्री अपने खिलाफ़ होते अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाती है। मन ही मन अपने अस्तित्व के बारे में सोचती रहती है। 'उसके दिन' नाम की कविता की पंक्तियाँ-

"उसकी इच्छाएँ
मेरी जेबों में भरी पड़ी है।
उसकी लहलहाती देह

जिसे बुरी तरह रौंदकर
मैं अभी अभी लौटा हूँ।"[56]

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की इच्छाओं को, भावनाओं को अपने जेब में कैद करके रखा गया है। लेकिन स्त्री पितृसत्तात्मकता की बंदिशें को पहचान गयी है। आज की स्त्री जान गयी है कि अपनी अस्मिता तक को पुरुष ने अपने जेबों में कैद कर रखा है। इसलिए वह खुद को खोजकर चलने लगी है।

2.7.4. अरुण कमल

समकालीन कविता में दैनिक जीवन की विसंगतियों की अभिव्यक्ति मिलती है। 'अरुण कमल' की कविताओं में भी ऐसी अभिव्यक्ति पायी जाती है। पितृसत्तात्मक समाज में नारी जाति की संपूर्ण यातना का चित्र अरुण कमल ने खींचा है। साथ ही नारी को निर्भीक होकर आगे बढ़ने का आह्वान भी देते हैं। 'एक नवजात बच्ची को प्यार' शीर्षक कविता में-

"जिस माँ ने अपने पति की मार चुपचाप सही
और जिस पिता ने देखा है तिलक-दहेज का क्रूर व्यापार
वे कैसे खुश होंगे
लेकिन आज नहीं है दुनिया उतनी कठोर
जो कल या परसों थी
समय के प्रवाह में
तुम्हारे लिए ही खुल रही है दुनिया
जल्दी जल्दी बढ़ो बच्ची।"[57]

आज स्त्री अपनी दयनीय स्थिति को पहचान गयी है। उसे तोड़कर अपने अधिकारों के प्रति वह जागरूक हो गयी है। इस विस्तृत भावना को ही स्त्री अस्मिता कही जाती है। ऐतिहासिक कुरीतियों की दीवारें तोड़कर स्त्री आज खुले आसमान के नीचे आ जाती है।

2.7.5. चन्द्रकांत देवताले

'औरत का हँसना' शीर्षक कविता में स्त्री की ज़िन्दगी की महागाथा की ओर इशारा करते हुए 'चन्द्रकांत देवताले' इस प्रकार कहते हैं-

> "सचमुच औरतों का हँसना
> कई बार परदे की तरह होता है
> आमूनन प्रारंभ और अंत के बीच
> मध्यांतर में गिर परदे की तरह।"[58]

इन पंक्तियों में स्त्री का महावृत्तान्त बताया गया है। अपनी ज़िन्दगी में दुःख की पीड़ा सहने के बावजूद भी वह हँसती है। जिस प्रकार परदे से रंगमंच बदलता रहता है ठीक वैसे स्त्री भी अपनी ज़िन्दगी में परदे से दृश्यों को बदलती रहती है।

2.7.6. उमाशंकर चौधरी

लड़की के प्रति पुरुष वर्ग की सोच को 'उमाशंकर चौधरी' अपनी कविता में समझाते हैं-

> "हर लड़की को वह सिर्फ
> खेलने और खाने की वस्तु समझता था
> उनके लिए वह 'माल' शब्द का प्रयोग करता था

उन्हें देख सीटी बजाता था

....

....

ऐसे जैसे वह उसे एकबारगी

पी जाना चाहता हो।"[59]

इसमें स्त्री स्वत्व के विघटन का चित्रण किया गया है। वैश्वीकरण के इस माहौल में स्त्री के लिए 'माल' शब्द का प्रयोग हम करते हैं। स्त्री मात्र उपभोग की वस्तु बन गई है।

2.7.7. मंगलेश डबराल

प्रचलित दूषित व्यवस्था के प्रति विद्रोह करना ही समकालीन कविता का तेवर है। स्त्री की अवस्थाओं का चित्रण 'मंगलेश डबराल' ने ऐसा किया है-

"किसी चट्टान के पीछे
सन्नाटे में एकाएक एक स्त्री सिसकती है
अपनी युवावस्था में
अगले ही दिन आने वाले
बुढ़ापे से बेख़बर।"[60]

इसमें स्त्री के शोषण का चित्रण है। उसकी ज़िन्दगी हमेशा दुःखपूर्ण रहती है। वह सिसकती ज़रूर है। लेकिन इसमें उसकी विवशता नहीं प्रतिरोध झलकती है।

2.7.8. प्रयाग शुक्ल

'प्रयाग शुक्ल' की कविता 'उसका चेहरा' में स्त्री जीवन की ओर इशारा किया गया है।

> "उसके चेहरे में बसी है
> एक पीड़ा, वह हँसती है तो
> वह और उभर आती है
> कितना कम जानता हूँ
> उसे,
> नहीं, नहीं चेहरे को नहीं
> उस पीड़ा को
> जो मेरी भी है।"[61]

स्त्री के संपूर्ण जीवन में दुःख-दर्द का ही आधिक्य है। इसके बावजूद भी वह हँसती है। ऐसी हँसी में उसका विद्रोह है। वह सिर झुककर एक कोने में बैठता नहीं। यहाँ कवि स्त्री की पीड़ा को आत्मसात करते हैं।

2.7.9. लीलाधर जगूड़ी

स्त्री की महत्ता एवं उसका सम्मान करके कवि 'लीलाधर जगूड़ी' ने अपनी कविता 'वह शतरुपा' में ऐसा चित्रिता किया है-

> "एक स्त्री मुझे पलटकर देखती है एक नज़र में सौ बार
> देखते-देखते
> वह शतरुपा स्त्री बदल देती है मुझे एक ही जीवन में

अनेक बार

नाभि से जिसकी खिलता है हज़ार पंखुड़ियोंवाला कमल"[62]

नारी के विभिन्न रूप होते हैं। उस शतरूपा स्त्री प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को बदल भी देती है। नारी के बिना यह दुनिया अधूरा ही है। वह शक्तिस्वरूपिणी है।

2.7.10. राजेश जोशी

'राजेश जोशी' की 'एक आदिवासी लड़की की इच्छा' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ-

"लड़की की इच्छा है
छोटी-सी इच्छा
हाट इमलिया जाने की।
सौदा-सूत कुछ नहीं लेना
तनिक-सी इच्छा है- काजर की
बिन्दिया की।"[63]

इसमें लड़की की इच्छाओं का वर्णन किया गया है। स्त्री के पास छोटी सी इच्छा ही है। वह उसमें खुशी-खुशी से जीना चाहती है।

2.7.11. अलोक धन्वा

भारतीय स्त्री के स्निग्ध और त्रासद जीवन का चित्रण 'आलोकधन्वा' ने किया है। भूमंडलीकरण ने स्त्री को मात्र बिकाऊ चीज़ बना दी है। उसे पत्नी, प्रेमिका, वेश्या के रूपों में बाँटकर अलग-अलग रखने की नीति अपनायी है। क्योंकि

स्त्री उन दायरों से आगे मत जाएँ। उनकी 'भागी हुई लड़कियाँ' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ-

"तुम
जो
पत्नियों को अलग रख़ते हो
वेश्याओं से
और प्रेमिकाओं को अलग रख़ते हो
पत्नियों से
कितना आतंकित होते हो
जब स्त्री बेख़ौफ़ भटकती है
ढूँढ़ती हुई अपना व्यक्तित्व
एक ही साथ वेश्याओं और पत्नियों
और प्रेमिकाओं में।"[64]

आज स्त्री बेख़ौफ़ होकर अपना व्यक्तित्व ढूँढ़ रही है। आज की स्त्री अपनी अस्मिता से वाकिफ़ है, चाहे पत्नी, प्रेमिका, या वेश्या स्त्री क्यों न हो।

2.7.12. देवी प्रसाद

स्त्री के स्वत्व विघटन की ओर इशारा करते 'औरतें यहाँ नहीं दिख़ती' कविता में 'देवी प्रसाद' इस प्रकार कहते हैं-

"औरतें यहाँ नहीं दिख़तीं
वे आटे में पिस गयी होंगी
या चटनी में पुदीने की तरह महक रही होंगी

....

....

घर के चूहों की तरह वे

घर छोड़कर कहाँ भागेंगी।"[65]

स्त्री का व्यक्तित्व घर के पारिवारिक बंधनों में जकड़कर दबाया जाता है। जिस तरह घर के चूहे डर के कारण किसी कोने में छिपे रहते हैं उसी तरह स्त्री भी घर के भीतर रहने के लिए मज़बूर हो जाती है। मज़बूरी की इस जंजी को तोड़कर बाहर आने का साहस निश्चय ही स्त्री में है। लेकिन व्यवस्था रुपी दीवार बाधा बनकर उसके सामने खड़ी है। व्यक्तित्व विहीनता को पूर्ण रूप से जान लेना असल में 'व्यक्तित्व' की ओर उन्मुख होने का प्रमाण है।

2.7.13. विष्णु नागर

'विष्णु नागर' की कविता 'उसे यकीन था' में स्त्री मुक्ति का स्वर सुनाई पड़ता है।

"उसने कहा, आओ सहेलियो, हौसला करो, उड़ो

उसे यकीन था कि उसकी सहेलियाँ भी कबूतर हैं

उड़ेंगी

....

....

जहाँ दाना होगा, वहाँ जाल भी हो सकता है।"[66]

स्त्रियों में भी उड़ने की शक्ति है। उसे अपनी अस्मिता, स्वतंत्रता के लिए खुद लड़नी होगी। लेकिन पितृसत्ता की कूटनीति से अवगत होना भी काफ़ी ज़रुरी है। क्योंकि स्त्री को यह सत्ता हमेशा दबाकर रखना चाहती है।

2.7.14. राजकमल चौधरी

'राजकमल चौधरी' ने 'स्त्री' शीर्षक कविता में लिखा है-

"स्त्री कभी नग्न नहीं होती है
अपनी त्वचा से ढकी हुई
उजाले में सोती है।"[67]

पितृसत्तात्मक समाज स्त्री को मात्र उसके शरीर के साथ जोड़कर देखता है। उसकी लज्जा का अपहरण करते रहता है। लेकिन स्त्री अपनी लज्जा को बचाने के लिए शरीर को चमड़ी से ढ़ककर चलती है।

2.7.15. सौरभ राय भगीरथ

भूमंडलीकरण के इस युग में स्त्री के साथ सबसे-ज़्यादा अत्याचार हो रहा है। कवि 'सौरभ राय भगीरथ' की 'भ्रातृत्व' नामक कविता की पंक्तियाँ-

"उसे खेलता देख
मैं डर जाता
वो हंसती रहती
में डर रहता"[68]

कवि उसकी हंसी में, खेलने में डरते हैं क्योंकि वह असुरक्षित है।

2.7.16. अरुण चन्द्र रॉय

'अरुण चन्द्र रॉय' की 'एक बेफिक्र दिखनेवाली लड़की' में स्त्री का बेफ़िक्र रूप नज़र आता है।

> "वह जो
> 30 वर्षीया लड़की
> ....
> ....
> दफ्तर की बालकनी की रेलिंग से
> टिकी है बेफिक्री से
> ....
> ....
> एक भय है
> उन अनचाहे स्पर्शों का
> जो होता है
> हर बैठक के बाद होने वाले
> 'हाई टी' के साथ
> वह बचना चाहती है उनसे"[69]

आज की स्त्री पितृसत्तात्मक व्यवस्था की चालों से वाकिफ़ है। इसलिए अनचाहे स्पर्शों से दूर रहना चाहती है। स्त्री ने आज बेफिक्र होकर जीना शुरु किया है।

2.7.17. अरविंद कुमार मुकुल

'अरविंद कुमार मुकुल' की 'तुम एक स्वप्न हो' शीर्षक कविता में स्त्री को जीवन के स्वप्न मानते हैं।

“तुम एक स्वप्न हो
प्यार के स्वप्न
जीवन के स्वप्न
मैं पाता हूँ, तुममे शक्ति
और जीवंतता।”[70]

स्त्री की महत्ता का वर्णन करके उसकी शक्ति की वंदना की है। शक्ति रुपी उसकी अस्मिता को मान्यता दी गयी है।

निष्कर्ष

समकालीन कविता में इस प्रकार स्त्री-विमर्श का प्रखर स्वर हम देख सकते हैं। वैश्वीकरण, निजीकरण और बाज़ारीकरण के इस माहौल में स्त्रियों की स्थिति काफ़ी दर्दनाक है। अतः समकालीन कवियों ने स्त्री-अस्मिता, उसके अधिकार, महत्ता, स्वतंत्रता, स्त्री मुक्ति के लिए विद्रोह करना शुरु किया है। इन कवियों ने स्त्री की यथार्थ स्थिति को अधिक उभारा है। इससे पूर्व आदिकाल, भक्तिकाल, तथा रीतिकालीन काव्य में दो-तीन कवियों को छोड़कर शेष सभी के काव्यों में स्त्री को श्रृंगारिकता, बाधा, पापिनी, नीच, माया आदि की हैसियत दी थी। लेकिन आधुनिक काव्य की शुरुआत से स्त्री को भी आगे बढ़ने का मौका मिला है। औद्योगीकरण, स्त्री-शिक्षा आदि के कारण स्त्री की स्थिति में भी सुधार आयी। स्त्री को ‘मानवी’ रूप देने लगा है। समकालीन कविता में पुरुष कवियों ने स्त्रियों को ऊँचा उठाने का, सम्मान देने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। उसकी बदलती अस्मिता को पेश करने में इन कवियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

संदर्भ-सूची

1. गिरिजाकुमार माथुर- गिरिजाकुमार माथुर की काव्य-यात्रा मुझे और अभी कहना है , भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र.सं. 1991, पृ.4
2. उद्धृत : विनय विश्वास- आज की कविता, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2009, पृ.18
3. कल्याण चन्द्र- समकालीन कवि और काव्य, चिंतन प्रकाशन, प्र.सं. 1996, पृ. प्रसंगवश से
4. वही, पृ. फ्लैप से
5. अजय तिवारी- समकालीन हिन्दी कविता और कवि, पृ.262
6. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय- समकालीन कविता की भूमिका, माक्मिलेन प्रकाशन, सं. 1976, पृ.3
7. आलोचना, अप्रैल-जून -1973, पृ.84
8. उद्धृत : कल्याण चन्द्र- समकालीन कवि और काव्य, चिंतन प्रकाशन, प्र.सं. 1996, पृ.21-22
9. उद्धृतः डॉ. अंजनी कुमार दुबे- समकालीन कविता के विविध आयाम, 'भावुक', पूर्वांचल प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.19
10. डॉ. नरेन्द्र मोहन- कविता और वैचारिक भूमिका, भूमिका भाग से
11. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ. वक्तव्य से
12. शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.31-32
13. शिवकुमार शर्मा- हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, बीसवाँ सं. 2012, पृ.42

14. उद्धृत : डॉ. वल्लभदास तिवारी- हिन्दी काव्य में नारी, जवाहर पुस्तकालय, प्र.सं. 1974, पृ.168
15. उद्धृत : मल्लिखार्जुनराव- हिन्दी और तेलुगु कविता की नारी परिकल्पना, संगम प्रकाशन, प्र.सं. 1983, पृ.57
16. शिवकुमार शर्मा- हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, बीसवाँ संस्करण 2012, पृ.48
17. चन्दबरदाई- पृथ्वीराज रासो, पद्मावती समय, पृ.28
18. शिवकुमार शर्मा- हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, आशोक प्रकाशन, वीसवाँ सं. 2012, पृ.138
19. श्याम सुन्दरदास- कबीर ग्रंथावली, पृ.80
20. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी- कबीर, राजकमल प्रकाशन, सं. 2012, पृ.161
21. सं. माताप्रसाद गुप्त- पद्मावत (मानसरोवर खंड), पृ.120
22. उद्धृतः डॉ. वल्लभदास तिवारी- हिन्दी काव्य में नारी, जवाहर पुस्तकालय, प्र.सं. 1974, पृ.262
23. तुलसीदास- रामचरितमानस, आरण्यकांड, 3/4/5, पृ.573
24. उद्धृत : शहनाज़ बानो- भक्तिकाव्य में पितृसत्ता और स्त्री-विमर्श, अनिरुद्ध बुक्स, प्र.सं. 2010, पृ.142
25. सं. किशोरीलाल गुप्त- सूरसागर, पृ.186
26. सं. नंददुलारे वाजपेयी- सुरसागर, सूरदास, पृ.180
27. शिवकुमार शर्मा- हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, बीसवाँ सं. 2012, पृ.291

28. परशुराम चतुर्वेदी- मीराबाई की पदावली (भाग-2), पृ.186

29. वही, पृ.111

30. उद्धृतः सं. कुंवरपाल सिंह- भक्ति आन्दोलनः इतिहास और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2002, पृ.301

31. शिवकुमार शर्मा- हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, बीसवाँ सं. 2012, पृ.336

32. केशवदास- रसिक-प्रिया, छन्द 59, पृ.53

33. बिहारी रत्नाकर, पृ.236

34. कविता रत्नाकर, पृ.23

35. डॉ. शिवकुमार शर्मा- हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन बीसवाँ सं. 2012, पृ.337

36. उद्धृतः डॉ. वल्लभदास तिवारी- हिन्दी काव्य में नारी, जवाहर पुस्तकालय, प्र.सं. 1974, पृ.501

37. प्रतापनारायण मिश्र- प्रताप-लहरी, पृ. 114

38. हरिऔध- प्रियप्रवास, पृ.49

39. मैथिलीशरण गुप्त- पंचवटी, पृ.33

40. प्रसाद- कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, प्र.सं. 2008, पृ.63

41. पंत- युगवाणी, भारती भंडारी लीडर प्रेस, सं. 2006, पृ.64

42. निराला- अपरा, राजकमल प्रकाशन, पहला सं. 1992, आवृत्ति 2009, पृ.26

43. आलोचना, जनवरी-मार्च 2001, पृ.194

44. महादेवी वर्मा- नीरजा, लोकभारती प्रकाशन, सं. 2008, पृ.56

45. सुभद्राकुमारी चौहान- मुकुल, पृ.102

46. दिनकर - उर्वशी, उदयाचल प्रकाशन, प्र.सं. 1971, पृ.124

47. नागार्जुन- इस गुब्बारे की छाया में, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.50

48. त्रिलोचन- दिगंत, जगतशंकर प्रकाशन, प्र.सं. 1957, पृ.25

49. सुमन- विश्वास बढ़ता ही गया, आत्माराम एण्ड संस प्रकाशन, द्वि.सं. 1967, पृ.53

50. पंचशील शोध समीक्षा, अप्रैल- जून 2011, अंक- 12, पृ.55

51. रचनावली- मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2007, पृ.179

52. नन्दकिशोर नवल- छायांतर, लोकभारती प्रकाशन, प्र.सं. 2003, पृ.152

53. उद्धृतः डॉ. चन्द्रशेखर त्रिपाठी- साहित्य और समाज की संरचना में, ग्रंथलोक प्रकाशन, प्र.सं. 2013, पृ.21

54. धूमिल- संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 1972, पाँचवीं आवृत्तिः 2003, पृ.64

55. वागर्थ, अंक 213, अप्रैल-2013, पृ.62

56. पवन करण- स्त्री मेरे भीतर, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2004, पृ.56

57. अरुण कमल- अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, सं. 2004, पृ.49

58. देवताले- उजाड़ में संग्रहालय, राजकमल प्रकाशन, प्र. सं. 2003, पृ.105

59. उमाशंकर चौधरी- कहते हैं तब शांहशाह सो रहे थे, भारतीय ज्ञानपीठ, प्र.सं. 2009, पृ.11

60. मंगलेश डबराल- पहाड़ पर लालटेन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 1997, पृ.21

61. प्रयाग शुक्ल- अधूरी चीज़ें तमाम, राजकमल प्रकाशन, सं. 1987, पृ.65

62. लीलाधर जगूड़ी- अनुभव के आकाश में चाँद, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 1994, पृ.101

63. राजेश जोशी- धूप-घडी, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2002, पृ.38

64. आलोकधन्वा- दुनिया रोज़ बनती है, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पाँचवीं आवृत्ति-2014, पृ.44-45

65. उद्धृत : मंजु रुस्तगी- अनामिका का काव्य, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2015, पृ.39

66. विष्णु नागर- कुछ चीज़ें कभी खोई नहीं, हिन्दी बुक सेन्टर, प्र.सं. 2001, पृ.72

67. नन्दकिशोर नवल- समकालीन काव्य-यात्रा, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2004, पृ.231

68. हंस, जनवरी 2013, अंक. 6, पृ.51

69. हंस, मई- 2013, अंक. 10, पृ.49

70. नवनिकष, दिसंबर 2015, अंक. 6, पृ.50

तीसरा अध्याय

बदलती स्त्री अस्मिता : हिन्दी की समकालीन स्त्री कविता में (चुनी हुई कवयित्रियों के विशेष संदर्भ में)

3.1. हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श

हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श की चर्चा कई दशकों से हो रही है। इससे स्त्री की मुक्ति, उसके शोषण, उत्पीड़न, स्वतंत्रता, अधिकार, अस्मिता की बातें सामने आ रही हैं। स्त्री-विमर्श साहित्य के अंतर्गत उस साहित्य को वर्गीकृत किया जाना चाहिए कि जिसके केन्द्र बिन्दु में स्त्री हो। ऐसे साहित्य में स्त्री से सरोकार रखने वाले मुद्दों को उठा देना चाहिए। स्त्री-विमर्शवादी साहित्य में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति विद्रोह किया जा रहा है। अपनी अस्मिता, स्वत्व, चेतना, मुक्ति, अपने शरीर पर स्व के अधिकार के लिए स्त्री-विमर्श साहित्यकार प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। उपभोगवादी संस्कृति एवं पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं। शोषण को अस्वीकार करके अपने अधिकार के लिए लड़ाई लड़ते हैं। हाशिए पर स्थित, दमित स्त्रियों की मुक्ति का स्वर इसमें मुखरित है।

आज स्त्री-आन्दोलन और स्त्री-विमर्श के नाम प्रचलन में है। लेकिन पहले साहित्य में नारी का चित्रण उपभोग के रूप में अधिक हुआ वह एक ओर विलासिता की मूर्ति थी, तो दूसरी ओर पति के प्रति आदर रखनेवाली पतिव्रता पत्नी। लेकिन आधुनिक काल में नवीन शिक्षा पद्धति एवं समाज सुधारकों की प्रेरणा से नारी, मुक्ति एवं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई। इसमें विभिन्न स्त्री संगठनों ने विशेष योगदान दिए हैं। स्त्री में आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनने की भावना जागने लगी। साथ ही कला, विज्ञान, प्रशासन, राजनीति के क्षेत्र में अपनी पात्रता दिखाने के लिए वह आगे बढ़ी।

हिन्दी साहित्य में स्त्री को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, और आत्मकथा आदि सभी विधाओं में स्त्री जागरण विषयक

रचनाएँ देखने को मिलती हैं। कविता के क्षेत्र में मध्यकालीन कवयित्री मीराबाई से लेकर आधुनिक कालीन कवि, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथलीशरण गुप्त जयशंकर प्रसाद, सूर्यिकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, नागार्जुन, मुक्तिबोध, मंगलेश डबराल, चन्द्रकांत देवताले, उमाशंकर चौधरी, अनामिका, कात्यायनी, अरुण कमल, पवन करण, निर्मला पुतुल, प्रयाग शुक्ल, आलोकधन्वा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों की कविताओं ने नारी अस्मिता और उसके संघर्षों को सूक्ष्मता के साथ दर्शाया गया हैं। कहानी और उपन्यास के क्षेत्रों में बंग महिला, शरत चंद्र, प्रेमचंद, अज्ञेय, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मन्नु भंडारी, गिरिराज किशोर, अमृतलाल नागर, नरेश मेहत्ता, अन्नपूर्णा देवी, कंचनलता, सूर्यबाला, कृष्णा अग्निहोत्री, नासिरा शर्मा, उषा प्रियंवदा, चित्रा मुद्गल, मृदुलागर्ग, प्रभा खेतान, अलका सरावगी, मैत्रेयी पुष्पा, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, पंकज बिष्ट, नमिता सिंह, कमल कुमार, ज्योत्सना मिलन आदि महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। इन रचनाकारों की रचनाओं में नारी जीवन के यथार्थ चित्रण मिलते हैं। नारी जीवन के विभिन्न पहलूओं पर इन लेखकों ने अपनी लेखनी चलाई है। नाटक के क्षेत्र में मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, मन्नु भंडारी, नन्द किशोर आचार्य, मीरा कांत, उषा गांगुली, भीष्म साहनी आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटककारों ने नारी की हीन अवस्था से मुक्ति के लिए प्रयत्न किया है। स्त्री-विमर्श साहित्य, यथार्थ तभी संभव है जब कोई स्त्री अपनी जीवन कहानी खुलकर लिखें। आज ऐसे खुलकर लिखती लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, कौसल्या बैसंत्री, कृष्णा अग्निहोत्री, सुशीला टाकभौरे, कुसुम अंसल, मन्नू भंडारी, पद्मा सचदेव आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं।

3.2. स्त्री-विमर्श और स्त्री-लेखन

जिस साहित्य के केन्द्र में स्त्री रहती हो और उसके संबंध में विचार किया गया हो, उसे स्त्री-विमर्श साहित्य के अंतर्गत मानना चाहिए। चाहे यह स्त्री द्वारा या पुरुष द्वारा लिखा गया हो। स्त्री की अस्मिता, उसकी मुक्ति, अधिकार से संबंधित रचनाएँ स्त्री-विमर्शी साहित्य के अंतर्गत आती है। इसमें महत्व इस बात का रहता है कि यह 'स्त्री-दृष्टि' से लिखा गया है। फिर भी स्त्री के द्वारा लिखे जाने पर रचना में अधिक तीव्रता आ जाती है। क्योंकि उसमें स्त्री खुद को उतार रही है। स्त्री लेखन के बारे में महादेवी वर्मा का मानना है कि नारी के लिए नारीत्व अनुभव है। पुरुष के लिए नारीत्व केवल अनुमान ही है। पुरुष के द्वारा नारी चित्रण अधिक आदर्शवादी होते हैं परंतु उसमें सत्य और यथार्थता नहीं होगी। "नारी का मानसिक विकास पुरुषों के मानसिक विकास से भिन्न परंतु अधिक द्रुत, स्वभाव अधिक कोमल और प्रेम-घृणादि भाव अधिक तीव्र तथा स्थायी होते हैं। इन्हीं विशेषताओं के अनुसार उसका व्यक्तित्व विकास पाकर समाज के उन अभावों की पूर्ति करता रहता है जिनकी पूर्ति पुरुष स्वभाव द्वारा संभव नहीं।"[1] स्त्री स्वतंत्रता, अस्मिता, अधिकार, मुक्ति की स्थापना की विचारधाराएँ रचना के स्तर पर बढ़ाना स्त्री लेखन का तात्पर्य है।

भोगा हुआ यथार्थ एक महत्वपूर्ण चीज़ है। साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान भी है। स्त्री-विमर्श की कसौटी पर चर्चा करें तो स्त्री की पीड़ा की कथा एक स्त्री होकर ही जानी जा सकती है। एक स्त्री ही अपनी संवेदना, भावना, और विचार को पूर्ण तीव्रता के साथ अभिव्यक्त कर सकती है। पुरुष अपने अनुभव के आधार पर स्त्री के बारे में लिखता है। उसमें थोड़ी कल्पना रहेगी। एक स्त्री को 'स्त्री' रुप में

अनुभव करना और उसकी संवेदना को उसी रूप में अभिव्यक्त करना एक पुरुष रचनाकार के लिए संभव नहीं है। 'स्टीफन हीथ' का मत है कि "औरत की देह के बारे में बोलना आसान है, खासकर मर्द होकर बोलना आसान है, किंतु उसकी देह के बारे में उसकी तरह बोलना आसान नहीं। स्त्री के प्रति पुरुष का अनुभव चूँकि देह और आत्मा के दमन से शुरु होता है, इसलिए अनुभव की एकान्विती संभव नहीं और पुरुष की भूमिका विपक्ष में खड़े होने की हो जाती है। वह बाहर रहने को अभिशप्त है। पुरुष का स्त्रीत्ववाद अन्ततः एक मर्दाना काम ही है।"[2] स्त्री-देह के रूप में स्त्री का अनुभव पुरुष के लिए आसान ही नहीं, नामुमकीन है।

स्त्री-विमर्श के अंतर्गत स्त्री लेखन वास्तव में स्त्री की अनुभूति का साहित्य है। स्त्री-लेखन स्त्री शरीर से उत्पन्न हो जाता है। वह अपने अनुभवों को निजी रूप में प्रस्तुत करती है स्त्री के द्वारा लिखे गये साहित्य में संवेदना की गहराई अधिक प्रभावशील होती है। स्त्री अपने जीवन से संबंधित पुरानी रुढ़ियों एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर प्रहार करके लिखती है। अपनी इच्छाओं और अपनी अस्मिता के प्रति जागती दिखाई देती है। स्त्री-लेखन का उद्देश्य अपनी पहचान और स्वतंत्रता की स्थापना, लेखन द्वारा समाज के सामने प्रस्तुत करना है। मौजूदा पुरुष मुल्य व्यवस्था को तोड़कर पुरुष-कर्ता के स्थान पर रहकर वह लिखती रहती है। साथ ही स्त्री की परंपरागत छवि को, उस घूँघट और लज्जावाली छवि से बाहर निकालकर उसे तोड़कर वह आगे बढ़ रही है। उस समकालीन जगत में स्त्री पीछे छूटना नहीं चाहती है। इसलिए स्त्री-लेखन 'अ-लग' है। स्त्री-लेखन के स्तर पर पुरुष लेखन से भिन्न एक अभिन्नता एवं नई संवेदना दिखाई देती है।

स्त्री-विमर्श के अंतर्गत स्त्री-लेखन को अलग सौंदर्य और चेतना ज़रूर होती है। स्त्री रचना अनन्य होती है, क्योंकि प्रसूति वेदना, मासिक धर्म आदि का सौंदर्य केवल एक स्त्री ही अभिव्यक्त कर सकती है। स्त्री अपने पर हो रहे अत्याचार और अन्याय को दिखाने के लिए खुल्लम-खुल्लम लिखती है। यौन-संबंध, असमानता, अपमान, पीड़ा, विद्रोह, प्रतिरोध, अधिकार, मुक्ति आदि से संबंधित रचनाएँ स्त्री रच सकती है। इसके ज़रिए समाज को यह दिखान चाहती है कि 'मैं भी मानवी हूँ'।

आज की स्त्री अपनी आँखें खोली है। उसे पता चला है कि उसके अधःपतन के पीछे 'पुरुष राजनीति' ही है। इसलिए पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध वह अपनी लड़ाई खुद लड़ने लगी है। साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से वह अपने मुक्तिद्वार खोलने लगी हैं। स्त्री, साहित्य के माध्यम से अपने खोये अस्तित्व को वह सँवारती है। स्त्री पहले समाज में अपने को खुद दूसरे दर्जे का समझकर और समाज के साथ समझौता कर जीवन बिताती थी। लेकिन आज की स्त्री ऐसी नहीं है, वह समाज के विरुद्ध विद्रोह करने लगी है। साहित्यिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में अपने बदलते स्वरूप को अभिव्यक्त करने लगी है। स्त्री-लेखन और स्त्री-विमर्श से प्रेरणा पाकर आज की स्त्री अपनी 'बदलती अस्मिता' को स्थापित करने के लिए आगे बढ़ रही है।

वर्तमान स्त्री-विमर्श के साहित्य लेखन में स्त्री-रचनाकारों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। साहित्य की हर विधा में स्त्री-लेखन हो रहा है। जिस साहित्य में नारी के जीवन संबंधी विविध पहलुओं पर चर्चा की गई हो, जिस साहित्य में नारी को लेकर लिखा गया हो उस साहित्य को स्त्री-विमर्शी साहित्य के अंतर्गत रखना होगा। स्त्री की पराधीन स्थिति को सामने लाने में पुरुष लेखकों का योगदान रहा

है। लेकिन उसका आधार सहानुभूति है, यथार्थता या स्वानुभूति नहीं है। स्त्री को केन्द्र में रखकर लिखा गया साहित्य चाहे वह किसी लेखक द्वारा लिखा गया हो या लेखिका द्वारा लिखा गया हो, दोनों प्रकार के साहित्य को स्त्री-विमर्श साहित्य कहा जाना चाहिए। लेकिन स्त्री-लेखन में ही उसका अनुभव, उसकी पीड़ा और विद्रोह को तीव्रता के साथ अभिव्यक्ति मिली है। अतः स्त्री-विमर्श को स्त्री-लेखन के केन्द्र में माना जाता है। भुक्तभोगी व्यक्ति ही अपना दर्द गहराई से अभिव्यक्त कर सकते हैं।

3.3. बदलती स्त्री अस्मिता : समकालीन स्त्री-कविता में

आज साहित्य की परिपाटी में विमर्शों का दौर शुरु हुआ है। समकालीन कविता में भी इसकी झलक पायी जाती है। स्त्री-विमर्श, पारिस्थितिक विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, बाज़ारीकरण आदि इसमें उल्लेखनीय काव्य वस्तुएँ हैं। 'स्त्री-विमर्श' जो इक्कीसवीं सदी के नये साहित्यिक विमर्शों में प्रमुखता से उभरकर आया है। स्त्री-विमर्श माने स्त्री की अपनी अस्मिता की पहचान, समता, स्व का चिंतन, अस्तित्व, और समानाधिकार का विचार ही है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था से स्त्री को बाहर लाने का प्रयास एवं स्त्री को स्त्री रुप में जीने की स्वतंत्रता प्रदान करना इसका लक्ष्य है।

समकालीन कविता, काव्य के क्षेत्र को काफ़ी व्यापक बनाया है। उसमें मानवीय संवेदना पर बल दिया गया है। इसका प्रमुख स्वर प्रतिवाद का है। हाशियेकृत समाज की केन्द्रीय उपस्थिति, आक्रोश, समानता का भाव, प्रतिरोध, कुण्ठा, तनाव, स्वतंत्रताबोध, अस्मिता चिंतन की भावना आदि इसमें पायी जाती है। समकालीन काव्य-संसार में स्त्रियों ने विपुल मात्रा में अपना सान्निध्य दिखाया है। समकालीन कविता में स्त्री-विमर्शवादी स्वर बड़े संवेदनशील और व्यापक स्तर पर

सुनायी पड़ रहा है। अपनी कविताओं में स्त्रियों ने अपने जीवन से जुड़े अनेक संदर्भों को प्रस्तुत किया है। आज भूमंडलीकरण के इस दौर में स्त्रियाँ प्रदर्शन नहीं अपना स्वयं का दर्शन गढ़ रही है। समकालीन कवयित्रियों ने स्त्री जीवन से जुड़े लगभग समस्त मुद्दों पर लेखनी चलायी है। एक स्त्री रचनाकार की लेखनी उसके जीवन की अनुभूतियों, अनुभवों को यथार्थता के साथ प्रस्तुत कर सकती है। उनकी कविताओं में आत्मसजगता, मुक्ति की पुकार और अस्मिता की तलाश देखने को मिलती है। कवयित्री अनामिका बताती है-"स्त्रियाँ-विश्व-भर की स्त्रियाँ एक अलग नवोदित राष्ट्र-सरीखी धीरे-धीरे जगाती हुई उत्कृष्ट साहित्य रच रही हैं और दे रही हैं एक ऐसी दृष्टि जिसे सारी सृष्टि ही परमाणु के नाभिकीय बंध के भीतर नाचती हुई दिखाई दे।"[3] इसलिए समकालीन कविता में अब स्त्रियों की उपस्थिति को कोई अनदेखा नहीं कर सकता है।

स्त्री के रचना संसार की मूल चेतना में स्त्री स्वयं रही है। आज कवयित्रियाँ अपने परिवेश के प्रति सचेत रहती हैं। वर्तमान जीवन के अनुभवों से उभरनेवाली सच्चाइयों को इन कवयित्रियों ने निडरता के साथ अपनी कविताओं में चित्रित किया है। अब उसके हथियार बदल गए हैं। वह जिस घोडे पर सवार रही है, वह घोडा बदलती अस्मिता-बोध का निशान है। वह अपना अधिकार चाहती है। इसलिए शोषक सत्ता की त्रासद प्रवृत्तियों के विरुद्ध वह लड़ रही है। वह एक प्रकार से अलग ढंग का युद्ध ही है।

स्त्री आज मात्र दैहिक अनुभव और यौन शोषण के बारे में नहीं लिखती है। बल्कि अपना जीवन संघर्ष और अस्तित्व के बारे में भी लिखती है। अपना आत्मसम्मान, आज़ादी और स्वत्व के लिए संघर्षशील स्त्री का चित्रण समकालीन

कवयित्रियों की कविताओं में प्रचुर मात्रा में आया है। "अब जब औरत अपना नाम जान गयी है- अपनी पहचान का एहसास उसे हो गया है और उसके लिए वह संघर्षरत है, शिक्षा पाने के कारण अभिव्यक्ति की ताकत उसमें आ गयी है, तो अब वह लिखती है, तो अवश्य ही वह अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय होता है। स्त्री की अपनी दृष्टि अलग है। ठीक उसी तरह जैसे दलित या नीग्रो की। इसीलिए वह साहित्य भी अपने दृष्टिकोण तथा अपने बिंबों एवं अपने मिथकों के माध्यम से रचती है।"[4] स्त्री की अपनी अलग दृष्टि होती है।

स्त्री रचनाओं में सामान्यतः नारी के स्वत्व की अभिव्यंजना अनन्य है। उसका अपना एक अलग स्वरूप निर्मित किया गया है। अनन्यता स्त्री रचना को अधिक सौंदर्य और चेतना प्रदान करती है।

हिन्दी- कवयित्रियों की परंपरा का आरंभ आदिकाल से ही हो जाता है। उस समय 'मुक्ताबाई' जैसी महाराष्ट्र की संत कवयित्री ने खड़ीबोली में काव्यरचना की थी। भक्तिकाल में रामानंद की शिष्या 'करमाबाई', और श्रेष्ठ कवयित्री 'मीराबाई' ने भी सृजन किया था। मीराबाई की कविताओं में सामंती व्यवस्था के प्रति स्त्री विद्रोह का स्वर सुनाई पड़ा था। रीतिकाल में केशवदास की शिष्या 'राय प्रवीण' ने काव्यरचना की थी। ताज बेगम, दयाबाई, संत चरणदास की शिष्य सहजोईबाई, चन्द्रकला बाई इत्यादि का नाम उल्लेखनीय हैं। आधुनिककाल में 'प्रतापबाला', 'रामप्रिया जी', 'प्रतापकुँवरि बाई' आदि ने ब्रजभाषा काव्य की रचना की। 'बुंदेलबाला' ने खड़ीबोली में राष्ट्रकाव्य रचा था। बाद में स्वच्छंदतावादी युग में महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान आदि प्रसिद्ध कवयित्रियाँ हुईं। दोनों की

कविताओं में नारी-उद्गार के चित्रण देखने को मिलते हैं। आगे 'विद्यावती कोकिल', सुमित्राकुमारी सिन्हा, शकुन्तला श्रीवास्तव, दिनेशनंदिनी डालमिया, शकुंत माथुर, रमा सिंह, गीता पांडेय, कंचनलता सब्बरवाल, हीरादेवी चतुर्वेदी, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, मनोरमा मधु, सुमन राजे, सुभद्रा खुराना, मालती शर्मा, कमला मधोक इत्यादि उल्लेखनीय कवयित्रियाँ हुईं हैं। इसमें मीराबाई, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान हिन्दी की अग्रणी कवयित्रियाँ बनी हैं।

आज की नारी अपनी मुक्ति चाहती है। अपनी स्वयं की पहचान बनाने की कोशिश कर रही है। अपनी कविताओं के माध्यम से प्रतिरोध भी करती रहती है। समकालीन स्त्री कवयित्रियों के प्रमुख हस्ताक्षरों में अनामिका, कात्यायनी, सविता सिंह, गगन गिल, प्रज्ञा रावत, सुनीता जैन, निर्मला पुतुल, नीलेश रघुवंशी, वन्दना मिश्रा, सुधा उपाध्याय, रजनी तिलक, सुशीला टाकभौरे, वीरा, रेखा, कीर्ति केसर, सविता भार्गव, निर्मला ठाकुर, शीला सिद्धांतकर, आशा प्रभात्, मंजरी श्रीवास्तव, निर्मला गर्ग, रेखा मैत्र आदि आती हैं।

इन कवयित्रियों ने समकालीन कविता में बदलती स्त्री अस्मिता की चिनगारियाँ पैदा करने में महत्वपूर्ण कार्य किया है। ये कवयित्रियाँ चारदीवारी की बंद स्त्रियाँ नहीं हैं। ये कवयित्रियाँ चौखट से बाहर निकलकर नयी ज़मीन तलाशती स्त्री की अभिव्यक्ति हैं। अपनी भीतरी घुटन, व्यथा, अन्याय तथा अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए कवयित्रियाँ प्रतिरोध भी करती रहती हैं।

3.4. प्रमुख समकालीन कवयित्रियाँ : एक परिचय

➢ अनामिका

जन्म 1 अगस्त, 1961, मुज़फ्फरपुर (बिहार)। समकालीन कवयित्रियों में चर्चित नाम है 'अनामिका'। उनकी कविताओं में स्त्री की पहचान, उसकी स्वतंत्रता, मुक्ति के लिए विद्रोह करती स्त्री, अस्मिता के लिए चीखती स्त्री की भूमिका देखने को मिलती है। अनामिका की अधिकांश कविताएँ स्त्री केन्द्रित है। नारीवाद के स्वरूप अथवा समाज में नारी की स्थिति का चित्रण उनकी कविताओं में मौजूद है। उनका संपूर्ण साहित्य समाज और उसमें होने वाली गतिविधियों को एक स्त्री की दृष्टि से निहारता है। अनामिका की कविता प्रेम, दोस्ती, नारी की पीड़ा, उसकी आकांक्षाओं और इच्छाओं को समेटती है। उसका काव्य-संग्रह 'दूबधान' के आवरण पृष्ठ पर लिखा हुआ है- 'अनामिका सिर्फ कविता में ही नहीं, बल्कि अपने संपूर्ण लेखन में नारी-दृष्टि की एक उदार सांस्कृतिक प्रवक्ता बनकर अभरी हैं। उनका स्वर नयी सहस्त्राब्दी का स्वर है, जिसकी थिर हलचलों में कुलबुलाते कोमल सवाल अपनी तमाम फ़ितरतों के साथ स्थापित विमर्शों को अस्थिर करते चले जाते हैं।'

रचनाएँ : काव्य संग्रह : शीतल स्पर्श एक धूप को (1975), गलत पते की चिट्ठी (1979), समय के शहर में (1990), बीजाक्षर (1993), अनुष्टुप (1998), कविता में औरत (2004), खुरदुरी हथेलियाँ (2005), दूब-धान (2007), मेन आर नॉट बियोंड रिपेयर (अनुदित) (2009)।

उपन्यास: दस द्वारों का पींजरा, तिनका तिनके पास

कहानी : प्रतिनायक

विमर्श : स्त्रीत्व का मानाचित्र, पानी जो पत्थर पीता है, स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष, मन माँझने की ज़रूरत

सम्मान : राजभाषा पुरस्कार (1987), भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार (1995), मुनमुन सरकार पुरस्कार (2003), साहित्य सेतु सम्मान (2004), केदार सम्मान (2008), स्पंदन कृति पुरस्कार (2010)।

➢ **कात्यायनी**

जन्म : 1979

धारा के विरुद्ध तैरनेवाली कवयित्री है 'कात्यायनी'। उनकी कविताएँ यथार्थ के ज़्यादा नज़दीक हैं। उनमें आक्रोश का भाव विद्यमान है। कवयित्री ने अपने समय की विरूपताओं और विसंगतियों का खुलकल चित्रण किया है। कात्यायनी जी ने स्त्री के अधिकार, समाज में उसके स्थान को लेकर चिंतन किया है। स्त्री के इर्द-गिर्द रची गई उनकी कविताएँ यथार्थ के अछूते आयाम से हमें अवगत कराती है। उनकी कविता में स्त्री की आस्था का गीत मुखरित है। उसकी कविता में समाज के बीच जीती-जागती संघर्ष करती स्त्री दिखती है। साथ ही साथ कविता में विद्रोह की आकांक्षा और आकांक्षा के विद्रोह की अभिव्यक्ति भी मिलती है। कात्यायनी की कविता में प्रेम, दुःख, पीड़ा, विक्षोभ, क्रोध, शोक, व्यंग्य आदि को औज़ारों की तरह देख सकते हैं।

रचनाएँ : काव्य संग्रहः सात भाइयों के बीच चंपा, इस पौरुषपूर्ण समय में, जादू नहीं कविता, फुटपाथ पर कुरसी, राख-अंधेरे की बारिश में।

निबंध संकलन : दुर्ग-द्वार पर दस्तक (स्त्री-प्रश्न विषयक), षड्यंत्ररत मृतात्माओं के बीच, कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त।

- **सविता सिंह**

जन्म : 1962, बिहार

समकालीन कवयित्रियों में एक प्रमुख हस्ताक्षर है 'सविता सिंह'। उनकी कविताओं में गहरा आत्मसंघर्ष और आत्ममंथन देखने को मिलते हैं। उनकी कविताओं में स्त्री को सहजता से चित्रित किया गया है। उनमें स्त्री की स्वायत्तता का बोध है। सविता की कविता दासता का घोर विरोधी और स्त्री-मुक्ति के पक्षधर की कविता है। स्त्री-चेतना, अस्मिता, स्वप्न, आशा-आकांक्षा सब उनकी कविता में उपस्थित हैं।

रचनाएँ : काव्य संग्रह : अपने जैसा जीवन (2001)

नींद थी और रात थी (2005)

पचास कविताएँ : नयी सदी के लिए चयन (2012)

स्वप्न समय (2013)

सम्मान : हिन्दी अकादमी पुरस्कार

रज़ा सम्मान

- **गगन गिल**

जन्म : 1959 दिल्ली।

स्त्री अस्मिता को तलाशती कवयित्री है 'गगनगिल'। उनकी कविताओं में संशय, आकांक्षा, स्वप्न, प्रश्न जैसे पद बार-बार आते हैं। उनके यहाँ एक अनकहे

दुख का अवसाद पाया जाता है। उसकी कविता देह में जीवित और देह के पार जीवित स्त्री की कविता है। अधिकांश कविताओं में खास तरह की अन्तर्मुखता पायी जाती है।

काव्य संग्रह : एक दिन लौटेगी लड़की (1989)
अन्धेरे में बुद्ध (1996)
यह आकांक्षा समय नहीं (1998)
थपक-थपक दिल थपक-थपत (2003)

- **प्रज्ञा रावत**

जन्म : दिसंबर 1961 उत्तर प्रदेश।

समकालीन कवयित्रियों में 'प्रज्ञा रावत' का स्थान महत्वपूर्ण है। उनकी अधिकांश कविताएँ स्त्री-जीवन से जुड़ी छोटी बातों को आधार बनाती है। प्रज्ञा रावत की कविता स्त्री के मन के व्यापक आयामों को छूती है। उनकी कविताओं में घर, परिवार, माता-पिता, नौकरपेशा स्त्री, और अविवाहित स्त्रियाँ हैं। प्रज्ञा रावत की कविता आशा और उम्मीद की तलाश भी है।

कविता संग्रह : जो नदी होती
सम्मान : साहित्य सुरभि अलंकरण (2010)

- **सुनीता जैन**

जन्म : 1940, हरियाणा।

सुनीता जैन की कविताओं का अपनी एक अलग पहचान है। मौजूदा समाज में स्त्री की हालत का चित्रण सुनीता जैन ने किया है। नारी के गारिमामय जीवन

को मान्यता देकर उसे बचाकर रखना चाहती है। औरतों के संकट को शब्दबद्ध करने में कवयित्री सफल हुई है। उनकी कविताओं में करुणा, प्रेम, और ममत्व की सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति भी मिलती है।

कविता संग्रह : हो जाने दो मुक्त, कौन-सा आकाश, रंगरति, एक और दिन, कितना जल, सूत्रधार सोते हैं, कहाँ मिलेगी कविता, इस अकेले तार पर, यहीं कहींपर।

सम्मानः महादेवी वर्मा सम्मान,
प्रभा खेतान सम्मान,
अमेरिका में 'मैरी सैंडोज प्रैरि स्कूनर पुरस्कार',
व्यास सम्मान (2015)

- **निर्मला पुतुल**

जन्म : 1972, झारखंड।

समकालीन आदिवासी कवयित्रियों में 'निर्मला पुतुल' का स्थान महत्वपूर्ण है। उनकी कविताओं में आदिवासी जीवन, स्त्रियों के सुख- दुःख, पूरी गरिमा के साथ व्यक्त हुए है। स्त्री अस्मिता, उसके अधिकार और प्रतिरोध की गंभीर वाणी उनकी कविताओं में गुम्फित हैं। कवयित्री पुरुषवर्चस्वी समाज में स्त्री के स्वत्व की खोज करती रहती है।

कविता संग्रह : नगाड़े की तरह बजते शब्द (2015)
अपने घर की तलाश में,
बेघर सपने (2014)

सम्मान :	साहित्य सम्मान (2001)

विनोबा भावे पुरस्कार (2006)

भारत आदिवासी सम्मान (2006)

राष्ट्रीय युवा पुरस्कार (2009)

- **नीलेश रघुवंशी**

जन्म : 1969, मध्यप्रदेश।

समकालीन कवयित्रियों में प्रमुख है 'नीलेश रघुवंशी'। उसमें यथार्थवादी भावना निहित है। स्त्री अनुभव के एक नया और निजी स्वर उनकी कविताओं में पायी जाती है। उनकी कविताओं में आसपास, दैनिक जीवन के कार्यकलाप, सब शामिल हैं। स्त्री जीवन के विविध पहलुओं को सहज ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

कविता संग्रह: घर निकासी (1997)

पानी का स्वाद (2004)

अंतिम पंक्ति में (2008)

सम्मान :	भारत भूषण अग्रवाल सम्मान (1999)

आर्य स्मृति साहित्य सम्मान (1997),

केदार सम्मान (2004),

प्रथम शीला स्मृति पुरस्कार (2006)।

- **रजनी तिलक**

जन्म : मई 1958.

समकालीन दलित कवयित्रीयों में प्रमुख है 'रजनी तिलक'। उनकी कविताओं में स्त्री-चेतना का स्वर मुखरित है। उसमें दलित स्त्रियों की परिस्थितियाँ,

जाति व्यवस्था, और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति आक्रोश भी है। उनकी कविता नारी-अस्मिता और उसकी पहचान के लिए संघर्ष करनेवाली नज़र आती है।

कविता संग्रह : पदचाप (2000),

हवा सी बैचेन युवतियाँ (2014)

- **सविता भार्गव**

जन्म : दिसंबर , विदिशा।

'सविता भार्गव' का समकालीन कवयित्रियों में प्रमुख्र स्थान है। उनके पास गहरी सर्जनात्मकता है। स्त्री के विभिन्न रूप उसकी कविताओं में चित्रित हैं। स्त्री-मुक्ति, बदलती अस्मिता उनकी कविताओं में पायी जाती है।

कविता संग्रह : किसका है आसमान (2012)

अन्य ग्रंथ : शमशेर बहादूर सिंह कवियों के कवि।

- **निर्मला ठाकुर**

जन्म : आज़मगढ़ (उत्तर प्रदेश)

समकालीन कवयित्री 'निर्मला ठाकुर' ने जीवनानुभवों की रोशनी में कविता को आकार दिया है। उनकी कविताओं में स्त्री की विविध छवियाँ सामने आयी हैं। उनकी कविताएँ स्त्री की संवेदनशील मन का आईना ही है।

कविता संग्रह : हँसती हुई लड़की,

कई रूप, कई रंग।

➢ **सुधा उपाध्याय**

सुधा उपाध्याय समकालीन कवयित्री के रूप में लगभग जानी जा चुकी है। उनकी कविताओं में नारी-चेतना आदि से अंत तक फैली हुई है। उसकी दृष्टि मात्र तत्काल तक सीमित नहीं है, बल्कि इतिहास और अतीत को भी अपनी रचनाओं का हिस्सा बनाती हैं। उनकी स्त्री अबला नहीं, प्रतिरोध करनेवाली और विद्रोहिणी है।

कविता संग्रह : बोलती चुप्पी

इसलिए कहूँगी मैं

➢ **वन्दना मिश्रा**

जन्म : अगस्त 1970, जौनपुर (उ.प्र)।

वंदना मिश्रा समकालीन कवयित्रियों में एक प्रतिभाशाली युवा कवयित्री है। उनकी कविताओं में उदारवादी संस्कृति की संकीर्णता में तड़पती स्त्री का चित्रण है। कवयित्री स्त्री के विद्रोह का नया तेवर प्रस्तुत करती है।

कविता संग्रह : कुछ सुनती ही नहीं लड़की

➢ **रेखा**

जन्म 1951, हिमाचल प्रदेश।

रेखा का रचना संसार व्यापक एवं संवेदनशील है। कवयित्री दो दशकों से लगातार काव्य सृजन में रत हैं। उनकी कविताओं में स्त्री अलग-अलग पहलुओं में उभरकर सामने आती है। मध्यवर्गीय नारी की वेदना की जड़ें उनकी कृतियों में नज़र आती है।

कविता संग्रह : अपने हिस्से की धूप (1985)

चिंदी चिंदी सुख्र (1986)

➢ **कीर्ति केसर**

कीर्ति केसर की कविताएँ जीवन के सुख्र-दुख्र, रस-रंग, सोच-विचार, अनुभूतियों और संघर्षों के प्रतिरुप हैं। उनके लिए कविता आधे-अधूरे जीवन को पूरा करने वाले टुकड़े है। स्त्री अस्मिता की छवि उनकी कविताओं में चित्रित हैं।

कविता संग्रह : मुझे आवाज़ देना

3.5. स्त्री कविता : वैयक्तिक आयाम

मनुष्य के अस्तित्व का वैयक्तिक धरातल व्यक्ति के विशिष्ट चयन एवं स्थिति से निर्मित होता है। हर व्यक्ति अपने अस्तित्व या अस्मिता के विकास में स्वयं उत्तरदायी है। इसलिए मनुष्य अपनी स्वतंत्र भावना के आधार पर जीना चाहता है। मनुष्य जो कुछ करता है, सोचता है उन सभी के लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। आज स्त्री समाज भी अपने स्वतंत्र चिंतन और निर्णयों के द्वारा अपने अस्तित्व को नए अर्थ एवं आयाम दे रहा है।

3.5.1. अस्मिता की पुकार

स्त्री-विमर्श की पहली शर्त है व्यक्ति के रुप में स्त्री की पहचान यानी 'स्त्री अस्मिता'। सीमोन द-बोउवार बताती हैं कि 'स्त्री का जन्म नहीं होता वह बना दिया जाता है।' सचमुच स्त्री समाज के द्वारा बनायी जाती है। लेकिन ऐसे बनाए जाने की नीति को स्त्री आज जानती-पहचानती है। 'स्वत्व बोध', या आत्मनिर्णय का

बोध अर्थात 'मैं हूँ' का बोध स्त्री को व्यक्ति बनाती है। अपनी अस्मिता की त्रासमयी अवनति के बारे में आज की स्त्री स्वयं वाक़िफ है। इस सत्य को खोजकर कवयित्री अनामिका अपनी कविता 'बेजगह' में ऐसा बताती हैं-

"अपने जगह से गिरकर
कहीं के नहीं रहते
केश, औरत और नाखून
यह वैसे ही जान लिया था हमने
अपनी पहली कक्षा में
राम पाठशाला जा
सीता खाना पका।"[5]

केश, औरत और नाखून अपनी जगह से गिरकर कहीं के नहीं रहते हैं यानी स्त्री को कोई मान्यता समाज में नहीं दी जा रही है। स्त्री और पुरुष के बीच का अंतर सिर्फ जैविक है। लेकिन पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने इस अंतर का मतलब श्रेणियों में रखकर देखा है। स्त्री मन में इस विभाजन की बातें निश्चय ही निराधार तात्पर्य है। कविता में कवयित्री इस सत्य का उद्‌घाटन करती हैं कि स्त्री आज अपनी अस्मिता से अनभिज्ञ नहीं है। वह जान गयी है कि 'मैं भी इस व्यवस्था का एक व्यक्ति हूँ'। मुझे भी स्वतंत्रता का हक है। इसलिए पितृसत्ता की इस मानसिकता के प्रति स्त्री जागरूक है।

आज स्त्री बदलती अस्मिता की अधिकारिणी है। इसलिए वह पुरुष को परमेश्वर मानने के लिए तैयार नहीं है। वह ऐसा मानने लगी है कि कोई किसी का

नहीं होता है। बल्कि सब अपने होते हैं। सविता सिंह की पंक्तियों में इस वस्तु की अभिव्यक्ति हुई है। अपनी कविता 'मैं किसकी औरत हूँ' की पंक्तियाँ हैं-

"मैं किसी की औरत नहीं हूँ
मैं अपनी औरत हूँ
अपना खाती हूँ
जब जी चाहता है तब खाती हूँ
मैं किसी की मार नहीं सहती
और मेरा परमेश्वर कोई नहीं।"[6]

स्त्री अपनी अस्मिता को समझकर मानने लगी है कि 'मैं अपनी औरत हूँ'। अब वह किसी की मार सहने के लिए तैयार नहीं है। अपने मन के हिसाब से वह जीना चाहती है। स्त्री के प्रतिरोध का स्वर इस कविता की अंतरंग पहचान है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था हमेशा ऐसा सोचती है कि लड़की किसी की अमानत है। उसका पंख मात्र अंडे को सुरक्षित रखने के लिए है। यानी अपने पंखों से वह बच्चों का पालन-पोषण करें। आसमान छूने की इच्छा को मन से निकाल दें। क्योंकि उड़ना उनके लिए मना है। अब वह अपनी अभिव्यक्ति की तलाश करती रहती है। अपनी आज़ादी को तय करने की शक्ति स्त्री रखती है। इसलिए वह अपने आप को ढूँढ रही है। कवयित्री कात्यायनी अपनी कविता 'सूली ऊपर सेज' में इस प्रकार कहती हैं:-

"कटे पंख फुदफदाते हुए
फुदकते हुए
नये पंखों के उगने की प्रतीक्षा में

हासिल करके फिर से अपनी आँखें
अपनी अस्मिता तक
उड़कर पहुँच जाने केलिए।
हाहाकार करते इस हृदय में"[7]

स्त्री, स्वर्ग के तलघर एवं नरक की छत के बारे में जानती है। ऐसे कटु एवं मीठे अनुभवों से वह अब तक गुज़र चुकी है। लेकिन कभी भी उसने हिम्मत नहीं हारी है। ऐसी फकड़ी के सामने वह हार नहीं मानती है। प्रतीक्षा रखकर आगे बढ़ती है। वह बाबुल द्वारा काटे गये पंख के उगने की प्रतीक्षा में है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में स्त्री को, स्त्री के रूप में जीने केलिए मौका नहीं दिया जाता है। उसकी अस्मिता को विघटित किया है और स्वत्व के बिना जीने के लिए वह मज़बूर हुई है। अगर स्त्री अपने आप को जान पाएगी तो यह दुनिया उलट-पुलट जाएगी। लेकिन स्त्री आज सेफ्टी पिन के माध्यम से अपनी अस्मिता की प्रतिष्ठा पाती है। अपने स्त्रीत्व को कायम रखने के लिए वह सेफ्टी पिन का सहारा लेती है। कवयित्री अनामिका की 'सेफ्टी पिन' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"इमर्जेन्सी वॉर्ड में
डॉक्टर की जो हैसियत होती है-
सावित्री पाठक के हौड़ाए वस्तु-जगत् में
इस सेफ्टी पिन की वही हैसियत थी।
क्या जाने कितनी आपातकालीन स्थितियाँ
उसने संभाली थीं एकदम अकेले।"[8]

आज स्त्री अपने आप को हल्की नहीं होने देती है। उसमें ताकत है, उसका अंदाज़ा भी उसे है। इसलिए बार-बार वह कहती है 'मैं हूँ'। 'सुधा उपाध्याय' की कविता 'मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ' की पंक्तियों में-

"मुझे छू-छूकर दिलाते हैं विश्वास
कि मैं हूँ
मैं हूँ
मैं हूँ
बस कभी हल्की नहीं होने पाती मैं
ताकती रहती हूँ।"[9]

स्त्री समाज के समस्त क्षेत्रों में अपनी अस्मिता का निर्माण कर रही है अब। समाज को आगे का रास्ता दिखाना चाहती है। 'तेरी रोशनाई होना चाहती हूँ' शीर्षक कविता में अलका सिन्हा कहती हैं-

"मुझे गढ़ने की ताकत दे हे ब्रह्म
मैं संगतराश होना चाहती हूँ।"[10]

वाद-विवाद के झूठे माहौल को आज स्त्री पहचानती है। पुरुषतंत्र के सारे सौंदर्य उपमान, सौंदर्य प्रसाधन, सौंदर्य सूचक संबोधन भी वह जान गयी है। 'क्यों करती हो वाद-विवाद' शीर्षक कविता में सुधा उपाध्याय बताती हैं-

"क्यों करती हो वाद-विवाद
बैठती हो स्त्री विमर्श लेकर
जबकि लुभाते हैं तुम्हें

पुरुषतंत्र के सारे सौंदर्य उपमान
....
जबकि वे क्षीण करते हैं
तुम्हारें स्त्रीत्व को।"[11]

आज स्त्री को पुरुषतंत्र की कोई स्त्री-विमर्शी वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं है। अपने स्त्री रुपी हथियार को लेकर वह आगे चलना चाहती है।

समाज हमेशा स्त्री को अस्तित्व हीन बनाने का षडयंत्र रचता रहता है। घृणित से घृणित माहौल में भी उसे बिना क्रोध से जीने के लिए मज़बूर करती है। उसे विवाह वेदी के अग्निकुंड में ही अग्निलीन होने के लिए साजिश रचती है। वन्दना मिश्रा अपनी कविता 'दहेज' में इस प्रकार बताती हैं-

"और कुछ गैर-ज़रुरी चीज़ें, उसके अस्तित्व से
निकाल लो।
जिसमें पहले नम्बर पर स्वाभिमान, दूसरे पर
अस्तित्व-बोध हो।
जिससे घृणित से घृणित माहौल में, उसे क्रोध न हो।
इस अग्नि प्रदक्षिणा को , कलियुग की सीता का,
त्रेता के समान ही अग्निलीन होना, समझो।
और विवाह वेदी पर ही, इसे अग्निकुंड में
भस्म कर दो।"[12]

लेकिन आज की स्त्री अग्निलीन होने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए ऐसी साजिशों को समझकर वह अपनी अस्मिता को बरकरार रखने के लिए आगे बढ़ती है। इस षडयंत्र को पहचानना ही उसकी बदलती अस्मिता है।

स्त्री अपने ढंग से सोच सकती है। उसकी अस्मिता सदियों से खेत की तरह बाँध गई थी। लेकिन आज उनमें पंखुड़ियाँ फूट रही हैं। पुरुष प्रधान समाज से संघर्ष करके कवयित्री अनामिका 'स्त्रियाँ' शीर्षक कविता में यह बताना चाहती हैं-

"एक दिन हमने कहा
हम भी इंसान हैं-
हमें कायदे से पढ़ो एक-एक अक्षर"[13]

ऐसा विचार है कि पुरुष व्यक्ति के रूप में संपूर्ण है। स्त्री तो बस अन्या है। लेकिन स्त्री इस विचार को नकारती है। अपने आपको इंसान समझती है। अपने स्त्रियोचित मूल्यों को प्रधानता देकर आगे बढ़ती है।

लड़की अपने लिए सुंदर दुनिया बना सकती है। प्रचलित व्यवस्था के विरुद्ध अपने को पहचानकर वह फूट-फूटकर हँसती है। अनामिका की कविता 'विसंगति' की पंक्तियाँ हैं-

"एक दिन मैंने
दो लड़कियों को
हँसते हुए देखा
....
....
कि उसकी लंबी-सी टीक लगी हिलने-
दोगुन, फिर चौगुन, फिर अठगुन में।
इस पर ही उनकी हँसी फूटी ऐसे
जैसे कि फूटता है निर्बाध सोता धरती से"[14]

लड़कियों के लिए फूटकर हँसना मना था। लेकिन स्त्री रुपी सुन्दर छवि को उसे अपनाना है। इसलिए हँसती रहती है।

स्त्री जागने का आनंद अनुभव करना चाहती है। जागने के आनंद को कात्यायनी ने अपनी कविता 'जागना' में इस प्रकार व्यक्त किया हैं-

"पोर-पोर से मैं
अनुभव करना चाहती हूँ
जागने का आनंद।"[15]

स्त्री को अब अपर का बोध नहीं। अस्मिता का बोध उसे आगे ले जा रहा है।

स्त्री काफी संवेदनशील है। निर्भीक और आत्मविश्वास के साथ वह बात करती है। अब वह घूँघट से बाहर आयी है न कोई शर्मिन्दगी न कोई डर। अनामिका की 'चिट्ठी लिखती हुई औरत' कविता में ऐसा कहती हैं-

"औरतों को डर नहीं लगता
कुछ भी कह जाने में,
उनको नहीं होती शर्मिन्दगी
मानने में
कि उनमें
पानी है, मिट्टी भी।
पानी और मिट्टी : इन दोनों में से
किसी का
कोई ओर-छोर नहीं होता।"[16]

स्त्री के सौंदर्य का कोई छोर नहीं होता है। ऐसे अनमोल सौंदर्य को स्त्री जानने लगी है। उसको शर्मिन्दगी नहीं अपनी पहचान बनाकर, निडर होकर आगे बढ़ने की चाह है।

दलित हो या स्त्री दोनों को शोषण सहना पड़ता है। लेकिन दलित स्त्री को दोहरे शोषण को सहना पड़ता है। एक स्त्री होने के कारण एवं दूसरा दलित होने की वजह से। लेकिन दलित स्त्री भी आज अपने को पहचानने लगी है। दलित स्त्री भी आवाज़ उठाती है-शोषण के तंत्र के विरुद्ध। इसलिए प्रचलित व्यवस्था में 'स्व' की तलाश करके रजनी तिलक अपनी कविता 'औरत-औरत में अंतर है' में लिखती हैं-

"औरत-औरत होने में
जुदा-जुदा फर्क नहीं क्या
एक सताई जाती है स्त्री होने के कारण
दूसरी सताई जाती है स्त्री और दलित होने के कारण
एक तड़पती है सम्मान के लिए
दूसरी तिरस्कृत है भूख और अपमान से।"[17]

स्त्री के ऊपर हो रहे दोहरे शोषण का सीधा चित्र इस कविता में खुलकर मिलता है।

3.5.2. विद्रोह की चिनगारियाँ

प्रतिरोध कई प्रकार से किया जा सकता है। झगड़ा करके, खून बहाकर, आँखों पर पट्टी बाँधकर, हाथ में हथकड़ी पहनकर। ये सभी प्रतिरोध अपने-आप में सही भी हैं। क्योंकि इन सब में गलत मान्यताओं को तोड़ने की ताकत रहती है।

पुरुष व्यवस्था ने स्त्री की अस्मिता को कभी भी मान्यता नहीं दी है। स्त्री अब भी अपने हाथों में अदृश्य हथकड़ी पहनकर ही चलती है। बरसों पहले व्यवस्था रुपी दुर्ग से इसी रुप में आयी थी। इसी रुप में वह घूमती रहती थी। और अब भी ऐसी ही घूमती रहती है। स्त्री बाहरी तौर की आज़ादी नहीं चाहती है। इसलिए अपनी अस्मिता के लिए अपनी जगह निर्धारित करके रख्ने के लिए हाथ में हथकड़ी पहनकर वह प्रतिरोध करती है 'कात्यायनी' की पंक्तियों में ऐसी प्रतिरोध का नमूना दिख़ाई पड़ती है।

"बहुतेरों ने प्रस्ताव रख्रा
तोड़ने का।
वह इनकार करती रही
हथकड़ी तोड़ने वाले
हर हाथ की कलाई पर
वह ढूँढती थी
हथकड़ियों के निशान।"[18]

स्त्री मानसिक रुप से आज़ादी चाहती है। इसलिए वह हथकड़ी नहीं उतार देती है। बाहर वह हथकडी को पहनकर रख्ने में राजी है। स्त्री के मन में जो जंजीर है गुलामी की, उसे तोडे बिना स्त्री की तरक्की संभव नहीं है। वास्तविक गुलामी स्त्री अपने अंदर सहती है। बाहर की गुलामी दरअसल उसका ही क्रूर प्रतिफलन है।

स्त्री की आज़ादी के ऊपर पितृसत्ता का जघन्य अश्वमेध चलता है। पितरों ने नारी की आज़ादी को सदा के लिए रोक दिया है। उसमें ऐसी एक मानसिकता का विकास भी किया है कि वह कभी भी अपनी ताकत न पहचाने।

आज की नारी आत्मनिर्भर बनी है। आत्मनिर्भर नारी को अपनी शक्ति का एहसास भी हो गया है। पुरुषमेधा समाज ने उसकी स्वतंत्र पहचान को मिटा दिया था। उसको अपने सुरक्षा कवच के अन्दर रखा गया था। क्योंकि यह व्यवस्था चाहती थी कि स्त्री हमेशा उसकी दासी बनकर रहे। पर, आज की नारी इस सुरक्षा-कवच को तोड रही है और फेंक रही है। स्त्री के विद्रोही तेवर को नीलेश रघुवंशी, 'सुरक्षा का कवच' कविता में इस प्रकार प्रस्तुत किया हैं-

"नहीं-नहीं आपकी ज़रूरत नहीं लाद लेंगे आप फिर
वही कवच सुरक्षा का
हो सकता तो मिलेंगे फिर...फिलहाल तो नमस्ते"[19]

अपनी एकांत अवस्था में ही स्त्री स्वतंत्र है, सारे बंधनों से वह मुक्त है। अपने एकांत के माध्यम से प्रचलित व्यवस्था के खिलाफ़ विद्रोह करती स्त्री को कात्यायनी की 'स्त्री का सोचना एकांत में' कविता की पंक्तियों में मिलता हैं:-

"चैन की एक साँस लेने के लिए
स्त्री
अपने एकांत को बुलाती है।
....
एक दिन
वह कुछ नहीं कहती अपने एकान्त से
कोई भी कोशिश नहीं करती
दुःख बाँटने की
बस, सोचती है।

....

एकांत में

नतीजे तक पहुँचने से पहले ही

ख़तरनाक

घोषित

कर दी जाती है।"[20]

व्यवस्था, स्त्री की 'एकांत सोच' से ज़रूर डरती है इसलिए वह कहती है 'खतरनाक'। क्योंकि स्त्री के विद्रोहिणी रूप के बारे में उसे अंदाज़ा है और डर भी है।

स्त्री को जागृत होने की ताकत है। जिस तरह उसे सताया जाता है उससे दोगुनी ताकत से उसे मिटाने की क्षमता उसके पास है। नदी को बाँधकर उसका प्रवाह रोका जा सकता है लेकिन जब पानी बढ़ जाता है तब उस बाँध को तोड़कर नदी पूर्ण शक्ति के साथ बहने लगेगी। ठीक वैसे ही सारे के सारे बन्धनों को तोड़कर आगे बढ़ने की शक्ति स्त्री में है। विद्रोह की चिनगारियाँ उठाकर प्रज्ञा रावत अपनी कविता 'बीजमंत्र' में कहती हैं-

"जितना सताओगे

उतना उठूँगी

जितना दबाओगे

उतना उगूँगी

जितना बन्द करोगे

उतना गाऊँगी

जितना जलाओगे

फैलूँगी

जितना बाँधोगे

उतना बहूँगी

जितना अपमान करोगे

उतनी निडर हो जाऊँगी।"[21]

स्त्री शक्ति की पूँजी है। वह उद्विग्न होकर विद्रोह करती रहती है यानि जिस डोर से वह शताब्दियों से बाँधकर रखी गयी थी आज उस डोर को तोड़कर वह बहने लगती है। सविता सिंह की 'गति' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"हूँ ऐसी गति में

उद्विग्न इतनी कि

तोड़ती हर उस डोर को जिससे हूँ बंधी"

स्त्री विमर्श के संदर्भ में आदिवासी कविता अनुभवों और संघर्षों की कविता है। एक ओर स्त्री होने के कारण और दूसरी ओर आदिवासी होने के कारण दोहरे शोषण को स्त्री सहती है। आदिवासी लोग अपनी एक अलग दुनिया बनाकर बस्तियों में रहते हैं। लेकिन आज इन लोगों के रहन-सहन की प्राकृतिक व्यवस्था को भी नष्ट किया जा रहा है। कुल्हाड़ी से पेड़ काटा जा रहा है। फलस्वरूप बस्तियाँ नंगी होने लगी है। ये लोग खेतों में अपने खून को पसीने में बदलकर काम करते हैं लेकिन उन धानों पर उन्हें कोई अधिकार नहीं है। स्त्री के साथ भी सत्ता दुर्वव्यवहार करती रहती है। लेकिन आज आदिवासी जाग गए हैं। अब ये लोग अनुभूत सत्य को वाणी देने के लिए आगे आ रहे हैं। शोषण करनेवाले 'सौदागर' लोगों को

उन्होंने पहचान लिया है। जैसे तूफान से बवण्डर उठता है वैसे ही विद्रोह की चिनगारी फूटने लगी है। आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल की कविता 'बिटिया मुर्मू के लिए' की पंक्तियों में-

"उठो, कि तुम जहाँ हो वहाँ से उठो
जैसे तूफान से बवण्डर उठता है
उठती है जैसी राख्र में दबी चिनगारी
....
सौदागर हैं वे ...... समझो......
पहचानो उन्हें बिटिया मुर्मू...... पहचानो!"[23]

विद्रोही स्त्री सत्ता को चुनौती देती है। वह सबकुछ जानती है फिर भी उलटबासी बताती है। यह उलटबासी ही उसका प्रतिरोध है। कात्यायनी की 'इस स्त्री से डरो' कविता इसी वस्तु को स्पष्ट करती हैं-

"यह स्त्री
सब कुछ जानती है
पिंजरे के बारे में
जाल के बारे में
यन्त्रणागृहों के बारे में
उससे पूछो।
पिंजरे के बारे में पूछो,
वह बताती है
नीले अनन्त विस्तार में
उड़ने के रोमांच के बारे में

....

रहस्यमय है इस स्त्री की उलटबासियाँ

इन्हें समझो

इस स्त्री से डरो।"[24]

यह स्त्री न सिर्फ अपने उत्पीड़न के रूपों को जानती है, बल्कि वह समुद्र की गहराई, नीले आकाश के विस्तार और प्यार के गीतों की बात करने लगती है। क्योंकि स्त्री जागरूक और सचेत होने के कारण उलटबासियों के माध्यम से अपना विद्रोह प्रकट करना जानती है। उसे मालूम है कि रो-रोकर बैठने से कोई फ़ायदा नहीं है। आँसू पोंछने के लिए कोई नहीं आयेगा। इसलिए स्त्री आज दूसरों में भय उत्पन्न करने की ताकत का वरण वह अब कर रही है।

स्त्री खुद अपनी नियति तय करना चाहती है। कहती है 'मैं सागर को नहीं वरूँगी'। चिरकाल से वह एक ही रास्ते से बहती आयी है। दिशा बदलकर अपना रास्ता खुद तय करके बहना वह आज चाहती है। अपनी तरलता से मरुस्थल की तपश को छूना चाहती है। यही 'तरलता' ही उसकी शक्ति है, सौंदर्य है। अपनी शक्ति को पहचानकर, शोषण को ठुकराकर विद्रोह करती हुई कवयित्री रेख्रा, 'स्वयंवरा' में यह बताती हैं-

"मैं
चिरकाल से बहती धारा हूँ
आज तय किया है मैंने-
सागर को नहीं वरूँगी
इसी से दिशाहीन

ठिठककर खड़ी हूँ
धारा वापिस नहीं लौटती कभी
पर मैंने
ठुकरा दी है अपनी
नियति"[25]

'फर्नीचर' के माध्यम से 'अनामिका' स्त्री के विद्रोह को दिखाती हैं। पूरे घर में स्त्री को प्रेम करनेवाले मात्र फर्नीचर ही है। स्त्री अपना गुस्सा, रोज़ उस फर्नीचर से झाड़कर करती रहती है फिर भी वे कभी भी स्त्री को झाड़ते नहीं। रात में सब सो जाते हैं तब इस फर्नीचर में बैठकर पाँवों पर आयोडिन मलती है। उसकी आँसु, उसकी पीड़ा, उसकी हँसी सब फर्नीचर की गोदी में छुपाती है। अपना विद्रोह अनामिका यूँ ही 'फर्नीचर' शीर्षक कविता में प्रकट करती हैं-

"मैं उनको रोज झाड़ती हूँ
पर वे ही हैं इस पूरे घर में
जो मुझको कभी नहीं झाड़ते!
रात को जब सब सो जाते हैं-
अपने इन बरफाते पाँवों पर
आयोडिन मालती हुई, सोचती हूँ मैं-
किसी जनम में मेरे प्रेमी रहे होंगे फर्नीचर,

आँसुओं से या पसीने से लतपथ-
इनकी गोदी में छुपाती हूँ सर"[26]

व्यवस्था का अंधेरा स्त्री को हमेशा सालता रहता है। धमकाता भी है कि 'तू अपनी दुनिया हमसे बना लो'। लेकिन इस अंधेरे को स्त्री अपनी चेतना के उजाले में बदलना चाहती है। अपनी सच्चाई को वह ग्रहण करने लगी है। प्रतिरोध की चिनगारियाँ फूटने लगी है। समझती है कि यह दुख्र-दुविधाओं का संसार आख़िर कोई माइना नहीं रख्रता है। सविता सिंह की कविता 'एक अंधेरा है जो सालता है' की पंक्तियों में-

"एक अंधेरा है जो सालता है मुझे
धमकाता है- 'मैं ही हूँ अस्तित्व में तेरे गड़ा
मुझसे ही बना तू अपनी दुनिया

एक सच है जिसे अब मैं भी जानती हूँ
कि दुख्र-दुविधाओं का यह संसार भी
आख़िर कुछ नहीं होता।"[27]

सदियों से प्रताड़ित होती स्त्री के अन्दर विद्रोह की चेतना जागने लगी है। वह अपनी बेड़ियाँ तोड़कर बाहर आना चाहती है। उसके भीतर ऐसी चीख्र दबी है जिसमें पसलियों को तोड़ने की शक्ति है। उसके पैरों में बंधी हुई जंजीर एक दिन ज़रूर टूटेगी; सावधान रहना है आपको कि वह कभी जंगल की ख्रामोशी फूटने जैसी ख्रतरनाक होगी। 'चीख्र' शीर्षक कविता में अनामिका अपना विद्रोह इस प्रकार प्रकट करती हैं-

"एक चीख्र मेरे भी भीतर दबी है।
उसका बस चले अगर तो

मेरी पसलियाँ तोड़ती
निकल आए बाहर
ये चीख़ मेरी

जंजीरें छूमछनन उसके पैरों की
जिस दिन भी टूटेंगी- देखना-
बिन घुँघरू नाच उठेगा जंगल।"[28]

स्त्री अपनी अस्मिता के लिए विद्रोह करती रहती है। वह दुःख का बख़ान नहीं करती है बल्कि अपनी यातनापूर्ण स्थिति को पहचानकर उससे आगे बढ़ने के लिए प्रतिरोध करती है। वह अपने स्वप्न को जगा रही है। स्त्री के अनन्त संघर्ष की अभिव्यक्ति सविता सिंह अपनी कविता 'स्त्री सच है' में इस प्रकार चित्रित करती हैं-

"चारों तरफ़ नींद है
प्यास है हर तरफ़
जागरण में भी
उधर भी जिधर स्वप्न जाग रहे हैं
जिधर समुद्र लहरा रहा है"[29]

अंधेरा क्रूरता का प्रतीक है। इस क्रूरतामय दुनिया के सामने स्त्री हारने के लिए तैयार नहीं है। इससे होकर जीना कोई मामूली बात नहीं है। सारे प्रतिबंधों को अपनी शक्ति से तोड़कर, विद्रोह करके वह अपने 'स्व' को निर्धारित करती है। 'इस पौरुषपूर्ण समय में' शीर्षक कविता में कात्यायनी अपना विद्रोह इस प्रकार प्रकट करती हैं-

"इस सान्द्र, क्रूरता भरे अँधेरे में
जीना ही क्या कम है
एक स्त्री के लिए
जो वह
रचने लगी
कविता!"[30]

स्त्री अपने आप को अनुवाद करने लगी है यानि खुद को विस्तार करने लगी है। अपने सीमित दायरे को तोड़कर वह सारा-का-सारा 'स्पेस' भरना चाहती है। अपना स्पेस निर्धारित करके उसका अनुवाद, 'विस्तार' में करना ही स्त्री का विद्रोह है। अनामिका की कविता 'अनुवाद' इसी को स्पष्ट करती है-

"इतना ही करूँगी कि उठूँगी-
खोल दूँगी पर्दे!

पल- भर में भर देंगी
सारा-का -सारा स्पेस
और फिर उसका अनुवाद
'अंतरिक्ष' नहीं, 'विस्तार' करूँगी मैं-
केवल विस्तार!"[31]

केवल भौतिक रूप से नहीं, बल्कि आंतरिक स्तर पर मानसिक गुलामी के अंधे कुएँ से ऊपर उठकर अपनी सोच में भी विस्तार पाने की स्त्री की प्रबल आकांक्षा ही इन पंक्तियों में अंतर्निहित है।

3.5.3. स्त्री की प्रश्नातुरता

स्त्री कविता के वैयक्तिक आयामों में एक महत्वपूर्ण पक्ष है उसकी 'प्रश्नातुरता'। पितृसत्तात्मक समाज की कठिनताओं से जूझने के लिए और अपनी अस्मिता की खोज में वह बार-बार प्रश्न पूछती रहती है।

कवयित्री निर्मला पुतुल घर में सुपरिचित साधारण चीज़ों के माध्यम से प्रश्न पूछती रहती हैं। उनके मत में समाज की धारणा यह है कि स्त्रियों की अपनी सीमा होती है। सहनशक्ति होनी चाहिए। सबकुछ सहने के बाद भी मीठे-मीठे शब्दों में बात करनी चाहिए। लेकिन उन्हीं धारणाओं को फेंककर उनकी कविता में स्त्री पूछती है कि कहीं से थका-माँदा आकर सिर टिकाने के लिए 'क्या मैं एक तकिया हूँ'?, या उदास थकान से भरी कमीज़ उतारकर टाँगने के लिए 'कोई खूँटी हूँ?, या जैसे-तैसे ओढ़-बिछाने के लिए 'कोई चादर हूँ'? इन सभी प्रश्नों के माध्यम से स्त्री अपने-आप को पहचानने की कोशिश करती है। कवयित्री निर्मला पुतुल, 'क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए' कविता में ऐसी पूछती हैं-

> "क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए
> एक तकिया
> कि कहीं से थका-माँदा आया
> और सिर टिका दिया
> --------------------
> या कोई चादर
> कि जब जहाँ जैसे-तैसे
> ओढ़-बिछा ली?

चुप क्यों हो!
कहो न, क्या हूँ मैं
तुम्हारे लिए?"[32]

स्त्री विमर्शी कविताओं में प्रश्न करने का ढंग, स्त्री की संवेदनाओं को गहराई से अवगत कराने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। प्रश्न के द्वारा स्त्री ने जीवन से सम्बन्धित मुद्दों को उजागरित किया है। वास्तव में स्त्री के द्वारा किए जानेवाले प्रश्नों में स्त्री विमर्श की सच्चाई रहती है।

स्त्री के लिए कहीं जगह नहीं होती है। प्रचलित व्यवस्था ने उसे 'बेजगह' बना दिया है। इसका मतलब है कि उसके लिए अपना कोई घर ही नहीं है। ऐसी स्थिति में उसका विद्रोह प्रश्नों की चिनगारियाँ बनकर उभरकर आती है। अनामिका की कविता 'बेजगह' की पंक्तियाँ हैं-

"जगह? जगह क्या होती है?

लड़कियाँ हवा, धूप, मिट्टी होती हैं
उनका कोई घर नहीं होता
जिनका कोई घर नहीं होता-
उनकी होती है भला कौन-सी जगह?"[33]

इस कविता में उतारा गया प्रश्न स्त्री जीवन से सम्बन्धित असाधारण स्थिति को बताता है। स्त्री अपने स्वत्व की तलाश, प्रश्न करके ही करती है। इस प्रश्न में अपने अधिकारों से विस्थापित स्त्री जीवन के यथार्थ को अनुभूति की सच्चाई में यहाँ पकड़ा गया है। इसके लिए प्रश्न करने की ताकत कविता के द्वारा दर्शायी गयी है।

3.5.4. प्रेम की ताकत

प्रेम की भावना सबके हृदय में रहती है। लेकिन 'स्त्री' को तो प्रेम की प्रतिमूर्ति मानी गयी है। स्त्री कविता में प्रेम की अभिव्यक्ति खूब हुई है। लेकिन इसमें मांसलता नहीं बल्कि उसके वास्तविक रूप का चित्रण हुआ है। स्त्री प्रेम के धनी है। प्रेम की डोर से वह सबको बाँधती है। प्रेम को अपनाना, और उसे उसी रूप में बाँटना केवल स्त्री ही कर पाती है। प्रेम को घूंट-घूंट शराब की भांति वह पीना चाहती है। पीते-पीते उसकी नशा में झूमना चाहती है। प्रेम उसके नस-नस में भरा हुआ भाव है जो इस दुनिया को आगे जाने की प्रेरणा देता है।

स्त्री प्रेम करके निरीह हो जाती है। निरीहता प्रेम की उपज है। प्रेम उसे निस्वार्थ बना देता है। प्रेम उसको स्वच्छंदता देता है जिसमें बहने के लिए वह तत्पर होती है। 'वह खुद तक पहुँचे' शीर्षक कविता में सविता सिंह कहती हैं-

"मेरा जन्म ही तुमसे प्रेम करने के लिए हुआ है।"[34]

स्त्री प्रेम के उन्मुक्त और विशाल भाव लेकर धरती पर आयी है। उसकी ज़िन्दगी में प्रेम का कोई आरंभ नहीं, न ही कोई अंत। 'दुशमनी' जैसे शब्द के लिए उसके मन में कहीं भी कोई स्थान नहीं है। उसके लिए अपनी ज़िन्दगी ही प्रेम है। अपनी पीड़ा प्रेम की टोकरी में बंद करके वह सबकुछ सह लेती है। मंजरी श्रीवास्तव की पंक्तियों में-

"मेरे लिए प्रेम का कोई आरंभ नहीं है।
और ना ही कोई अंत
और प्रेम से कम या प्रेम से ज़्यादा भी

कुछ नहीं मेरे लिए
मेरे लिए जीवन भी प्रेम है
और मृत्यु भी।”[35]

प्रेम के महत्व को यह कविता उद्घाटित करती है। अगर प्रेम शब्द को मूर्त देखना चाहे तो उसे स्त्री में अनुवाद किया जा सकता है। पुरुष लोग भी स्त्री के सच्चे प्रेम को अब पहचानने लगे हैं। उसके प्रेम रूपी छवि को अनामिका अपनी कविता ‘एक अजब सा वियोग’ में इस प्रकार कहती हैं-

“लाया हूँ कैमरा
तस्वीरें ले लूँ तुम्हारी?
मेरी पत्नी बेहद ख़ुश होगी
कि मेरी किसी से हुई दोस्ती
मेरी स्तब्ध वफादारी से
अब गयी है शायद।”[36]

प्रेम स्त्री को अलग पहचान प्रदान करनेवाली शक्ति है। इसके द्वारा वह पुरुष पर राज कर सकती है। कामायनीकार जयशंकर प्रसाद ने भी स्त्री के पास प्रेम की जो शक्ति है, को श्रद्धा के द्वारा व्यक्त किया है। ‘उर्वशी’ शीर्षक रामधारी सिंह दिनकर के काव्य के स्त्री पात्रों जैसे उर्वशी, औशीनरी आदि के द्वारा प्रेम के भाँति-भाँति के रूप को दर्शाया है। लेकिन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में बरकरार पुरुष-वर्चस्विता स्त्री की इस काबीलियत को समझने में काफ़ी दुर्बल है। स्त्री विमर्शी दृष्टि इस सच्चाई को समझाने का प्रयास कर रही है। उसका उत्तम दृष्टांत है यह कविता। इसमें स्त्री के प्रेम को पहचानते और स्वीकारते हुए पुरुष को दिखाया गया है।

3.5.5. स्वतंत्रता की खोज

स्त्री अपनी स्वतंत्रता के लिए सदा संघर्ष करती रहती है। मनुष्य के रूप में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए स्त्री प्रयास करने लगी है। स्त्री जानती है कि अपनी मुक्ति अपने हाथ में है। मानसिक एवं शारीरिक मुक्ति के लिए स्त्री सत्ता से हमेशा लड़ती रहती है। समकालीन स्त्री विमर्शी कविताएँ इस लडाई का रचनापरक नेतृत्व संभाल रही हैं।

आज हम वैश्वीकृत समाज में रह रहे हैं। हर कहीं चटपटी ज़िन्दगी है। सब अपने-अपने मंज़िल तक पहूँचने के लिए दौड़ते रहते हैं। अपने मन को खोलने के लिए उनके पास समय नहीं है। ऐसी दुनिया में एक स्त्री को घर, काम सबको संभालना पड़ता है। उनके लिए दिन और रात एक समान है। 'सबसे कह दो' शीर्षक कविता में स्त्री की स्वतंत्रता बोध का स्वर गूँज रहा है- प्रज्ञा रावत कहती हैं-

> ''सबसे कह दो कि
> वो आज कहीं नहीं जाएगी
> गुनगुनी धूप में बैठकर
> धीरे-धीरे बालों में तेल
> लगायेगी
> ---------------------
> और ज़ोर से झूलते
> हुए आसमान छू आएगी
> आज वो फूलों को अपने
> हाथों में छूएगी
> छत पर ठण्डे बिस्तर में लेटकर

तारों को चलते हुए देखेगी
और धीमे-धीमे आकाश में चित्र बनाएगी
आज वो आँख बन्द कर
सारी धरती को तर कर देगी।"[37]

यह कविता ऊपरी स्तर पर यह दिखाती है कि एक स्त्री अपने दैनिक जीवन की विरसता को नकार रही है। लेकिन भीतरी तहों पर वह अपने वास्तविक रूप में रहती है। यह कविता स्त्री की स्वतंत्रता का उद्घोष है। यहाँ स्त्री, अपने मन की सारी खिड़कियों और दरवाज़ों को खोल देती है और अपनी आकांक्षाओं को बाहर दिखाना चाहती है। कम से कम एक दिन में ही सही स्त्री इस प्रकार स्वतंत्रता के साथ जीने की इच्छा प्रकट करती है।

'मानसून' से बारिश का आरंभ होता है। इसका दूसरा मतलब नयेपन का आगमन है। वह प्रकृति को एक नई ऊर्जा प्रदान करती है। 'मानसून' बारिश को लेकर कैसे आ रही है उस प्रकार स्त्री-मुक्ति की आवाज़ आज आ रही है। कई वर्षों से प्रताड़ना सहती आई स्त्री उन दंशों से लड़ने के लिए आगे बढकर आ रही है। कवयित्री यह भी याद दिला देती है कि स्त्री को अपनी ज़िन्दगी के दंशों को कभी नहीं भूलना चाहिए। लड़ने की ऊर्जा हमेशा रगों में ज़रूर होनी चाहिए। कात्यायनी की पंक्तियाँ हैं-

"तमाम फसलों- वनस्पतियों
खर-पतवारों के बीच उग आये हैं
स्त्री-मुक्ति के तमाम पैरोकार।
लड़ने का स्वाद

कहीं भूल न जाये स्त्री।"[38]

स्त्री आज लडने के स्वाद से वकिफ़ है। लड़ने के लिए लडाई के स्वाद को स्वीकार करना चाहिए। लडाई पुरुषवर्चस्वी महादीवार को तोडने के लिए है। अपनी स्वतंत्रता के लिए जूझती रहती है स्त्री।

आज सबके घरों, दरवाज़ों और देहरियों को पारकर वह जाना चाहती है। पुरुष से निर्मित अंधेरी रात की विराटता में भी स्त्री अपने आप को जगा रही है। अपने आप जागने के लिए स्त्री विमर्श प्रेरणा दे रहा है। अपनी मुक्ति का आह्वान करके स्त्री दिन को, भीगी रात के साथ मिला देना चाहती है। सविता भार्गव की 'महानगर की रात' कविता की पंक्तियों में-

"आज रात बरसता रहे, बरसता ही रहे पानी
जागता रहे पानी मेरे साथ

अकेली जागती मैं घुला रही हूँ अपनी नींद
बरसते पानी में।
मैं बह जाना चाहती हूँ
सबके घरों, दरवाज़ों और देहरियों तक
मैं दिन को खींचकर
मिला देना चाहती हूँ
भीगी रात में।"[39]

स्वतंत्रता के लिए स्त्री तड़पती झटपटाती रहती है। उसे अपनी इच्छा और ढंग से जीवन जीने का अधिकार ज़रूर है। लेकिन उसके अस्तित्व को व्यवस्था ने

विघटित कर रखा है। उसके जीवन को बरसों पहले ही पूर्वानिर्धारित कटघरे में बन्द कर दिया गया है। उसके लिए अलग-अलग शकलें बनायी गयी है। जैसे: चार्वाक के घी में पड़े रूप, सुकरात की कटोरी में पड़े रूप, सिंड्रेला का रुप आदि। लेकिन अपने-आप उसे कोई रूप नहीं मिला है। इसलिए स्त्री ने आज अपने लिए एक नया रूप बनाया है। अपनी स्वेच्छा से जीवन जीना वह चाहती है। इसके लिए स्वतंत्रता की खोज वह कर रही है। अनामिका अपनी 'मुक्ति' शीर्षक कविता में पूछती हैं-

"वह इधर थी, उधर थी
इसके पास, उसके पास
तो मेरे पास क्यों नहीं थी-
मेरी मुक्ति?"[40]

मुक्ति की तलाश में भांगती स्त्री की दुर्दशा इस कविता से निसृत पाठ है। सर्वत्र मुक्ति को वह देख रही है, लेकिन उसके पास वह नहीं रहती है। Water water everywhere not a single drop to drink वाली कहावत को स्त्री मुक्ति के मुद्दे के साथ जोड़कर हम देख सकते हैं। छीन ली गयी मुक्ति का मालिक है स्त्री। लेकिन आज उसने यह जान ली है कि उसकी रचना उसकी अपनी संपात्ति है। मात्र पुरुष अपने पुत्रों के वंश चलाने के लिए तैयार की गयी नहीं है। वह समझती है कि इस संसार में जो भी कुछ रचे गए है वे सब उसकी अपनी रचना है। क्योंकि मात्र उसमें ही रचना करने याने सृजन के सौन्दर्य और ताकत रहते है। उसके योगदान के बिना जो कुछ भी संसार में बने हैं वे सब अधूरे हैं। इसलिए कात्यायनी अपनी कविता ' वह रचती है जीवन और' शीर्षक कविता में इस प्रकार कहती हैं-

"जो भी कुछ रचता है- वह सोचता है
वह रचती है
जीवन

सोचती है-
जीवन का केन्द्रबिंदु क्या है
सोचती है
जीवन का सौन्दर्य क्या है
सोचती है-
वह कौन सी चीज़ है
जिसके बिना सबकुछ अधूरा है
प्यार भी, सौन्दर्य भी, मातृत्व भी....
सोचती है वह
और पूछती है चीख़-चीख़कर।"[41]

इस दुनिया में सब कुछ स्त्री के द्वारा निर्मित किए जाते हैं। प्यार में, सौन्दर्य में, मातृत्व में, सब कहीं स्त्री के हस्ताक्षर रहते हैं। लेकिन उसे कोई स्वीकारता नहीं है। वह आज भी हाशिए पर है। कविता इस सत्य का सीधा साक्षात्कार करती है कि अब स्त्री को अपने बारे में सोचने का समय आ गया है।

प्रचलित व्यवस्था के बंधनों से मुक्त होना चाहती है स्त्री। वह नभ में उड़ने का अनुभव करना, इस धरती पर बिना बेड़ियों से चलना चाहती है। मुक्ति के लिए मरने को भी वह तैयार होती है। अपनी युक्ति से मरना, अपनी स्वतंत्रता की निशान ही है। सुनीता जैन की 'मरना उसका युक्ति से' शीर्षक कविता की पंक्तियों में –

"मछली मुझ से बोली
मैं जल के बाहर
रह कर देखूँगी-
देखूँगी नभ कैसा होता है
देखूँगी उड़ना कैसे होता है
देखूँगी धरती कितनी है
देखूँगी चलना क्या होता है
देखूँगी तुम को भी तो
देखूँगी मरना क्यों होता है...

यह मरना उसका युक्ति से
क्या मुक्ति था अपने से?"[42]

स्त्री की स्वतंत्रता याने मुक्ति, से मतलब है कि स्त्री में जो गुलामी है उसको मारना है। जिसके पास युक्ति है वह गुलामी पर हमला करके जीत हासिल करता है। स्त्री विमर्श वास्तव में गुलामी से मुक्ति का रास्ता है। इसके द्वारा स्त्री अपने को जानती है। जैसे मछली के लिए पानी से बाहर आना स्वयं ख़तरे को मोल लेना है वैसे स्त्री को भी व्यवस्था रुपी गुलामी से बाहर आना ख़तरा मोल लेना है। स्त्री विमर्श उसके लिए मिली एक युक्ति है। यहाँ मृत्यु सांकेतिक पद है। गुलामी से स्त्री की मृत्यु की कामना इस कविता में की गयी है। यह स्त्री का विद्रोह है।

व्यवस्था के बंधनों से मुक्ति पाने के लिए स्त्री 'मृत्यु' को बार-बार वरन करने के लिए भी चाहती है। यह उसकी कमज़ोरी बिल्कुल भी नहीं है। जीवन की मुक्ति

मृत्यु से मानना स्त्री का विद्रोह ही है। 'दाहक जीवन-दाह' शीर्षक कविता में कात्यायनी इसी को स्पष्ट करती हैं-

"मृत्यु में ही मुक्ति
देखती है स्त्री।
बार-बार
वरती है
उसे।"[43]

ये पंक्तियाँ स्त्री विमर्श का उच्चतम सम्बोधन है। यह जो स्थिति आज स्त्री की होती है, उससे बेहतर है मृत्यु। मृत्यु के द्वारा भी विद्रोह करने का आशय जो इस कविता में प्रकट किया गया है वह स्त्री की परम दयनीय स्थिति के प्रति की गयी प्रतिक्रिया है।

निर्धारित परिधियों को लांघकर स्त्री नयी राह बनाती है। स्त्री अपनी हाशियेकृत स्थिति को पहचानती है। उसकी यह पहचान ही उसे अपनी बंधी हुई परिधि को तोड़ने की, स्वतंत्र होने की शक्ति देती है। अनामिका की 'हाशिया' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"हाशिया जो है अपना
दरअसल है एक प्यारा-सा-सपना
चौहाद्दियाँ लाँघ जाने का
साँचों में अँट नहीं पाने का।"[44]

स्त्री स्वतंत्रता की पुकार स्त्री विमर्शी कविता की आवाज़ है। उपर्युक्त कविताओं में यह गूँज रही है।

3.5.6. सहभागिता रूप

आज, स्त्री अपने स्त्रीत्व को सम्मानपूर्ण एवं स्वतंत्र चेतना के साथ स्वीकार करना चाहती है। पुरुष से प्रतिस्पर्धा करना उसका उद्देश्य नहीं है। सहभागिनी के रूप में उसे जो अधिकार मिलना चाहिए उनकी वह माँग कर रही है। वह सेविका, परिचारिका, दासी बनकर जीना नहीं चाहती है बल्कि सहनागरिका के रूप में अपनी पहचान को स्थापित कर रही है।

लड़की अपनी हँसी से चारों ओर उजास बिखेरती है। अपने बालों की घनी-छाँव में उसे बिठाकर वह खुशी प्रदान करती है। स्त्री हमेशा ऐसी खुशियाँ देने के लिए तत्पर रहती है। खुशी प्रदान करना, हँसी से पुलकित कराना सब स्त्री के अपने वैशिष्ट्य होते हैं। ऐसी खुशी-खुशी से अपनी सहभागिनी रूप को आगे बढ़ाना चाहती है। लेकिन पुरुष उसे हमेशा सताते रहते हैं। उसका रूप ही याद नहीं करते है- वन्दना मिश्रा की 'वह दुबली -सी लड़की' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"सच बताओ क्या तुम्हें कभी याद आती है?
वह कच्चे- नारियल-सी दुधिया-हँसी की
उजास बिखेरने वाली लड़की
जिसके कम-लम्बे-बालों की घनी-छाँव में
बैठने की कल्पना कर
उसे चिढ़ाते थे तुम इतना कि

हँसते-हँसते आँसुओं से भर जाएँ आँखें उसकी"[45]

स्त्रीवादी कविता के रूप में यह कविता भावुकता दर्शाने के लिए नहीं लिखी गयी है। इसमें पुरुष सत्ता की निर्ममता को दिखाने का रचनात्मक उद्यम बैठा है। स्त्री को समझने में पुरुष-वर्चस्ववादी व्यवस्था की पराजय है, स्त्री की आँसू के कारण। दरअसल यह कविता स्त्री की आँसू के कारणों को संवेदनात्मक धरातल पर पकडती है।

स्त्री ही सबको प्यार एवं सुख बाँटती है। बिना कुछ माँगे वह सबकुछ देती है। वह पुरुष का साथ देकर शक्ति प्रदान करती है। अपने सहभागिनी रूप को निभाने के लिए वह तैयार होती है। लेकिन व्यवस्था ने उसे दासी बनाकर रखना ही चाहा है। इसलिए अपने 'स्व' की रक्षा उसके लिए परम प्रधान बना है। बिना कुछ कहकर वह आज व्यवस्था के कटघरे से बाहर चली जाती है। सविता सिंह की 'हृदयहीन दुनिया' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"तुम आयीं हम सबों के बीच
जैसे मौसम आता है
फले फूले हम वनस्पतियों की तरह
सुखद था तुम्हारा साथ"[46]

स्त्री का आगमन बडा पुण्य है सभी के जीवन के लिए। इस सत्य को जाने बिना सामाजिक व्यवस्था स्त्री के साथ व्यवहार कर रही है। समृद्धि की स्थिति को धरती पर जैसे मौसम लाता है वैसा स्त्री, सभी के लिए समृद्धि लाती है। सहभागिनी

का रुप जो स्त्री निभाती है उसके कारण पुरुष वास्तव में अस्तित्ववान बनता है। यह कविता स्त्री की सहभागिता की भूमिका की महनीयता का बयान करती है।

स्त्री, पुरुष के साथ सहभागिनी के रुप में ख़ड़ा होना चाहती है। फिर भी अपने मूल पानी, मिट्टी और आग से अलग नहीं हो सकती है। अनामिका स्त्री की विवशता को अपनी कविता 'अग्नि' में ऐसा दिख़ाती हैं-

"मेरा क्या होना है, कुछ नहीं होगा-
अग्नि-संभवों का कुछ कभी नहीं होता-
जैसी-की-तैसी रहूँगी-
पानी और मिट्टी और आग-
दरवाज़ों के भीतर, दरवाज़ों के पार।"[47]

ऐसे, स्त्री की सहभागिकता की भूमिका स्त्री-विमर्श की दृष्टि से देख़ी गयी। सहभागिकता, कभी भी उसकी कमज़ोरी नहीं है बल्कि महत्व है। इस महत्व को अनदेख़ा किया गया था अब तक। अतः स्त्री विमर्श ऐसे पहलुओं को उजागर करता है और कविता को उसके लिए माध्यम बनाया गया है।

3.5.7. मौन रुप से विद्रोह करने की शक्ति

विद्रोह का एक शक्तिशाली हथियार है 'मौन'। चुप्पी में भी बडी ताकत रहती है। आज मौन को स्त्री विमर्शी कविताओं में इस्तेमाल किया जा रहा है। इसके द्वारा स्त्री आगे चल सकती है। मौन में विद्रोह करने की शक्ति उसमें रहती है।

स्त्री के लिए प्यार भरी ज़िन्दगी दूर का सपना है। वह यह जान गयी है कि प्यार मिलने के लिए आँसु बहाने से कोई फ़ायदा नहीं है। प्यार को पाने के लिए लड़ना अब बेकार की बात बन गयी है। कात्यायनी बताती हैं-

"प्यार का स्वाद भूलते हुए
प्यार नमक नहीं हो पाया था
उसके लिए
न लड़ना ही
जीने की ज़रुरी ख़ुराक।"[48]

प्यार दान के रूप में पाने की चीज़ नहीं है। दान देनेवाली पुरुष सत्ता निस्वार्थ नहीं है। स्त्री इसको जान गयी है। इसके लिए आँसू बहाकर रहने की स्थिति को छोडने का समय आ गया है। प्यार का स्वाद स्त्री जानती है। उसको लडाई करके नहीं पा सकती है। उसके लिए मौन अच्छा रास्ता है। प्यार को पाने के लिए मौन-युद्ध का तंत्र अपनाना चाहिए।

स्त्री नींद में भी जगी रहती है। एक यंत्र के समान वह जीवन काटती है। मज़दूरों की तरह काम करती है। सुबह से लेकर रात तक सेवारत रहती है। वह समझ़ती है कि अपने लिए न कोई त्योहार है, न खुशी और चैन से सोती तक नहीं है। वह अपनी विवशता को जानने के बावजूद अपने एकांत की शब्दरहित लोक में अपने चेहरे को देख़ा करती है। 'सविता सिंह' की 'सच का दर्पण' की पक्तियाँ हैं-

"देख़ती शहर के शोरगुल के बीच से गुज़रते जुलूस को
जो त्योहारों का कुतूहल पैदा करता है उनमें
लौट आते हैं मर्द, बच्चे

पहले दिन से ज़्यादा गंभीर ज़्यादा बुद्धिमान

फिर भी
अपने एकांत के शब्दरहित लोक में
एक प्रतिध्वनि-सी
मन के किसी बेचैन कोने से उठती जल की तरंग सी
अपने चेहरे को देखा करती है
एक दूसरे के चेहरे में
बनाती रहस्यमय ढंग से
एक दूसरे को अपने सच का दर्पण"[49]

पुरुष सत्ता शक्तिशाली दुर्ग है। उस दुर्ग पर हमला करने लिए कई रास्ते अपनाने पडते हैं। जहाँ आक्रोश नहीं चलेगा वहाँ दूसरा मार्ग ढूँढना पडता है। स्त्री आज अपनी आज़ादी की लडाई में "मौन" का उपयोग करती है। स्त्री विमर्शी कविता की एक शक्तिशाली शैली मौन है। इस शैली के द्वारा स्त्री विरोधी मानसिकता की सच्चाई को खुलासा दिया जा सकता है।

औरत बार-बार माफ़ी माँगती रहती है। माफ़ी स्त्री का तंत्र है न कि दुर्बलता। लडाई जीतने के लिए तंत्र की आवश्यकता है। उसकी माफ़ी ही उसका विद्रोह है। आज उसने घर का कोई काम नहीं किया है। चाय-नाश्ता तैयार नहीं किया है, उनकी कमीज़ का दाग नहीं छुड़ा पायी है, नहाने का पानी का इंतज़ाम नहीं किया है, मोजे रखना भूल गई है। ठीक वैसे ही थकान और नींद की वजह से बिस्तर पर भी मौन स्त्री अपने भीतर नहीं मिल पायी है। 'आख़िर बीवी हूँ तुम्हारी' कविता में सविता भार्गव बताती हैं-

"माफ़ कर दो मुझे
बिस्तर में भी मेरे भीतर मिल नहीं पाई मैं
हालाँकि थकान और नींद जब ले जा रही थी
मुझे अपने साथ

माफ़ी तो माँगनी ही चाहिए मुझे
आख़िर बीवी हूँ तुम्हारी।"[50]

माफ़ी माँगकर क्यों न सही स्त्री के विद्रोह को वह ज़ाहिर कर रही है। इस कविता में उस स्त्री को वह दिखाती है जिसको अब तक पुरुष ने नहीं देखा था। इस स्त्री को दिखाने का कार्य कवयित्री स्त्री विमर्श के दृष्टिकोण से करती है।

स्त्री कई सदियों से दुख, पीडा,अवसाद आदि सहती रहती है। लेकिन यह सहना जो है सही समय की प्रतीक्षा ही है। धान धरती के अंदर अंधेरा सहकर छुपती है। सही समय आने पर साहस के साथ बाहर निकलती है। वैसे ही मौन रूप से पीड़ा सहनेवाली इन स्त्रियों में भी शक्तिशाली विद्रोह की बीज छिपी हुई हैं। यह सहना जो है वास्तव में सही समय की प्रतीक्षा करना ही है। अनामिका की 'धीरज' शीर्षक कविता की पंक्तियों में-

"सहिए कि
सहना प्रतीक्षा है
सही समय की"[51]

स्त्री विमर्शी कविताएँ ऐसे अनेक मायनों को अपनाती है स्त्री के प्रतिरोध को अभिव्यक्त करने के लिए। इस प्रकार अभिव्यक्तियाँ स्त्री विमर्शी कविता की शक्ति दिखाती भी है।

स्त्री अपने जीवन में बुन रही व्यथा को किसी से भी नहीं कह पाती है। वह अपने एकालाप में मग्न होती रहती है। वह अपनी इच्छा के अनुसार कुछ कहना और सुनना चाहती है, लेकिन नहीं हो पाती है। इसलिए एकांत में अपना संवाद बुनती रहती है। सुधा उपाध्याय अपनी 'संवादहीनता' कविता में बताती हैं-

> "एकालाप में मग्न वह औरत
>
> ------------------------
>
> बस एकांत में बुनती है संवाद
>
> ------------------------
>
> बस नहीं कह पाती वही
> जो जीवन भर बुनती है।"[52]

स्त्री का एकलाप असल में पुरुष सत्ता के साथ किए जानेवाले संवाद हैं। जो बातें वह कह नहीं पा रही है और कहने पर भी कोई नहीं सुन रहा है उसे एकांत संवाद के रूप में तैयार कर रही है। ऐसे अनेकों मौन संवादों की परिणति है आज स्त्री विमर्श।

स्त्री क्षुब्ध नहीं होती है, इसका मतलब यह नहीं है कि वह सब कुछ सहने के लिए तैयार है। क्योंकि उसके 'मौन' ही उसके सबसे बड़ा 'कहना' है। सुनीता जैन की 'सॉरी' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ इस वस्तु को प्रत्यक्ष कर रहा है।

"जब मैं कुछ नहीं कहती
वही मेरा सबसे बड़ा
कहना है-
उस पूरे मौन में
तुम्हारे समूचे 'होने' को ही
उलाँघ जाना है"[53]

सिर्फ नारा लगाना प्रतिरोध नहीं समझना चाहिए। प्रतिरोध के लिए मौन भी काम आता है। मौन में पुरुष सत्ता के एकाधिपत्य के प्रति चेतावनी मुखरित है।

स्त्री अपने को 'दरवाज़ा' मानती है। उस पर पीट पड़ते रहते हैं। इसके बावजूद वह खुलने के लिए तैयार होती है। अपने आप को बंद न करके रखती है वह। अपनी अस्मिता को पहचानती है और अधिक 'खुलना' ही अपना विद्रोह मानती है। अनामिका की 'दरवाज़ा' शीर्षक कविता की पंक्तियों में-

"मैं एक दरवाज़ा थी,
मुझे जितना पीटा गया,
मैं उतना खुलती गयी।"[54]

वास्तव में स्त्री का, दरवाज़े के समान खुलना जो है वह स्त्री-संवाद है। अब तक स्त्री रुपी दरवाज़ा बन्द था। इस दरवाज़े को खुलने से रोका गया था। अब यह दरवाज़ा ज़्यादा से ज़्यादा खुलता रहता है। खुलने में ही स्त्री प्रतिवाद कर सकती है। जब दरवाज़ा खुला रहता है तब कहाँ पीटा जाएगा। बन्द करके पीटने की पुरुष नीति पर किया गया वार है इस कविता का कथ्य।

वह स्त्री, बिना अन्न छुये, केश न बाँधके, न प्यार करके, न दया करके अपने संताप का चौदहवें दिन में पहुँच गयी है। अब वह अपने बाल को कभी नहीं बाँधने का संकल्प लेती है। बाल खोले रखने के निर्णय में उसका विद्रोह रहता है। सविता सिंह की, 'कुसुम का सत्याग्रह' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"नहीं बाँधेगी केश
न करेगी प्यार
न दया

बाल खोले
कभी नहीं बाँधने का संकल्प लिये
आत्मसंताप के आख़िरी दिन रोती
लेटी है कुसुम सत्य के आग्रह में"[55]

पितृसत्ता स्त्री के मौन रूपी विद्रोह को ज़रूर डरती है। क्योंकि बेहद विनम्रता अधिक खतरनाक लगती है। अतः स्त्री मौन रहती है, सीधा लडाई करती है, तो उसे दबाना आसान है। अप्रत्यक्ष लडाई की शक्ति कोई मालूम नहीं कर पाता है। लड़ने की जगह मासूमियत की हँसी उग्रतर हथियार है जिससे बिना भयभीत हुए नहीं रह पाते हैं हम। भीतर ही भीतर गर्म हो जाने पर भी स्त्री हँसती है, विनम्र होती है, किसी भी बात पर लाल नहीं होती है, यही उसका प्रतिरोध है। वन्दना मिश्रा की 'मेरी एक मित्र थी' शीर्षक कविता की पंक्तियों में-

"पर सबसे ज़्यादा ख़ौफ खाती हूँ मैं इसी से
जाने क्यों सबसे विनम्र पर सबसे शातिर यह

और सदा भयभीत मैं कि जाने कब ......

खतरनाक लगती है बेहद विनम्रता"[56]

ऐसे, स्त्री कविताएँ मौन का इस्तेमाल प्रतिरोध व प्रतिवाद के लिए भी करती हैं। काव्य संवेदना में विद्रोह का समावेशन समकालीन स्त्री कविताओं की रचनात्मक खूबियों को दिखाता है।

3.5.8. आशावादी दृष्टिकोण

परिवर्तित दुनिया में स्त्री पितृसत्ता की दृष्टि से दूर रहना चाहती है। वह अपनी दृष्टि से सबकुछ देखना चाहती है। अपने 'स्व' की दृष्टि से सबकुछ महसूस करने के लिए प्रतिरोध करती रहती है। अपनी स्वतंत्रता की राह पर उम्मीद एवं आशान्वित दृष्टि अपनाकर स्त्री आगे चलती है।

स्त्री अपनी ज़िन्दगी का नक्शा बदलनेवाली बात को सुनने के लिए तरसती रहती है। उसे उम्मीद है कि शायद उसे सपनों में उसकी आवाज़ मिलेगी। कवयित्री अनामिका, 'पतिव्रता' कविता में ऐसा कहती हैं-

"शायद मुझे दी हो सपनों में आवाज़
कोई गुपचुप बात मेरे लिए दबा रखी हो
इतने बरसों से अपने मन में-
कोई ऐसी बात
जो रोज इतने दिन
ये कान सुनने को तरसे...
कोई ऐसी बात जिससे बदल जाए
जीवन का नक्शा"[57]

स्त्री अपने 'स्व' की रक्षा के लिए विद्रोह करती रहती है। जिस प्रकार पानी चखते है उसी प्रकार स्त्री अपने स्वत्व को भी चखने की आशा रखती है। अनामिका की 'पानी' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"कम-से-कम कल तो कुछ पानी मिलेगा।
पानी की पूरी तैयारी है-
सिर्फ नहीं तय तो बस इतना ही-
रखना है पानी या चखना है
पानी उतरने का स्वाद?"[58]

स्त्री रोज़ तुलसी पर जल डालकर प्रार्थना करती है कि हो जाए प्रेम। कलेजा प्यार से जुट जाए। वह उम्मीद करती है कि किस्सों में पढ़ा, फिल्मों में देखा, गीतों में सुना हुआ प्रेम आज हो जाए। 'हितोपदेश' शीर्षक कविता में अनामिका बताती हैं-

"वह वहाँ करती थी प्रार्थना कि हो जाए, हो जाए, हो जाए
किस्सों में पढ़ा हुआ, फिल्मों में देखा,
गीतों में सुना हुआ प्रेम घटित,
जुट जाए, जुट जाए, जुट जाए कलेजे में जोर
प्यार करने का।"[59]

स्त्री अपनी अस्मिता को पेश करके बताती है 'मैं, मैं हूँ'। इसको बरकरार रखने के लिए संघर्ष करती रहती है। इसी बीच आशान्वित होकर कवयित्री अनामिका अपनी 'सब ठीक हो जाएगा' शीर्षक कविता में ऐसा कहती हैं-

"क्योंकि मैं, मैं हूँ, आप आप
और दुनिया दुनिया है-
एक-न-एक-दिन
किसी-न-किसी तरह
सब ठीक हो जाएगा!"[60]

ऐसे आशावादी दृष्टिकोण स्त्री विमर्शी कविता में ज़ाहिर किए गए है। आशावादी वे लोग होते हैं जो अपने जीवन में कठिनता को पाते हैं। स्त्री अपनी कठिनता को बता रही है। स्त्री की दयनीय स्थिति को बताने के लिए एक मार्ग है आशावादी सपना देखना। कविता में आशावादी परिप्रेक्ष्य अपनाकार कवयित्रियाँ स्त्री-विमर्श ही प्रस्तुत कर रही हैं।

3.5.9. श्रेष्ठ वैयक्तिक अनुभूति

स्त्री की अनुभूति विशिष्ट होती है। गर्भ धारण, मासिक धर्म, दूध पिलाना, ऋतुमति होना ऐसे अपने निजी अनुभव स्त्री करती है। अपने वैभव रुपी देह को बोझ न समझकर उसकी अनुभूतियों को वह अपनाती है। इन विशिष्ट अनुभवों को आज स्त्री स्वर दे रहा है।

स्त्री अपने देह के बारे में कहने लगी है। 'यौनत्व' को शर्मिंदगी के बोझ से उतारकर वह अपने शारीरिक परिवर्तनों के बारे में खुलकर बताने लगी है। प्रथम रजोस्त्राव की स्वानुभूति मात्र एक स्त्री ही जानती है। स्त्री अपना वैयक्तिक सौंदर्य पहचानकर ऋतुमति होने का अनुभव प्रकट करती है। अनामिका अपनी कविता 'प्रथम स्राव' में इस प्रकार कहती हैं-

"कुण्डलिनी- सी जगी बैठी
पलंग पर!
उसकी सफेद फ्रॉक
और जाँघिए पर
किस परी माँ ने काढ़ दिए हैं
कत्थई गुलाब रात-भर में?
और कहानी के वे सात बौने
क्यों गुत्थम-गुत्थी
मचा रहे हैं
उसके पेट में?
अनहद-सी बज रही है लड़की
काँपती हुई।"[61]

रजस्वला बन जाने की अनुभूति को हेय समझी गयी थी। उसको गोप्य बना दिया गया था। ऐसा करके वास्तव में स्त्री को मिले इस अनुग्रह को रहस्य बना दिया था समाज ने। उसकी अनुभूति की अभिव्यक्ति को रोकी गयी थी। कवयित्रि ने इस अनुभूति को सृजनात्मकता में बाँधकर विमर्शों किया है।

प्रसव की पीड़ा एक स्त्री के लिए पीड़ा नहीं है बल्कि उसके सृजन की शक्ति का सौन्दर्य ही है। जीवन का केन्द्रबिन्दु, जीवन का सौन्दर्य, मातृत्व सब एक स्त्री में निहित स्त्रीजन्य सौन्दर्य है। स्त्री, प्रथम प्रसव के पीर से उत्सुक हो जाती है। सुशीला टाकभौरे की 'युग चेतना' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"प्रथम प्रसव के पीर की
मैं उत्सुक हूँ

और उत्सुक है पूरा समाज,
मेरे माध्यम से वह
अपना प्रस्फुटन देखना चाहता है।"[62]

स्त्री की अनुभूतियों को अब तक आवरण के अन्दर रखकर व्यवस्था ने उसके साथ अन्याय किया था।

स्त्री को मासिक धर्म का सौन्दर्य प्रकृति ने वरदान के रूप में दिया है। लेकिन प्रचलित व्यवस्था ने इस सौन्दर्य को अशुद्धता बताते हुए स्त्री को देवालय के बाहर निकाल दिया है। कवयित्री अनामिका अपनी कविता 'मरने की फुर्सत' में इसका विरोध करके बताती हैं-

"ईसा मसीह
औरत नहीं थे
वरना मासिक धर्म
ग्यारह बरस की उमर से
उनको ठिठकाये ही रखता
देवालय के बाहर"[63]

स्त्री विमर्शी कविताएँ स्त्री के समय के साथ आज न्याय कर रही है। पुरुष की सोच के अनुसार सुरक्षित रहने के लिए वह तैयार नहीं है। पुरुष-व्यवस्था की छात्रछाया में स्त्री को सुरक्षा के बहाने कब्जा कर रख गया था। इस कूटनीति से आज स्त्री अवगत है। इसकी रचनात्मक अभिव्यक्ति है वास्तव में स्त्री-विमर्शी स्त्री कविताएँ।

3.5.10. आत्मनिर्भर स्त्री की सोच

वैश्वीकरण के इस युग में स्त्री की सोच भी बदल गयी है। वह अपनी शक्ति से वाकिफ़ हो गयी है। अपनी इस शक्ति से ही आत्मनिर्भर होकर वह आगे बढ़ती है। आज वह 'अबला' होकर नहीं सशक्त होकर जीती है।

स्त्री अपनी शक्ति और कमज़ोरी दोनों के बारे में जानती है। अपनी कमज़ोरी का भी उचित इस्तेमाल करना वह सीख गई है। इसलिए दुःख को हँसी में बदलकर ज़िन्दगी गुज़ारती है। आत्मनिर्भर स्त्री की छवि वन्दना मिश्रा अपनी 'बोध' शीर्षक कविता में इस प्रकार प्रकट करती हैं-

"दुखों के बीच में
हँसते हुए जी लेना
ही
होती है सच्ची खुशी।"[64]

आत्मनिर्भर स्त्री का व्यवस्था के साथ द्वन्द्ध चलता रहता है। वे अपने को अधूरा नहीं महसूस करती है। वह अपने अन्दर की जागती स्त्री को पहचान गयी है। इसलिए उसे पुरुष की आवश्यकता नहीं है। शीला सिद्धांतकर, 'स्त्री और पुरुष' कविता में आत्मनिर्भर नारी का चित्रण ऐसा करती हैं-

"मैंने
कभी नहीं
महसूस किया
कि

मैं एक स्त्री हूँ
मुझे पुरुष की
आवश्यकता है
मैंने कभी नहीं
महसूस किया कि
पुरुष के बिना
मैं अधूरी हूँ
मैं स्त्री
अवश्य रही हूँ
मैंने देखा
कि मेरे अन्दर की
स्त्री सदा जागती
रही है"[65]

अब स्त्री इंतज़ार करने के लिए तैयार नहीं है। प्रचलित व्यवस्था के परिवर्तन के लिए स्त्री विद्रोह करती रहती है। पूरे आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ती है। अनामिका की 'इंतज़ार' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"अचानक ही दुनिया से गायब हुआ इंतज़ार-
कल-परसों कुछ जरा-सा अच्छा
होने का एहसास।"[66]

शताब्दियों से स्त्री को परिधि से घेर कर रखा था। लेकिन आज वह जान गयी है कि परिधि उससे निर्धारित होती है न कि परिधि से। सुधा उपाध्याय की 'औरत' कविता में उपर्युक्त सोचवाली आत्मनिर्भर स्त्री कहती है-

"तू धरा है धारण कर
दरक मत
तू परिधि से नहीं
परिधि तुझसे है।"[64]

स्त्री को आत्मनिर्भर रहने का पाठ स्त्री विमर्शी कविताएँ दे रही हैं। स्त्री का आत्मनिर्भर होना अवश्यंभावी है। आत्मनिर्भरता ही स्त्री मुक्ति के लिए ऊर्जा प्रदायिनी शक्ति है।

3.5.11. समान अधिकार की तलाश

अपने लिए पुरुष के समतुल्य अधिकार की माँग करके स्त्री विद्रोह करती है। सदियों से उसे अपने मौलिक अधिकार से वंचित रखा गया था। स्त्री को अपने अधिकारों से वंचिता रखना जो है, षड्यंत्र है जिससे बाहर निकलकर स्त्री अपने समान अधिकार की वकालत कर सकती है।

स्त्री को हमेशा हाशियेकृत कर दिया गया है। समानता का दर्जा उसे न दिया गया है। उसे बाँटती, छाँटती रखी गयी है। कवयित्री अनामिका की 'भिन्न' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"कब तक बाँटना, कब तक छाँटना-
देखिए मुझे अपने अंतिम दशमलव तक
फिर कहिए, क्या मैं बहुत भिन्न हूँ आपसे?"[68]

भिन्नता एक एहसास है। यह एहसास स्त्री के संदर्भ में पुरुष की निर्मिति है। अब तक इस भिन्नता का खास मौलिक कारण नहीं बता पाया है। किस चीज़ में वह

भिन्न है। शरीर ने उसे जो दिया है वह प्रकृति का वरदान है, पुरुष का दिया हुआ नहीं है। पुरुष का दिया गया वर भिन्नता का वर है। भिन्नता की यह नीति पुरुष की साजिश है। स्त्री उसे जानती है।

आज नारी सीता के समान धरती में जाना नहीं चाहती है बल्कि आकाश में उठना चाहती है। ''यह तुम भी जाने' कविता में सुशीला टाकभौरे बताती हैं।

> ''आज जानकी सब जान गयी है,
> अब वह धरती में नहीं
> आकाश में जाना चाहती है,
> बिजली-सी चमक कर
> संदेश देना चाहती है-
> पुरुष प्रधान समाज में
> स्त्री भी
> समानता के अधिकारी है।''[69]

आगे कवयित्री स्त्रियों को आगे बढ़ने का, और अपने अधिकार पाने का आह्वान करती हैं-

> ''आओ बहनों आगे बढ़कर
> पायें हम अपने अधिकार,
> देखो कोई रोक न पाये
> बढ़ते कदमों की रफ्तार।
> जागरूक नारी बदलेगी
> सदियों की परिपाटी,

पायेगी समता सम्मान

वह नहीं किसी से छोटी।"[70]

अब स्त्री को पलकों में अश्रुधारा नहीं बहनी है। उसे लज्जा और श्रद्धा नहीं होगी। न वह कनक है न कामिनी। शिकवे और जज़्बातवाले भावों में रहने के लिए अब स्त्री तैयार नहीं है। सुशीला टाकभौरे की 'मैंने कुछ शब्द जोड़े हैं? शीर्षक कविता की पंक्तियाँ-

"लज्जा नहीं, श्रद्धा नहीं
पलकों में अश्रुधारा नहीं,
गाती नहीं है रागिनी
न कनक है, न कामिनी
न प्रेम की दो बात है
शिकवा नहीं, न जज्बात है
अधिकार की ये पुकार है"[71]

इस कविता में स्त्री के अधिकार की पुकार सुनी जा सकती है। स्त्री-विमर्शी कविता जागी गयी कविता है।

स्त्री अपने व्यक्तिगत स्तर की आज़ादी के लिए आज संघर्षरत है। आज स्त्री अपने वैयक्तिक स्तर की अस्मिता, विद्रोह, प्रश्नातुरता, मुक्ति की खोज, आशावादी दृष्टि, मौन रूप से विद्रोह करने की शक्ति, अपनी विशिष्ट वैयक्तिक अनुभूति, आत्मनिर्भरता, और समान अधिकार की बातों को उठाती है।

3.6. स्त्री कविता : पितृसत्तात्मक आयाम

पितृसत्ता माने शताब्दियों से चली आ रही ऐसी व्यवस्था है जिसमें स्त्री पुरुष के अधीन रहती है। इसमें स्त्री के जीवन, उसकी सत्ता, स्वतंत्रता आदि को पारिभाषित किया गया है। इस सत्ता के आविर्भाव से ही स्त्री को उपभोग की वस्तु के रूप में देखने लगे हैं। स्त्रीजन्य सौन्दर्य जैसे: प्रजनन, मासिक धर्म, गर्भधान आदि को इस व्यवस्था ने उसकी दुर्बलता में परिवर्तित कर दिया है। स्त्री की अस्मिता पुरुष के विलयन में रखी गयी है। स्त्री को व्यक्ति न मानकर वस्तु के रूप में मानी गयी है। यह सत्ता स्त्रियों के प्रति दमनकारी रवैया रखती है।

आत्मनिर्भिर नारी ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध लड़ाई शुरू की है। स्त्री इस सत्ता के वर्चस्व को तोड़ने के लिए विद्रोह करती रहती है। स्त्री अपनी पहचान बदलना चाहती है। साथ ही अपने प्रति पुरुष की पारंपरिक दृष्टिकोण को भी बदलना चाहती है।

3.6.1. पितृसत्ता से लड़ती स्त्री

पितृसत्तात्मक समाज स्त्री की शक्ति को, बुद्धि को और लड़ने की ताकत को अच्छी तरह जानता है। उसे डर भी है कि अगर स्त्री बोलने लगी तो, अपनी आवाज़ उठा ली तो ज़रूर गड़बड् हो जाएगा। यह सर्वविदित है कि प्रागैतिहासिक युग की सबसे सशक्त नारी थी 'गार्गी'। अपने अधिकारों के बारे में वे जानती थी। अपने लिए जगह बनाने के लिए वे प्रतिरोध भी करती रही थीं। स्त्री की छवि को पहचाननेवाली गार्गियाँ आज की आवश्यकता है, समाज द्वारा बनायी गयी रूढ़िग्रस्त सीमाओं को तोड़कर आगे बढ़ने के लिए। लेकिन उसे आगे बढ़ने का मौका कभी

नहीं दिया जाता है। हमेशा ताना सुनाते-सुनाते स्त्री को दबाकर रख दिया गया है। कात्यायनी की 'गार्गी' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ-

"मत जाओ गार्गी प्रश्नों की सीमा से आगे
तुम्हारा सिर कटकर लुढ़केगा ज़मीन पर,
मत करो याज्ञवल्क्यों की अवमानना,
मत उठाओ प्रश्न ब्रह्मसत्ता पर,
वह पुरुष है।
मत तोडो इन नियमों को

अकंशयिनी बनो
फिर कोख में धारण करो
पुरुष का अंश।"[72]

दबाकर राज करने की पुरुष नीति पर किया गया हमला है इस कविता के कथ्य से निसृत अर्थ की उलटबासी का आयाम। इसमें स्त्री को दुर्बल माननेवाली व्यवस्था पर दोषारोपण किया गया है। कथ्य इसका सीधा नहीं, उलटा है। इसकी ध्वनि आक्रोश की है।

स्त्री प्रकृति का सबसे सुन्दरतम उपहार है। स्त्री में सबको आनंद प्रदान करने की अपार शक्ति रहती है। लेकिन पुरुषराज स्त्री को अपनी पूर्णता प्राप्त करने को नहीं देता है। उसकी खूबसूरती को संवेदना में स्वीकार नहीं करता है। यह स्त्री को स्त्री के रूप में स्वतंत्र जीवन जीने की अनुमति कभी नहीं देती है। इसका प्रतिरोध है स्त्री कविताएँ। स्त्री आज अपनी ज़िन्दगी को लेकर कविता लिख रही है। उसकी

कोमल भावनाओं को, अनुभूतियों को, भरकर वह लिखती रहती है। प्रज्ञा रावत अपनी कविता 'एक कोमल लड़की में' बताती हैं-

"एक कोमल लड़की
जीवन की एक बेहद
ज़रूरी कविता लिख रही है"[73]

स्त्री अपने अद्‌भुत सौंदर्य के बारे में जान लिया गया है। ऐसी स्त्री अपनी ही भाषा में बात करने लगी है। लेकिन पुरुषसत्तात्मक साहित्य व्यवस्था उसकी भाषा को अप्रामाणिक मानती है, उसको मान्यता न देकर उसे दबाकर रखना चाहती है। इस साजिश को पहचानकार आज उसके विरुद्ध स्त्री आवाज़ उठाने लगी है। 'मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नज़र में' शीर्षक कविता में निर्मला पुतुल कहती हैं-

"उनका तर्क है कि
सभ्य होने के लिए ज़रूरी है उनकी भाषा
सीखना
उनकी तरह बोलना बतियाना
उठना बैठना
ज़रूरी है सभ्य होने के लिए उनकी तरह
पहनावा ओढ़ाना
मेरा सबकुछ अप्रिय है उनकी नज़र में"[74]

स्त्री स्वयं एक भाषा है। वह उस भाषा में ही बोल सकती है। पुरुष की भाषा में स्त्री नहीं बोली जा सकती है। पुरुष सत्ता की भाषा में अगर वह बोलना शुरु करे तो उसकी अभिव्यक्ति में स्त्री नहीं रहेगी। उसके स्थान पर पुरुष रहेगा। पुरुष की

भाषा इसलिए यह चाह रही है कि स्त्री कभी न बोले। अगर वह बोलना शुरू करें तो पुरुष की भाषा की शक्ति कमज़ोर हो सकती है।

अपने आगे की खाई एवं पीछे की आग को स्त्री जानती है। सदियों से उसे पाँव ठीक तरह से ठिकने के लिए भी अवसर नहीं दिया गया है। उसकी जगह बीच की रही थी। इसलिए स्त्री आज उस साजिश को पहचाना और अपने लिए एक कोना बनाना चाहती है। इस कोने से उन्मुक्त हवा एवं ऋतुओं को अपना बनाना चाहती है। पितृसत्तात्मक रूपी 'झुरमुट' को पहचानना ही उसकी लड़ाई है। सविता सिंह की 'मनोकामनाओं जैसी स्त्रियां' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"मैं पहचानती हूँ आख़िर उनका वह झुरमुट
जिसमें मैंने भी चुना है अपना एक कोना
जहाँ जाकर ठहरती हैं पृथ्वी से लौटी उन्मुक्त हवाएँ
ऋतुएँ जहाँ जाकर सोचती हैं अपना होना"[75]

स्त्री सृष्टि का अभिन्न अंग है। प्रकृति के द्वारा दी गयी अपनी अमूल्य सत्ता को भी वह पहचानने लगी है। इसलिए स्त्री अपने अस्तित्व के लिए लड़ाई लड़ती रहती है। वह जान गयी है कि व्यवस्था ने उसे केवल कठपुतली बनाकर उसका शोषण किया है। 'रश्मि रमानी' की पंक्तियों में-

"देखो मेरी ओर
कि एक औरत हूँ मैं
रकत मांस की बेजोन पुतली नहीं
सोच और अनुभव का जीवंत संसार हूँ मैं"[76]

स्त्री की सती-सावित्री रूप को ही मान्यता दी गयी थी। उसकी ज़िन्दगी के रास्तों को भी शीर्षकों ने निर्धारित किया है। धर्म ने, राजनीति ने स्त्री को एक 'कैसेरॉल' में बन्द कर दिया है। इस स्थिति को पहचानना ही उसका विद्रोह है। अनामिका अपनी कविता 'गृहलक्ष्मी-2' में कहती है-

"मैं कैसेरॉल की अंतिम रोटी हूँ!
कैसेरॉल में ही मैं बन्द रही हूँ अब तक!
पीती रही भाप कुछ दिन तक
ठीक से सिंकी रोटियों की
जो मेरे ऊपर थकियाई गयी थीं!"[77]

जब स्त्री मुक्त हो जाएगी तब यहाँ बरकरार सत्ता चकनाचूर हो जाएगी। 'हॉकी खेलती लड़कियाँ' शीर्षक कविता में लडकियाँ अपनी ज़िन्दगी को पूरी खुशियाँ ले रही हैं। 'गोल-गोल' चिल्लाती हुई वे भागती फिरती हैं। उनके माँ-बाप सब इस आज़ादी से भयभीत हुए। अपना प्रतिरोध, संघर्ष करती ये लड़कियाँ ख़ूब खेल रही हैं। 'हॉकी खेलती लड़कियाँ' कविता में कात्यायनी बताती है-

"खेल रही हैं हॉकी
कोई डर नहीं
बॉल के साथ दौड़ती हुई
हाथों में साधे स्टिक
वे हरी घास पर तैरती हैं,
चूल्हे की आँच से
मूसल की धमक से

दौडती हुई

बहुत दूर आ जाती हैं।

लड़कियाँ एक-दूसरे पर ढह रही हैं

एक-दूसरे को चूम रही हैं।"[78]

खेल जो लडकियाँ यहाँ खेल रही है, वे उनकी आज़ादी की अभिव्यक्तियों का प्रकटन हैं। उनसे छीन ली गयी स्वतंत्रता की वापसी पर मनाया गया आनंद नृत्य जैसा है यह खेल। वे प्रतियोगिता नहीं कर रही हैं, उसके बहाने आज़ादी का अनुभव कर रही हैं।

स्त्री की लड़ाई जारी रहेगी। क्योंकि स्त्री ने कांटों को बीनना बंद नहीं किया है, शब्दों से लड़ना भी ज़ारी रखा है। उसके शब्द में अपार ताकत और विद्रोह रहते हैं। 'शीला सिद्धांतकर' की 'लड़ाई ज़ारी रहेगी' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"मैंने कांटों को बीनना

बंद नहीं किया था

मैंने शब्दों से लड़ना

बंद नहीं किया था

यह जानते हुए कि

मेरे बाद मेरे शब्द लड़ेंगे

और ज़िन्दगी के साथ

लड़ाई खत्म नहीं होगी

लड़ाई जारी रहेगी।"[79]

हड़प लिए गए अस्तित्व को पुनःस्थापित किए जाने का आह्वान समकालीन स्त्री-कविताएँ कर रहीं है। स्त्री का युद्ध ज़ारी है। यह तब तक ज़ारी रहेगी जब तक स्त्री के स्वत्व को सुरक्षा मिल सके।

3.6.2. सीमाओं को लांघती स्त्री

स्त्री उसके ऊपर लादी गयी तमाम सीमाओं को तोड़कर आगे बढ़ने लगी है। जागृत है नारी, अब ज्वालामुखी से कम नहीं है वह हौसला एवं कार्यक्षमता के साथ स्त्री आगे बढ़ रही है।

स्त्री कहती है कि दबी-दबी रहना उसकी दुर्बलता नहीं है। वह सही समय की इंतज़ार कर रही है। बाहर आने के लिए वह सारे तर्कों का माथा तोड़ने के लिए तत्पर रहती है। कवयित्री अनामिका की 'प्रिय गोमती' कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"कुछ बातें होती हैं
जिनकी तारीख नहीं होती-
दबे मुकदमें जैसी
दबी-दबी रहती हैं बहुत बरस
फिर एक दिन सारे तर्कों का माथा वे
फोड़कर चली आती हैं बाहर।"[80]

स्त्री की अनेक छवियाँ होती हैं। एक झटके में संसार को बदलने की शक्ति उसमें है। तमाम रेखाएँ जो इसके विरुद्ध खींची गयी है को लांघने के लिए वह प्रयत्नरत है। खुरदुरा कपड़े को अपने हाथों से कभी सूरज, कभी हिमालय या झोंपड़ी, चिरैया-या तितली के रूप में बदलने का रवैया उसमें रहता है। आज वे

खुरदुरा रूपी पितृसत्ता को नया रूप प्रदान करने की कोशिश में है। अनामिका की 'चमत्कार नहीं' शीर्षक कविता की पंक्तियों में-

"औरत ने सुई उठाई
देखते-ही-देखते
एक खुरदुरा कपड़ा
सूरज हो गया, फिर हिमालय
झोंपड़ी, चिरैया, फिर तितली"[81]

डरकर पीछे भागने के लिए स्त्री तैयार नहीं है। प्रतिबंधों की सीमाओं को लाघकर आगे बढ़ने के लिए आज वह सक्षम है।

3.6.3. मुक्ति की चाहतें

हर व्यक्ति अपने आप में मुक्त होकर जीना चाहता है। मुक्ति के लिए संघर्ष करना स्वाभाविक ही है। सदियों से पिंजरे में बंधी स्त्री अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करने लगी है। अपने जीवन को अपने ढंग से जीना, हर किसी का अधिकार है। स्त्री भी मुक्त होकर अपने ढंग से जीना चाहती है।

स्त्री के मन में आज एक 'अजब' सा पेड़ उगता रहता है। उस पर बस एक फूल आता भी है। एक बार वह फूल खिल जाता है तो कभी झड़ता नहीं है, यानि स्त्री के मन में आज अपनी 'अस्मिता' का पेड़ उगने लगा है। उसमें खिलनेवाला एकमात्र फूल है 'मुक्ति'। प्रचलित व्यवस्था उस फूल को झकझोर करने की कोशिश करती रहती है। लेकिन मुक्ति रूपी वह फूल कभी झड़ता नहीं है। अनामिका की 'जादू का पेड़' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार है-

"एक पेड़ अजब है
उस पर बस एक फूल आता है
लेकिन वह झड़ने का नाम ही नहीं लेता,
झकझोर हार-हार जाते हैं लोग।
अब औरत के भीतर उगता है पेड़।"[82]

सदियों से होते आए शोषण को स्त्री जान गयी है। स्त्री के लिए जो सीमाएँ खींची थी वह आज मिटने लगी हैं। छितराए हुए केशों से जुएँ चुनकर स्त्री अपनी मुक्ति की घोषणा प्रकट करती है। पुरुषमेधा रुपी 'जुएँ' को चुनकर फेंकने के लिए वह तैयार हो गयी है। 'जुएँ' शीर्षक कविता में अनामिका इस प्रकार कहती हैं-

"क्या जाने कितनी
शताब्दियों से
चल रहा है यह सिलसिला
और एक आदि स्त्री
दूसरी उतनी ही
पुरातन सखी के
छितराए हुए केशों से
चुन रही है जुएँ।"[83]

स्त्री, अपनी पीड़ा से मुक्त होना चाहती है। इसीलिए वह परिवर्तन की माँग करती रहती है। ईश्वर से उसकी माँग है कि इस जन्म के सारे पुरुषों को अगले जन्म में स्त्री होने की पीड़ा भोगनी चाहिए। साथ ही स्त्रियों को पुरुष जन्म देकर उसे

सत्ता संभालने का अवसर प्रदान करें। निर्मला पुतुल की 'ईश्वर से स्त्रियों की माँग' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"और एक बार
सत्ता परिवर्तन की माँग
करते हुए कह रही हैं
कि एक बार इस जन्म के
सारे पुरुषों को अगले जन्म में स्त्री
और इस जन्म के स्त्री होने की पीड़ा
भोग रही स्त्रियों को
अगले जन्म से पुरुष बनाकर
पृथ्वी पर भेजा जाए।"[84]

स्त्री अपने श्रद्धा, शरम, दया, धरम रुपी तेवर से मुक्त होना चाहती है और आग का दरिया बन जाना चाहती है। वह पितृसत्ता से लड़कर उसे नीचा दिखाने के लिए प्रयत्नशील बन गयी है। सुशीला टाकभौरे की 'आज की खुद्दार औरत' की पंक्तियाँ हैं-

"बुझाये न बुझेगी
बन जायेगी
आग का दरिया
पहचानो उसके नये तेवर,
श्रद्धा, शरम, दया, धरम
किसमें खोजते हो?

आज यह खुद्दार औरत
अपने आप को पहचान गयी है,
इसे यूँ न सताओ
वरना यह भी
तुम्हारे सर्वस्व को नकार कर
तुम्हें नीचा दिखायेगी।"[85]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था की कूटनीति को आज स्त्री पहचानती है। अपने स्व की रक्षा के लिए, अधिकार के लिए स्त्री लड़ाई लड़ती रहती है।

3.7. स्त्री कविता: पारिवारिक आयाम

परिवार समाज की प्राथमिक इकाई है। इसके कारण व्यक्ति जन्म से ही परिवार के साथ सम्पृक्त है। पारिवारिक जीवन में परस्पर एकता, सौहार्द और सद्भावना होनी चाहिए। लेकिन वर्तमान समय में पारिवारिक संबंध बदलता जा रहा है। आज संयुक्त परिवार दिखाई नहीं देता है। एकल परिवार की संरचना हुई है। जो भी परिवर्तन हो जाय स्त्री, परिवार की धुरी होती है, ममत्व की मूर्ति होती है। लेकिन स्त्री को परिवार रुपी पिंजरे में बंध करके रखी गयी है। पारिवारिक जीवन का मूलाधार विवाह स्थापित किया गया है। स्त्री के लिए विवाह एक अटूट बन्धन ही है। विवाह नामक संस्था ने स्त्री के जीवन को अभिशप्त बना दिया है। अपनापन और आज़ादी की साँस मिलने के लिए उसे संघर्ष करनी पड़ती हैं।

विवाह के प्रति भी आज की स्त्री में नई चेतना जागृत हुई है। अगर विवाह उसे सम्मानजनक जीवन नहीं देता है तो वह विद्रोही बनकर अविवाहित जीवन जीने का निर्णय भी ले सकती है। त्याग, समर्पण, संयम के तत्वों से बाहर निकलकर

समानधर्मी, सहमानवीय धरातल स्थापित करने के लिए स्त्री ज्वालामुखी बनकर फटने के लिए तैयार बैठी है।

3.7.1. संबंधों के बीच 'स्व' की तलाश

घर को घर बनानेवाला तत्व स्त्री ही है। घर के प्रति उसका लगाव अटूट है। स्त्री को घर एवं बाहर का काम बिना छुट्टी से करना पड़ता है। इसलिए वह घर को अपना बनाना चाहती है। वर्जीनिया वूल्फ का मानना है कि स्त्री के लिए एक कमरे की ज़रूरत है। वैसे ही स्त्री आज अपने लिए एक कमरा बनाना चाहती है। उस कमरे में बैठकर अपनी मनमानी से कुछ लिखना और पढ़ना चाहती है। स्त्री का मन एक जादुई टोकरी के समान है। आज वह उस भंडार को खुलकर बिखेरने के लिए उत्सुक है। प्रज्ञा रावत अपनी कविता 'आज बहुत मज़ा आया' में इस प्रकार बताती हैं-

"आज बहुत मज़ा आया
छुट्टी की सुबह थी और
कामवाली भी छुट्टी पर
कुछ लिखने-पढ़ने का मन बनाये
किताबों की तरफ मन मसोसकर
देखा मैंने हालाँकि अन्दर ही अन्दर
इन्द्रियों ने कुलबुलाना शुरू कर दिया था।
और मन शायद खुश हो रहा था
कि चलो एक दिन घर अपना
अपना-सा लगेगा।"[86]

घर को अपनाकर स्त्री सारे राग-द्वेष को दूर कर देती है। अपने घर को अपना बनाने का मतलब है कि स्त्री अपने स्वत्व को पहचानकर उसे बरकरार रखने के लिए प्रयत्नरत है।

स्त्री पूरे घर में बिखरने पर भी घर उसका अपना कभी नहीं होता है। रोज़ अपने घर के सारे काम करने के बावजूद उस घर में कोई निर्णय लेने का अधिकार उसे नहीं है। घर के नेम-प्लेट में उसका नाम नहीं देख जाएगा। लेकिन स्त्री स्वयं एक घर है। उस घर में स्त्री कई रुपों में विराजती है, कभी जन्मदेनेवाली माँ के रुप में, प्रणयिनी के रुप में, पत्नी के रुप में, यानी स्त्री रुपी घर के बिना अन्य लोगों का कोई अस्तित्व नहीं है। इसलिए कवयित्री निर्मला पुतुल, 'अपने घर की तलाश में' शीर्षक कविता में कहती हैं-

"कहीं कोई घर नहीं होता मेरा
बल्कि मैं होती हूँ स्वयं एक घर
जहाँ रहते हैं लोग निर्लिप्त
गर्भ से लेकर बिस्तर तक के बीच
कई-कई रुपों में..."[87]

स्त्री अपने-आपको कभी भी परिवार से अलग नहीं कर पाती। संबंधों के बीच अपने स्व को तलाशती एवं परिवार के प्रति अपनी लगालगी अनामिका अपनी 'डाक-टिकट' कविता में इस प्रकार अभिव्यक्त करती हैं-

"बच्चे
उखाड़ते हैं

डाक-टिकट
पुराने लिफाफों से जैसे-
वैसे ही आहिस्ता-आहिस्ता
कौशल से मैं ख़ुद को
हर बार करती हूँ तुमसे अलग!
मेरे किनारे फट जाते हैं कभी-कभी,
कुछ-न-कुछ मेरा तो
निश्चित ही
सटा हुआ रह जाता है
तुमसे!"[88]

घर को उसी रुप में संभालने के बाद भी स्त्री को घृणा ही वापस मिलती है। लेकिन स्त्री जागरण के इस युग में वह अपने जीवन का हिसाब करने लगी है। सविता सिंह की 'हिसाब करती औरत' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"बर-बार वह हिसाब करती क्या मिला इस जीवन में उसे
कितना प्रेम कितनी घृणा
यातना तिरस्कार कितने
ले दे कर कितना सुख़
दुख़ कितना
अपमान और दुख़ का पलड़ा उसे भारी ही मिलता
बार-बार वह हिसाब करती"[89]

स्त्री परिवार के संबंधों के बीच दबी हुई है। उसकी ज़िन्दगी में 'ख़ाली' समय नहीं है मतलब हमेशा घर के अंदर कामों के बीच व्यस्त रहती है। लेकिन स्त्री

अब ऐसे घर को किसी दूसरी भाषा में अनुवाद करना चाहती है, मतलब वह अपने आप को ढूँढ़ रही है। 'अनुवाद' कविता में अनामिका इस प्रकार बताती हैं-

"दरअसल इस पूरे घर का
किसी दूसरी भाषा में
अनुवाद चाहती हूँ मैं
पर वह भाषा मुझे मिलेगी कहाँ"[90]

स्त्री की अनुपस्थिति में सबकुछ उलटा हो जाएँगे। क्योंकि सबको संभालने की अपार शक्ति केवल स्त्री में मौजूद है। वह अपने हिस्से की लड़ाई लड़कर 'स्व' की पहचान कराना चाहती है। 'मेरे बिना मेरा घर' कविता में निर्मला पुतुल कहती हैं-

"यह जो घर है मेरा
मेरा नहीं है
यह अलग बात है कि

तो कभी करती हूँ तय कि
नहीं जाना छोड़कर अब इसे
डटे रहकर मोर्चे पर यहीं
लड़नी है अपने हिस्से की लड़ाई"[91]

पिता के घर, पति के घर आदि नामों से घर की पहचान होती है। अतः स्त्री की यह माँग है कि अपने जीवन के लिए अपना एक घर मिल जाए। संबंधों के

बीच अपने आप की पहचान बनाने की कोशिश स्त्री करती रहती है। सविता सिंह की 'विमला की यात्रा' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"जाना है पति के घर से इस बार पिता के घर
एक घर से दूसरे घर जाते हैं वही
नहीं होता जिनका अपना कोई घर

हे ईश्वर हों जीवन में मेरे ऐसी यात्राएँ अब कम
हो मेरा एक ही जीवन
एक अपना घर
जैसे है मेरी एक आत्मा"[92]

स्त्री को घर और आफ़िस दोनों का काम संभालना पड़ता है। लेकिन उसकी इस स्थिति को किसी ने आज तक पहचाना नहीं है। स्त्री हमेशा घर के बाहर की चीज़ बनकर रहती है। वह चाहती है कि सदियों से ऐसे बाहर रहने की रीति को बदल दिया जाए। जो सम्मान उसे मिलना चाहिए, मिलें। निर्मला ठाकुर की 'जो करना था' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"संभाला था जब घर-बार
बच्चों की ज़िम्मेदारियाँ

आफ़िस और घर की दौड़ में
ऊर्जा से भरी-भरी
आगे ही आगे

फिर कब हो गई दोनों से बाहर

घर (बाहर)

ऐसा क्यों किया उसने

कि अपने को सोचा नहीं

देखा नहीं

सदियों बाद

महसूस हुआ

कि उसे जो करना था

वह तो किया ही नहीं?"[93]

स्त्री अनेक भावों की मूर्ति है। लेकिन उसे एक ही मुद्रा में खड़ा रहने के लिए विवश किया गया है। आज की स्त्री अपने खंडित रूप को पहचानती है। 'खंडिता' शीर्षक कविता में अनामिका बताती हैं-

"अच्छा, सुनो देवि

अब तुम ही मेरी प्रतीक्षा करो

सदियों से बन्द पड़ी हो मूर्तियों में

अकड़ गयी होगी ये पीठ तुम्हारी

एक मुद्रा धारे-धारे।

कहो तो ज़रा मूव मला दूँ।

किसने कहा था कि खेलो तुम

इतनी मगन होकर स्टैचू-स्टैचू?

लेटो-लेटो, इधर करवट करो

यह नस दबेगी तो होगा आरम"[94]

संक्षेप में कहें तो परिवार की रीढ की हड्डी स्त्री है। कई रूपों में स्त्री घर में विराजमान है। लेकिन स्त्री को किसी ने भी नहीं पहचाना है। यह एक विडंबना है। इस विडंबना पर स्त्री कविताएँ विमर्श कर रही हैं।

3.7.2. पारिवारिक संस्था एवं स्त्री

परिवार एक सामाजिक संस्था है। परिवार रूपी संस्था के अंदर स्त्री, अन्याय सहती रहती है। उसके अंदर क्या पक रहा है यह कोई जानता ही नहीं है। उसकी बेचैनी, दर्द को किसी ने देख्रा नहीं है। पालथी दिए बैठकर वह अपने बारे में सोचती है। इस संस्था की चाल को समझकर आज वह लकड़ी के धुएँ की तरह धीरे-धीरे उठने की कोशिश करती है- 'लोरी की चिड़िया' कविता में अनामिका बताती हैं-

"लकड़ी के धुएँ की तरह
उठ रहा था धीरे-धीरे
चिरायंध-सा शोर
चुप्पी के अदहन के नीचे से।
क्या जाने क्या पक रहा था, और कैसा!
पालथी दिए बैठी औरत के भीतर
जो थोड़ी-मोड़ी मिठास बची थी"[95]

पुरुषमेधात्मक सत्ता स्त्री के विरुद्ध हमेशा अनुशासन डालती रहती है। इसलिए उसे परिवार रूपी बंधन को तोड़कर आगे बढ़ने का मौका नहीं मिलता है। औरत सड़क पर आयी तो यह सत्ता पलट जाएगी। इसलिए लगातार उसका पीछा

करके उसकी शक्ति को दबाकर रखने का षड़्यंत्र चलाया जा रहा है। 'औरत और घर' शीर्षक कविता में कात्यायनी कहती हैं-

"एक सख़्त अनुशासनप्रिय अभिभावक भी था घर,
लगातार पीछा करता था,
जब भी औरत निकलती थी बाहर सड़क पर
ख़तरनाक होता है औरत के लिए
और पूरे समाज के लिए भी।"[96]

परिवार में स्त्री का रूप चौके के समान ही है। हमेशा वह दूसरों के लिए आग से तपती रहती है। चूल्हें की राख बुझ जाने के बाद भी स्त्री हड़बड़ी में पड़ती रहती है। कवयित्री अनामिका की कविता 'चौका' की पंक्तियाँ हैं-

"वह रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी

बुझ चुकी है आखिरी चूल्हे की राख भी,
और वह
अपने ही वजूद की आँच के आगे
औचक हड़बड़ी में
ख़ुद को ही सानती
ख़ुद को ही गूथती हुई बार-बार"[97]

स्त्री के लिए सुबह और रात एक समान हो गया है। घर को संभालने के लिए वह हमेशा जागती रहती है। घरवाले भी स्त्री से यही इच्छा करते हैं कि उसको

सोना नहीं चाहिए, इस चारदीवारी के अंदर घूमती रहे। 'अग्नि' शीर्षक कविता में अनामिका बताती हैं-

"सुबह सभी के जागने के पहले जगती
सोने के बाद भी नहीं सोती
अंतिम बिछौने तक बिछी हुई आग।"[98]

घर को सहेजनेवाली और सँवारनेवाली है स्त्री। घर उसके लिए बोझ नहीं है। वह घर को अपनाकार उसमें डूबना पसंद करती है। इसलिए कहती है आईने में अपने चेहरे से ज़्यादा घर का चेहरा देख्रती है। उसके बिना घर अधूरा है, यह बात समझने में लोग असफल हुए हैं। प्रज्ञा रावत की 'घर का सपना' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"इतने बरस जो सहेजती
और सँवारती रही सिर्फ़ घर
अपने चेहरे से ज़्यादा
घर का चेहरा देख्रा
आइने में

तो वो घर ही था
फिर भी उससे ही
क्यों छूटा उसका घर"[99]

संक्षेप में कहें तो घर रूपी संस्था, स्त्री को पीड़ा दे रही है। इस संस्था में वह कभी भी नहीं पहचानी जाएगी। इसको स्त्री विमर्शी दृष्टि से देखने का कार्य समकालीन स्त्री कवयित्रियाँ कर रही हैं।

3.7.3. समर्पिता स्त्री

स्त्री और पुरुष दोनों संपूरक हैं। लेकिन हमेशा स्त्री अपने आप को समर्पित करने के लिए मज़बूर होती है। रिश्तों के प्रति, जीवन के प्रति उसकी संवेदना दृष्टि अलग ही है।

स्त्री में ही सबसे ज़्यादा प्यार करने की शक्ति रहती है। इसलिए संवेदनशीला स्त्री के द्वारा एक ही जुबाँ से एक ही समय में अपने बेटे, प्रिय और माँ से कहा गया कि, 'सबसे ज़्यादा तुम हो प्यारे'। संबंधों के बीच वह अपने आप को समर्पित करती है। अनामिका की 'एक औरत की पहला राजकीय प्रवास' की पंक्तियाँ हैं-

> "पेशी हुई ख़ुदा के सामने
> कि इसी एक जुबाँ से उसने
> तीन-तीन लोगों से कैसे यह कहा-
> "सबसे ज़्यादा तुम हो प्यारे!" यह तो सरासर है धोखा-
> सबसे ज़्यादा माने सबसे ज़्यादा।
> लेकिन ख़ुदा ने कलम रख दी
> और कहा-"औरत है, उसने यह गलता नहीं कहा"[100]

स्त्री की ज़िन्दगी सूख गयी है। अब खाली हो गयी है। समर्पण करने के लिए भी अब कुछ बचा नहीं है। गगन गिल की कविता 'चौबीस पार करती लड़की' में स्त्री का विराग इस प्रकार है-

"वहाँ अब ख़ाली है-
वह बह गया या सूख गया?
इस 'बह गए' और 'सूखने के बीच' क्या है-
उसमें क्या है? सपना है? अपना है कि नींद कि उनींद कि ऊब
कि धीमे-धीमे फैलने वाली मृत्यु"[101]

घर-परिवार के उस छोटे घेरे में ही हर स्त्री अपने को धन्य समझती है। रोजी-रोटी तैयार करके उसमें अपने आपको समर्पित करके जीने के लिए वह विवश होती है। सुशीला टाकभौरे की कविता 'प्रशंसनीय नारी' की पंक्तियाँ हैं-

"घर-परिवार के छोटे घेरे में
हर नारी स्वयं घिरती है,
रोजी-रोटी तक जाकर
जीवन को धन्य समझती है।"[102]

एक स्त्री अपने पूरे घर में गिरगिट के समान लगती है। उसे अनेक रंगों में अपनी ज़िन्दगी गुज़ारनी पड़ती है। समर्पण करके बस उसे खाने के लिए बची हुई रोटी ही मिलती है। अनामिका की कविता 'खौफ़' की पंक्तियाँ हैं-

"और फिर
सबको खा लेने के बाद

बची हुई

पिछली रोटी

खाता रहता है भर-रात।"[103]

ऐसा, स्त्री-विमर्शी कवयित्रियों ने स्त्री के समर्पिता रूप को स्त्री संवेदना के धरातल पर पकडा है। इन्होंने उसके समर्पिता भाव के महत्व को अपनी कविताओं के द्वारा संप्रेषित किया है।

3.7.4. वात्सल्य रूपी माँ की भूमिका

स्त्री के रूप में जो पद सर्वाधिक गौरवान्वित रहा है, वह है उसका मातृत्व रूप। स्त्री की सृजनात्मक शक्ति उसके सबसे बड़ा सौन्दर्य ही है। इससे स्त्री की ज़िन्दगी संपूर्ण होती है क्योंकि उसमें जीवन पैदा करने एवं पालन-पोषण करने की अपार शक्ति निहित है। यह मात्र स्त्रीजन्य अनुभूति ही है। घर को व्यवस्थित रखना एवं बच्चों को संभालने का काम स्त्री करती रहती है। माँ का संबंध दुनिया के सारे संबंधों से सबसे ऊपर है।

स्त्री में ममता की सरिता प्रवाहित होती है। उसके नाखूनों से बेसन की हल्की-सी खुशबू आती है। अपने बच्चों एवं घरवालों के लिए खाना पकाती है इनकेलिए गरम पावरोटी की भाप वह सहती रहती है। अनामिका की 'गंध' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"माँ के नाखुनों से आती थी

बेसन की हल्की-सी खुशबू,

गरम पावरोटी की भाप
उसके तलवे से उठती थी।
और उसकी नरम-नरम छाती से
जनमतुआ बच्चे के बालों का
मीठा-सा ताप!"[104]

माँ को अपने बच्चों से बढ़कर इस दुनिया में कुछ भी नहीं है। बच्चों को स्वस्थ ज़िन्दगी देने के लिए माँ सबकुछ सहने के लिए तैयार होती है। अनामिका की 'ऋषिका' कविता में स्त्री का वात्सल्य रुप इस प्रकार प्रस्तुत है-

"माँ हूँ मैं, मेरे भरोसे ही
बीमार पड़ता है चाँद!
जाओं, अब दूध पिलाऊँगी मैं,
सोओ कि इसे सुलाऊँगी मैं।"[105]

माँ होना बेहद दर्दनाक है साथ ही बेहद सुख्रद भी है। क्योंकि जन्म देने की अनुभूति एक स्त्री ही जानती है। माँ बनने की स्थिति, उसका सौन्दर्य मात्र एक स्त्री ही अनुभव करती है। शीला सिद्धांतकर की 'माँ होने की बात' कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"एक माँ
होने की बात
बड़ी टेढ़ी है
माँ होना
बेहद दर्दनाक

बेहद सुखद
बेतरह कमज़ोर
बेहद मजबूत
माँ होने की स्थिति
नहीं जान सकते तुम
क्योंकि तुम
माँ नहीं हो।"[106]

परिवार में बच्चों की भूमिका महत्वपूर्ण है। बच्चों के पालन-पोषण, देखभाल के लिए माँ अपनी ज़िन्दगी समर्पित करती है। सचमुच माँ का ब्लाउज बच्चे की गुल्लक ही है। कवयित्री अनामिका अपनी कविता 'ब्लाउज' में इस प्रकार बताती हैं कि-

"मेरा ब्लाउज
मेरे बच्चा का
गुल्लक है।"[107]

लेकिन बदलती दुनिया में कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं कि अपने कैरियर को आगे बढ़ाने के लिए माँ नहीं बनना चाहती हैं। आर्थिक स्वावलंबन मात्र उसका लक्ष्य है। इसलिए स्त्रीजन्य सौंदर्य को बाधा कहकर नकार दी जाती है।

इस प्रकार माँ की भूमिका की रचनात्मक अभिव्यक्ति स्त्री-कवयित्रियों की कविताओं की मुख्य देन है। स्वानुभूति की विवृति इसके द्वारा साध्य हुई है। दुनिया में सबसे श्रेष्ठ कर्म माँ बनना है। इसकी अभिव्यक्ति सिर्फ एक स्त्री ही कर सकती है।

3.7.5. दांपत्य जीवन में संत्रस्त स्त्री

दांपत्य जीवन में स्त्री को अधीनस्थ स्थिति में रहनी पड़ती है। पति लोग अपने आप को बड़ा समझकर पत्नी का शोषण कर रहे हैं। लेकिन नारी जागरण दांपत्य जीवन में होनेवाले अत्याचारों को समझने लगा है। विरोध करने की शक्ति स्त्री अर्जित करने लगी है।

स्त्री आज किसी की भी नूरजहाँ बनकर रहने के लिए तैयार नहीं है। सामंजस्य करके जीने के लिए स्त्री तैयार होती है अनामिका अपनी कविता 'उड़ान' में ऐसे पूछती हैं कि-

> "किसकी नूरजहाँ हूँ मैं
> इस अँधियारे कमरे में यों
> टीन खरचती आटे की?"[108]

दुनिया बदल गयी है। लेकिन स्त्री की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। वैवाहिक जीवन में वह पत्नी के रूप में गुलाम की तरह रहने के लिए मज़बूर होती है। आज भी उस पर चाबुक का निशान पड़ता रहता है। लेकिन आज स्त्री चाबुक की पीड़ा के प्रति विद्रोह करने लगी है। अनामिका की 'यक्ष-प्रश्न' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

> "ये मालिक क्या होता है?
> क्या होता है किसी का होना?
> ------------------------
> बहुत प्यार करता है जो मुझको

किसका है?

किसकी हैं तनी हुई भवें

और किसका है

यह मुझपर लहराता चाबूक?"[109]

पत्नी को पति के साथ चलने का सांझा ज़रूर है। लेकिन पुरुष ऐसा एक मौका उसे नहीं देता है। उसे हमेशा पीछा करा देती है। ऐसी कष्टता एवं विवेचन सहने के बाद भी वह उम्मीद रखती है कि सवेरा ज़रूर हो ही जायेगा। सुशीला टाकभौरे की 'यह और वह' कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"साथ चलने का साँझा है

मगर फिर भी लड़ाई है

वह आगे बढ़ ही जाता है"[110]

स्त्री को अपनी स्वतंत्रता में बाधा डालनेवाला सबसे बड़ी संस्था है विवाह। उस संस्था के अंदर पत्नी दासी के समान रहती है। सदियों से होती आयी दासता को वह पहचानने लगी है। इसके फलस्वरुप उसमें यह अंदाज़ा हुआ है कि केंचुल से उतरते ही उसका हाथ फिर से पिटारे में बन्द हो जाएगा। साथ ही उसी पुरानी बीन पर नाचना भी पड़ेगा। इसलिए केंचुल के साथ रहना ही उसके लिए अच्छा है। अनामिका की 'हाथ-का प्लास्टर' की पंक्तियों में-

"केंचुल उतरते ही यह हाथ औरत का

फिर से पिटारे में हो जाएगा बन्द

और अगर नाचा भी-

उसी पुरानी बीन पर नाचेगा"[111]

स्त्री का जीवन दाम्पत्य जीवन के कटघरे के अन्दर बन्द है। दाम्पत्य जीवन स्त्री के लिए अभिशाप बन गया है। इसके नाम पर उसको जीवन भर पीडा सहनी पडती है। इस मुद्दे को उठाने का प्रयास स्त्री-विमर्श से जुडी कवयित्रियाँ अपनी कविताओं के द्वारा कर रही हैं।

3.7.6. घरेलू हिंसा

विवाह-संबंध में पत्नी को मारपीट, क्रूरता, हिंसा सब सहनी पड़ती है। सदियों से यह अत्याचार स्त्री सहन करती आ रही है। मारपीट से उसकी पीठ नीली हो गयी है, चेहरा पीला और आँखें लाल हो गयी हैं। पूरे शरीर में ज़ख़्म पड़ गया है। अनामिका की 'टूटी बिखरी और पिटी हुई' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"पीठ नीली,
चेहरा पीला,
लाल आँखें और
ज़ख़्म हरे-
कुदरत के सब रंगों की बोतल
उलट-पुलट जाती है मुझ पर
उनके आते ही!"[112]

हथौड़े की मार से जिस तरह की पीड़ा उत्पन्न होती है ठीक वैसे पुरुष रुपी हथौड़े से स्त्री की नाभि में मार पड़ती रहती है। उसकी पीड़ा स्त्री अभिव्यक्त करती है। 'अंतःसत्वा' में अनामिका इस प्रकार बताती हैं-

"देखो यहाँ-बिल्कुल यहाँ-
नाभि के बीचोंबीच
उठते और गिरते हथौड़े के नीचे
लगातार जैसे कुछ ढल रहा है
जल रहा है।"[113]

स्त्री कभी भी अपने आप को परिवार से दूर रखना नहीं चाहती है। परिवार में स्त्री को स्वतंत्रता देनी चाहिए। संबंधों के बीच अपनी अस्मिता के साथ वह जीना चाहती है।

3.8. स्त्री कविता : सामाजिक आयाम

सामाजिक संबंधों में स्त्री-पुरुष का संबंध अधिक व्यापक और स्थायी होता है। समाज के ढाँचे को संवारने में दोनों महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। लेकिन पितृसत्तात्मक समाज में मुख्य स्थान पुरुष का होता है। पुरुष-प्रधान समाज स्त्री को निकृष्ट मानकर हमेशा समर्पण भाव से रहने के लिए मज़बूर कर देता है। ऐसे समाज में स्त्री को अकथनीय हिंसा का सामना करना पड़ता है एवं अमानवीय कुकृत्यों का शिकार बनना पड़ता है। उत्तर वैदिक काल से लेकर भारतीय स्त्री की स्थिति गिरती आई है। उसे सती प्रथा, बाल-विवाह, बेटा न पैदा करने वाली औरत के दहन आदि सामाजिक कुरीतियाँ सहनी पड़ी। इससे नारियों की बदतर स्थिति हो गयी। तमाम सामाजिक क्षेत्रों में से स्त्रियों को हटाकर उसे अपनी भूमिका निभाने का अवसर कभी नहीं दिया गया है। समाज के विकास के साथ स्त्रियों की सामाजिक स्थिति विकसित नहीं हुई है।

जब से स्त्रियों में शिक्षा और आधुनिकता का प्रचार प्रसार हुआ तब से ये तमाम स्थितियों के विरुद्ध मुकाबला करने लगी है। आज की स्त्री अपने सामाजिक अधिकारों के लिए विद्रोह करने लगी है। उसे अपनी ताकत का पता चल गया है। साथ ही पुरुषों से किसी भी क्षेत्र में टक्कर लेने में स्त्री सक्षम है।

3.8.1. अकेलापन

अकेलापन एक प्रकार की असहनीय पीड़ा ही है। दरअसल हर व्यक्ति अपने आप में अकेला है। लेकिन संबंधों के बीच दरार पड़ने से अधूरेपन का तीव्र एहसास होता है। स्त्री भी इस पीड़ा से बाहर नहीं है। फिर भी एक उम्मीद के साथ उसमें भी जीने की वजह ढूँढ लेती है।

सामाजिक रिश्तों में आज बदलाव हुआ है। पैसा कमाने की दौड़ में बच्चे माँ-बाप को भी भूल जाते हैं। उनके पास माँ-बाप से मिलने तक का समय नहीं है। अकेलेपन से ऊब कर अपनी पीड़ा को भोगनेवाली एक माँ का अपूर्व चित्र सुनीता जैन की 'यह पीड़ा का रिश्ता है' शीर्षक कविता में अभिव्यक्त हैं-

> "बेटों से कहतीं तुम, ऊब अकेलेपन से,
> बेटा, तुझको देखे, अरसा एक हुआ,
> कल आ जाना मैंने मँगोड़ी तोड़ी है
> तुझे पसंद है न इतनी...."[114]

जिसे अब कोई काम न हो, ना किसी का इंतज़ार, न प्यार, न प्रार्थना उसे अपनी चुप्पी में मन लगाकर रहना चाहिए। उस अकेलापन में हार मानकर साँप-

सीढ़ी खेलना चाहिए। यही उसकी नियति है। अनामिका की 'साँप-सीढ़ी' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"जिसे करने के लिए न काम हो,
न इंतज़ार,
प्यार, न प्रार्थना,
उसे अपनी चुप्पी से
खूब मन लगाकर
चाहिए खेलना साँप- सीढ़ी।"[115]

पति, रिश्तेदार सब होते हुए भी स्त्री उपेक्षित रहती है। पेड़ के जो पत्ते होते हैं उनका डाली के साथ संबंध है लेकिन अगर पत्ते टूटकर गिर जाते हैं डाली पर कोई फर्क नहीं पड़ता है ठीक वैसे ही पूरे घर का, समाज का पालन-पोषण करने के बावजूद स्त्री को कोई पहचानता नहीं है। 'जलेबा बुआ' में अनामिका कहती हैं-

"कोई उसे जानता नहीं
पूरे शहर में कि घर में।
किसी की वो कोई नहीं है
कोई नहीं उसका
कोई नहीं होता है जैसे डाली का पत्ता"[116]

अकेली स्त्री की हालत क्रूर है। सभी को पनपने के लिए स्त्री चाहिए। लेकिन स्त्री के लिए कोई नहीं होता है। वह अकेली है। स्त्री का जीवन अकेलापन का पर्याय बना है। स्त्री के जीवन का यह मुद्दा किसी ने भी नहीं उठाया है। कवयित्रियाँ इस मुद्दे पर गौर करती है।

स्त्री, अपने जीवन में जुझारू होने के बावजूद कभी-कभी उदासी भी महसूस करती है। अकेलापन और थकान की आकुलता के बारे में वह सोचती रहती है। लेकिन उस दशा में डूब नहीं जाती है। अपने आप की ज़िन्दगी अकेलापन से गुज़रने के बाद भी कामना तैरने की और उड़ने की भावना वह रख़ती है। इन उदास भावनाओं को तोड़कर आगे की गति में बहना चाहती है। जगत और जीवन की गति के साथ मिलकर चलने की आकांक्षा रख़ती है। कात्यायनी की 'मन उदास है आज' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ-

"मन उदास है
आज विकल है
श्लथ है, व्याकुलसा है।
ऐसे में क्या करें?

चलें, यहाँ से और कहीं
जीवन में- गति में
शामिल होकर जियें-मरें
कुछ करें-लड़ें
कुछ शोर मचायें

जग की, जीवन की गति से
जब तक हम मिले-मिले चलते हैं
जटिल नही जीवन लगता है।"[117]

3.8.2. स्त्री शोषण

पुरुष वर्चस्वी समाज में स्त्री का शोषण चलता रहेगा। ऐसे समाज में स्त्री को दबाकर, कुचलाकर उस पर नियंत्रण बनाकर रखने की आदत रहेगी। उसकी रीति यही होगी है कि स्त्री को कभी भी आज़ादी न मिले।

समाज स्त्री को तोड़ती रहती है। कभी, कभी स्त्री स्वयं अपने आप को तोड़ी जाती है। समाज उसे अधीनस्थ स्थिति में रखने के लिए विवश करा देता है। अनामिका की 'गृहलक्ष्मी' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

> "जैसे कि मज़दूरनी
> तोड़ती है पत्थर-
> मैंने तोडा खुद को
> कूट-कूटकर!
> धूल-धूल, कंकड़ी-कंकड़ी हुई।"[118]

सदियों से चले आये स्त्री शोषण में आज तक कोई फ़र्क नहीं हुआ है। उसके चेहरे पर दुःख के ललाट, मोमबत्तियों जैसी जलती आँखें सब पुराने जैसे ही हैं। इन्हीं आँखों ने सदियों से अनाचार, षड्यंत्र और झूठ को देखा। उसकी पीठ आज झुकी हुई है। सविता सिंह की कविता 'मैं कथा कहूँगी' की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

> "देखूँगी तुम्हारे प्राचीन चेहरे
> जो अब तक दस्तावेज़ों की तरह सुरक्षित होंगे वहाँ
> उससे ही जान लूँगी तुम्हारा हाल
> और यह भी समझ लूँगी कि बहुत फ़र्क नहीं है
> एक दूसरे के हालचाल में अब भी

अब भी दुख में वही स्थिर ललाट है
मोमबत्तियों-सी जलती हैं अब भी वैसे ही आँखें
जिन्होंने देखे न जाने कितने षड्यंत्र
झूठ और अनाचार तमाम सभ्यताओं में
जिम्मेदारियों और बेतहाशा श्रम से झुकी वैसी ही पीठ"[119]

'धरम पत्नी' की हैसियत देकर स्त्री को सदियों से शोषित किया जा रहा है। समाज ने उसके लिए बंधनों का पिंजरा बना लिया है। तो स्त्री शताब्दियों से अकेली होकर पीड़ा झेल रही है। निर्मला ठाकुर की 'अक्सर' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"और वह 'धरम' पत्नी
होंठों को कसकर भींच
झेल रही है पीड़ा का दंश
अकेली
शताब्दियों से।"[120]

3.8.3. सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह

यह नारी जागरण का युग है। स्त्री अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक है। स्त्री रूपी अपनी जैविक समृद्धि को वह पहचानती है। इसलिए समाज के प्रतिबंधों को हटाकर वह आगे बढ़ना चाहती है। इस समाज ने स्त्री के लिए रात की सुन्दरता को, शाम की मधुरिमा को पीने की आज़ादी नहीं दी है। क्योंकि लड़कियों को ऐसा करना पाप माना गया था। लेकिन लड़की ऐसे पाप के सामने घुटने टेकने के लिए तैयार नहीं होती है। वह अपने मन की आशाएँ पूरा करना चाहती है। सब कुछ

भूलकर रात के नशे में झूमना चाहती है। अपनी स्त्री रूपी छवि में बेख़ौफ़ होकर जीना चाहती है। प्रज्ञा रावत ने 'लड़कियाँ' शीर्षक कविता में ऐसा चित्रण किया है-

"एक रात घर वापस
नहीं लौटेंगी सिर्फ लड़कियाँ
शाम की रंगीनियों में
खोई हुई
रात के नशे में झूमती
सड़कों पर होंगी सिर्फ लड़कियाँ।"[121]

इस दुनिया में सबकुछ बदलते रहते हैं- दिन रात में; फूल पात में और मौसम भी नये-नये रूप में स्त्री को भी समाज रूपी केंचुल से बाहर निकलने का समय आ गया है। षड्यंत्र रूपी केंचुल के बंधनों को तोड़ने का वक्त हो गया है। कीर्ति केसर की 'सरगोरियाँ -१' कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"दिन और रात
बदल गए
फूल और पात
बदल गए
बदल रहे हैं
मौसमों के पैरहन
बदलों तुम भी
बाहर निकलों
केंचुल से
चलते हुए वक्त का
साथ निभाने के लिए।"[122]

समाज ने हमेशा स्त्री को बंधनों में रखना चाहा है। स्त्री को दोयम दर्जे की पहचान देना चाहा है। इसलिए स्त्री होने के नाते बोलते वक्त संभालकर, लिखते वक्त कलम को झुकाकर, सबके दृष्टिकोण के साथ समझने के लिए उसे आदेश देते रहते हैं। लेकिन समय बदल गया है। परिस्थितियाँ बदल चुकी है। नारी आज स्वयं को पहचान चुकी है। उसके मन की चट्टान पर चोट पड़ती रहती है तब वह ज्वालामुखी होकर फूटने लगेगी। यानी, सारे प्रतिबंधों को हटाने की शक्ति उसमें है। 'स्त्री' शीर्षक कविता में सुशीला टाकभौरे जी झूठी साजिशों के प्रति विद्रोह करके बताती हैं-

"वह सोचती है
लिखते समय कलम को झुका ले

और समझने के लिए
सबके दृष्टिकोण से देखे
क्योंकि वह एक स्त्री है!
लेकिन कब तक?
मन की चट्टान पर
जब भी चोट पड़ती है

ज्वालामुखी होकर
धरती-सी फूट पड़ती है।"[123]

समाज ने स्त्री की आवाज़ को दबाकर रखा है। उसे चुप होकर रहने के लिए आदेश दिया गया है। क्योंकि उनका मानना है कि स्त्री होने का मतलब है सब चुप होकर सहना। लेकिन उसे पता नहीं है कि स्त्री के हल्के शब्दों के जंगल में

चुप्पी का एक शेर रहता है। उसकी चुप्पी ही उसका प्रतिरोध है। अनामिका की 'चुप्पी' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"शब्दों के जंगल में
चुप्पी का एक शेर रहता है,
जो भी ज़रूरी हो जाता है
आदिम अनुगूँजों की भाषा में
बस वही कहता है"[124]

समाज ने स्त्री को त्यागमयी, ममतामयी घोषित करके उसके वैभवशाली रूप को अधीन कर रखा है। लेकिन आज की स्त्री इसके विरुद्ध जागने लगी है। कात्यायनी की 'सात भाइयों के बीच चंपा' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"सात भाइयों के बीच सयानी चंपा
एक दिन घर की छत से
लटकती पाई गई
तालाब में जलकुम्भी के जालों के बीच
दबा दी गई।
देवता पर चढ़ाई गई
मुरझाने पर मसलकर फेंक दी गई
जलाई गई।

उसकी राख बिखेर दी गई
पूरे गाँव में।"[125]

स्त्री का विद्रोही रूप समकालीन स्त्री कवयित्रियों की कविताओं में प्रत्यक्ष हुआ है। इस रूप को उजागरित करके स्त्री शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने में इनकी कविताएँ शक्तिशाली मालूम पड़ती है।

3.8.4. समाज में उपेक्षित स्त्री

आजकल वृद्धजनों की स्थिति काफ़ी दयनीय है। बदलती दुनिया में रिश्तों का कोई महत्व नहीं है। इसी बीच भागदौड़ की जिन्दगी में से वृद्ध माँ को घर से निकालना आज साधारण बात बन गई है।

वृद्धजन अपनी ज़िन्दगी की किताब पढ़ रहे थे। उन्हें बीते जीवन के हर एक पन्ने की याद है। लेकिन अब वे उस किताब को बंद करती हैं। क्योंकि उन्हें पता चला है कि जो कुछ देना था वे सब कुछ दे दिए हैं और बाकी जो उनके पास थे, उनके हाथों से छीनकर भी ले गए हैं। उम्र की इस पड़ाव में वे इस पूरे समाज में उपेक्षित हो गये हैं। अनामिका की 'दांत' नामक कविता की पंक्तियों में-

> "वृद्धजन ने किताब बंद की
> और मसूढ़े छूकर लगे सोचने
> कौआ क्या-क्या ले गया
> हाथ से छीनकर!"[126]

बदलती सामाजिक परिस्थितियों वृद्धजन, अकेले और उपेक्षित हो गए हैं। समाज उसे बोझ मानता है। ऐसी दुखद स्थिति में वृद्धाएँ दर्द सहती रहती है। 'वृद्धाएँ धरती का नमक है' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

“रहती हैं वृद्धाएँ, घर में रहती हैं
लेकिन ऐसे जैसे अपने होने की खातिर हो क्षमाप्रार्थी
लोगों के आते ही बैठक से उठ जाती
छुप-छुपकर रहती हैं छाया-सी, माया-सी”[127]

वृद्धा की स्थिति की हृदयभेदी अभिव्यक्ति हुई है इस कविता में। इसके विरुद्ध स्त्री को जागने का संदेश भी कविता में मिलता है।

आज की स्त्री, समाज में अपनी अस्मिता को बरकरार रखने के लिए कोशिश करती है। अकेलापन, उपेक्षा और शोषण को सहने के बाद भी स्त्री अपने आप की पहचान बनाने के लिए विद्रोह करती है।

3.9. स्त्री कविता : शारीरिक आयाम

पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में स्त्री पुरुष के अधिनस्थ रहने को बाध्य है। इस अधीनस्थ स्थिति के कारण स्त्री की देह को भी वस्तु के रूप में देखी गयी है। खुद स्त्रियाँ भी अपनी देह को शर्म से देखती हैं। इसीलिए बचपन से ही अपनी देह को छुपाना की आदत उसमें पड़ी थी। स्त्री के इस शर्मिंदगी को पुरुष ने हथियार बना लिया। पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को शरीर के इर्द-गिर्द समेटने की साजिश की थी। उसके शर्म, और शारीरिक अक्षमता के बहाने उस देह की सुरक्षा अपने नाम पर कर दिया गया है। पुरुष ने स्त्रियों के रक्षक के बहाने उसके शरीर पर अपना कब्जा स्थापित कर दिया है। शरीर के नाम पर उसका शोषण निर्बाध चलता रहता है। औरत और उसके कुछ अंगों को ही उसकी पहचान के रूप में माना हैं।

समाज का मानना है कि स्त्री एक शरीर है, सेक्स है। उसकी देह सेवा और सेक्स के लिए बनाया गया है। इसीलिए प्रचलित व्यवस्था उसे स्वतंत्रता न देकर उसे अपने नियंत्रण में रखती है। पुरुष ने उसके रग-रग में यह भावना भर दी है कि वह सिर्फ देह ही है। पुरुष, स्त्री की देह के सिवा उसकी किसी और पहचान को स्वीकारता नहीं है। स्त्री उसके लिए यौन सुख की पूर्ति करनेवाला साधन है। स्त्री के यौन-भाव को निष्क्रिय माना गया है। उसे हमेशा एक काम्य वस्तु के रूप में देखा गया है। उसकी देह पितृसत्ता द्वारा अनुशासित देह है। इसलिए हमेशा अपनी देह उसे समर्पित करनी पड़ती है।

आज परिवेश बदल गया है, दुनिया बदल गयी है। साथ ही स्त्री अपनी मांसपेशियों की ताकत पहचानने लगी है। वे अपनी देह से शर्मिंदगी नहीं रखती है। आज वह खड़े होकर मुक्ति के लिए लड़ाई लड़ने लगी है। स्त्री अपनी देह के सौन्दर्य को समझकर देह की परिधि को लांघ रही है। देह में से अपनी अस्मिता को बचाकर रखने के लिए वह कोशिश करती रहती है और अपने शरीर के माध्यम से उससे ऊपर उठने का परिश्रम करती है। इस शरीर को अपना बनाकर आज स्त्री खतरों का मुकाबला करने लगी है।

3.9.1. स्त्री-देह पर पुरुष दृष्टि

आज वैश्वीकरण का युग है। नवपूँजीवाद, नव औपनिवेशिक बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद आदि के कारण पूरे विश्व में एक नया परिवेश आया है। इस नये परिवेश में स्त्रियों की स्थिति दर्दनाक है। भोगने की रीति, यानि उपभोग की नीति आज फैली हुई है। स्त्रियों को उपभोग की दृष्टि से देखी जाती है। मात्र उसकी देह को स्वीकार करके उसे वस्तु के रूप में मानी जाती है। इसलिए इस उपभोगी समाज

में स्त्री बिकाऊ चीज़ बन गयी है। उपभोगी दुनिया में स्त्री देह का अनुपात, विनिमय की वस्तु जैसा हो गया है।

उपभोगी समाज में स्त्री को केवल देह की हैसियत ही दी जा रही है। स्त्री देह को मात्र कामातुर नागरिकों के हृदय को उन्मत्त करने के, ग्राहकों को प्रसन्न करने के, रात के नशे में यौन तृप्ति देने के साधन माने गये है। लेकिन ऐसे उपभोगी समाज को स्त्री आज पहचानती है। वह उपभोगी दृष्टि के शिविरों से निकलकर जीवित रहना चाहती है। कात्यायनी की कविता 'एक भूतपूर्व नगरवधू की दुर्गपति से प्रार्थना' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

> "अपनी मात्र एक झलक से कामातुर नागरिकों के हृदय को
> उन्मत्त कर देने के लिए,
> ---------------------------
> तुम्हारी सजी-धजी दूकानों के सम्भ्रांत ग्राहकों को
> प्रसन्न करने के लिए
> ----------------------------
> रात्रि-आमोद-गृहों के लिए
> मैं अनुपयोगी हो चुकी हूँ।
> ---------------------------
> मैं अपनी पहचान तक जाना चाहती हूँ
> अपनी आत्मा तक
> अपनी अस्मिता तक जाना चाहती हूँ।"[128]

पितृसत्तात्मक दृष्टि में स्त्री का शरीर मात्र भोग्यवस्तु बन गया है। उसका सौन्दर्य, उसकी छवि, उसकी पीड़ा और वेदना को आज तक पुरुष समाज ने नहीं

समझा है। इनसान होने का हक स्त्री मांगती है। अनामिका 'स्त्रियाँ' शीर्षक कविता में इस प्रकार बताती हैं कि-

"भोगा गया हमको
बहुत दूर के रिश्तेदारों के
दुख की तरह!
एक दिन हमने कहा
हम भी इंसान हैं"[129]

समाज, स्त्री के शरीर एवं उसके समूचे अन्तःकरण को खरीदता है। स्त्री शरीर को यौनिकता का प्रतिरूप मानकर सुख-भोग की इच्छा करता रहता है। सविता सिंह की 'सहमति' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"खरीदता है जो सब कुछ सारी देह सारा दिमाग
समूचा अन्तःकरण
सारी सहमति"[130]

जैसे राजसभा में द्रौपदी की चीर का हरण किया गया था वैसे ही आज भी स्त्रियों की नग्नता को ही पुरुष समाज अधिक चाहता है। वे उसकी देह की नग्नता देखकर सुख को भोगना चाहते हैं। देह को यौनिकता में बदलकर सुख प्राप्ति की वस्तु माना जाता है। 'तुम्ही कहो' शीर्षक कविता में कीर्ति केसर कहती हैं-

"मैं वस्तु बनकर
बंट गई पांचों में
धर्मराज का
जुए में हारना मुझे

हस्तिनापुर की राजसभा में
मेरा चीर हरण"[131]

पुरुषवर्चस्वी समाज की वासनालोलुप आँखें ने स्त्री की शक्ति, बुद्धि, क्षमता को देह के साथ तुलना करके तुच्छ मानने लगी है। ऐसे पुंसमोह की जाल से अपने शरीर को बचाने की कोशिश स्त्री करती रहती है। स्त्री अपने वजूद को तलाशती है।'आशा प्रभात' की पंक्तियों में-

"सोचती है लड़की
किस अदृश्य नकाब के पीछे
छिपाए वह इस देह को,
ताकि बचा रहे सिर्फ इसका वजूद"[132]

पुरुष को सिर्फ बिस्तर का साथी चाहिए। घर के सारे काम करके जब वह सोने के लिए आती है तब एक काली छिपकली की तरह पुरुष उसकी पाँव में सरककर आते हैं। अपनी लैंगिक अनुभूति के लिए उसका इस्तेमाल रात भर किया जाता है। अनामिका की 'होना-न-होना' कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"मैं ठंडे बिस्तर पर जाती थी सोने तो
क्या जाने कहाँ से
काली छिपकली की तरह
सरक आती थी पाँव पर
और भर-रात किया करती थी किटिर-किटिर"[133]

स्त्री की देह पर मात्र नज़र रखनेवाले पुरुष समाज की विकृति पर खुल्लम-खुल्लम वार करती है स्त्री कविताएँ। अब तक छिपाकर रखी गई कई बातें आज

सीधे बोलने में स्त्री शर्म नहीं करती है। संस्कृति और सभ्यता के नाम पर स्त्री को जिसने चुप किया था उसके मुख पर स्त्री कविताएँ थप्पड देती हैं।

3.9.2. देह को बचाने की लड़ाई

जैविक रूप से अधिक वैभवशाली एवं सुन्दर है स्त्री। लेकिन असुरक्षा और शारीरिक अक्षमता के बहाने पितृसत्तात्मक व्यवस्था उसका शोषण करता रहता हैं। स्त्री की शारीरिक बनावट के कारण उसे दोयम दर्जे की मानी गयी है। लेकिन आज की स्त्री अपनी देह के प्रति जागरूक है। परिस्थितियों की प्रेरणा एवं अपनी देह की समृद्धि को समझकर आज की स्त्री देह से मुक्ति के लिए लड़ाई लड़ने लगी है।

स्त्री की देह, सचमुच उसकी शक्ति का निशान है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को देह ही समझकर उसे दुर्बल माना गया है। पुरुष के लिए देह होना उसकी मज़बूरी ही है। वह वास्तव में शरीर स्त्री के लिए ऐश्वर्य है, वैभव है। लेकिन पुरुषसत्ता उसके वैभव को नज़रअंदाज करके यौन सुख प्रदान करनेवाली 'देह' रूप में उसको निर्धारित करती है। स्त्री आज अपनी देह मुक्ति के लिए लड़ाई शुरू की है, कहने लगी है कि जिस दिन पुरुष के लिए स्त्री देह नहीं रह जाती, उसी दिन से पूरी दुनिया हिल जाएगी। कात्यायनी की छः पंक्तियोंवाली कविता 'देह न होना' की पंक्तियाँ हैं-

> "देह नहीं होती है
> एक दिन स्त्री

और

उलट पुलट जाती है

सारी दुनिया

अचानक"[134]

स्त्री मुक्ति का अर्थ तमाम सामाजिक, पंरपरागत, वैयक्तिक शोषण से मुक्ति है। इसमें देह-मुक्ति महत्वपूर्ण ही है। वे अपना शरीर अपने कब्जे में रखना चाहती है। उसे अब अपनी पूर्ण स्वतंत्रता चाहिए। पुरुष उसकी खून में देह की भावना भर दी है। हालाँकि आज स्त्री जान गयी है कि अपनी देह का सौन्दर्य क्या होता है। देह की मुक्ति के लिए वह संघर्षरत है। सविता सिंह की 'मुझे वह स्त्री पसंद है' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"मुझे वह स्त्री पसन्द है जो कहती है अपनी बात साफ़-साफ़

बेझिझक जितना कहना है बस उतना

निर्भीक जो करती है अपने काम

नहीं डरती सोचती हुई आत्मनिर्भरता पर अपने

हटाती नहीं जो वे आख़िरी पर्दे

जिन्हें आत्मा बचाये रखना चाहती है देह के लिए"[135]

सदियों से यही सुनाया जा रहा है कि स्त्री का वजूद स्त्री के लिए नहीं होती है। स्त्री की देह को पुरुष ने अपनी मानसिकता अपने पसंद की बनायी है। स्त्री का उसके साथ कोई लेना देना नहीं है। ऐसे में स्त्री का शरीर वस्तु के रूप में तब्दील हो गया है। स्त्री आज अपनी संरचना को स्त्री के विकार के युक्त और स्त्री की पसंद के आकार से युक्त बनाना चाहती है। वह अपना वजूद अपने पास सुरक्षित रखना चाहती है। 'संरचना' शीर्षक कविता में कीर्ति केसर बताती हैं-

"यही देखा, यही सुना
यही जाना है
कि मेरा वजूद है
सिर्फ उनकी
इच्छा के अनुसार
आवश्यकता के अनुरूप
जिन्होंने मुझे
अपने लिए रचा है

तब मेरा वजूद
हो जाता है
कर्म से, वाणी से
विकार मुक्त, आकार मुक्त
तरल सी कोई संरचना।"[136]

अक्सर स्त्री को शरीर के भीतर ही देखा गया है। स्त्री की देह पुरुषसत्ता के लिए मात्र अपनी लैंगिक अनुभूति की पूर्ति करने का साधन बन गयी है। वे हमेशा स्त्री को उसकी शक्तिशाली विविधता से नहीं बल्कि देह गन्ध से महसूस करते हैं। लेकिन देह की गुलामी सघन होने के कारण स्त्री उससे मुक्ति पाने के लिए संघर्ष करने लगी है। निर्मला पुतुल की 'मैं वो नहीं हूँ जो तुम समझते हो' कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"मैं जानती हूँ कि तुम क्या सोच रहे हो मेरे बारे में
वही जो एक पुरुष, एक स्त्री के बारे में सोचता है
अभी-अभी जब मैं तुमसे बतिया रही हूँ

संभव है मेरी बातों में
महसूसते देह गन्ध रोमांचित हो रहे हो तुम

तुम्हारी मानसिकता की पेचीदी गलियों से गुज़रती
मैं तलाश रही हूँ तुम्हारी कमज़ोर नसे
और बता सकूँ सरेआम गिरेबान पकड़
कि मैं वो नहीं हूँ जो तुम समझते हो!!"[137]

स्त्री के शरीर को मात्र यौनिकता के भीतर ही रखा गया है। स्त्री की नाभि के नीचे एक नये आखेट करने के लिए पुरुष लोग आते हैं। अपनी लैंगिक तृप्ति के लिए उसकी नाभि के नीचे की गुफ़ा में वे अक्सर आते रहते हैं। पुरुष समाज ने स्त्री को यौन दासी बना दिया है। इसलिए इस बात को खुलकर बताने के लिए स्त्री हिचकती नहीं है। यह कहना जो है, उसका प्रतिरोध है। अनामिका की कविता 'यौन-दासी' में इस प्रकार का वर्णन हैं-

"एक गुफा है
मेरी नाभि के नीचे।
अपनी ही खूँख्वारिता से थके
शेर-चीते-अजगर
आते हैं कुछ देर सोने यहाँ पर!
एक नये आखेट की खातिर
जाते हैं जब अगले दिन बाहर,
उनके वे टूटे नाखून,
राल, केंचुल
एक अजब बहनापे से देखते हैं मुझे!"[138]

स्त्री को लिए अपनी देह सहस्रों वर्षों से खण्डहर के समान है। ऐश्वर्य रुपी देह को भोग की वस्तु बना दी गयी है। इसलिए अपने शरीर के माध्यम से ही शरीर से ऊपर उठने की वह कोशिश करने लगी है। देह से ही देह की मुक्ति प्राप्त करने के लिए वे लड़ाई लड़ती है। सविता सिंह की 'जैसे एक स्त्री जानती है' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"कौन जान सकता है लेकिन
जैसे एक स्त्री जानती है देह को
कौन जानता है बना सकती है वह इससे कैसी नाव
पार कर सकती है कौन सी सरिता
कि मुक्त कर सकती है वही
देह को देह से।"[139]

रात के अंधेरे में स्त्री को पुरुष आमंत्रित करता है। उसके बिस्तर पर उसका बलात्कार करता रहता है। ऐसी व्यवस्था के क्रूर कारनामे निर्मला पुतुल की कविता 'ये वे लोग हैं जो' की पंक्तियाँ बताती हैं-

"ये वे लोग हैं
जो मेरी कविताओं में भी तलाशते हैं
मेरी देह!"[140]

हमारे देश में स्त्री को देवी की तरह पूजता है। असंख्य उपमाओं से सजाकर उसकी प्रशंसा भी करती रहती है। लेकिन दूसरी ओर उसे वस्तु की तरह उपभोग भी करता है। पुरुषमेधा समाज की आँखें हमेशा उसकी देह का तरफ़ आकर्षित है।

लेकिन आज की स्त्री अपनी देह की इस त्रासमय स्थिति को पहचानती है। साथ ही अपना वजूद ढूँढ़ने लगी है। रजनी तिलक की 'चेरी' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"हजारो-हजार नाम से धजी,
असंख्य उपमाओं से सजी
स्त्री ढूँढ़ रही है अपना वजूद,
कि खुद को पहचान सके"[141]

स्त्री अपनी देह की पहचान से बाहर निकलना चाहती है। वे 'मानव रुप' होने में ही अपनी सार्थकता समझती है।

पुरुषवर्चस्वी समाज में स्त्री मात्र यौनिक सुख प्राप्ति का साधन बन गया है। उसकी स्त्री रुपी सुन्दर दृश्य को नकारकर देह रुपी उपभोगी वस्तु के रुप में स्त्री को तब्दील कर दिया है। स्त्री सिर्फ एक योनि, एक जोड़ी स्तन और एक लरजतें होंठवाली बन गयी है। लेकिन स्त्री अब अपने शरीर को व्यक्तिगत मानने लगी है। अपने शरीर पर अपना अधिकार स्थापित करने लगी है। 'योनि है क्या औरत' कविता में रजनी तिलक बताती हैं-

"हर स्त्री मर्द के लिए
एक योनि ....
एक जोड़ी स्तन........
लरजते होंठ हैं!
बहनापे वाली बहनों ने

मर्दों को धिक्कारा
उन्हें चेताया और कहा
योनि! स्तन! होंठ........

सब हमारे व्यक्तिगत हैं
हमारा शरीर हमारा है।"[142]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री मात्र 'देह' है। पुरुष ने उसे अपनी सुरक्षा कवच में रखकर उसकी देह से उसकी मुक्ति को और उसकी स्वतंत्र पहचान को मिटा दिया है ताकि स्त्री हमेशा उसकी दासी बनकर रहे। लेकिन वर्तमान युग की स्त्री इस कपट सुरक्षा कवच को फेंककर अपनी 'देह समृध्दि' को अपना रही है। आत्मनिर्भर स्त्री का आन्दोलित रूप अब सामने आने लगा है।

3.10. स्त्री कविता : सांस्कृतिक आयाम

हमारी संस्कृति ने स्त्री को देवी, शक्तिशाली, पराशक्ति आदि रूप में पुकारा है। उसे उस लेबल के अंदर जीने के लिए विवश भी करती है। मनु और याज्ञवल्क्य की स्मृतियों एवं सामाजिक आचार-संहिताओं ने औरत को हमेशा बांधकर रखने की संस्कृति बनायी थी। उसके लिए सिध्दि, मंत्र-तंत्र, साधना के दायरे बनाये गये थे। स्त्री की देह को पतिव्रता, पवित्रता के ढाँचे में समेटकर उसकी शक्तिशाली रूप को बांध दिया गया है। अपने मन और तन का समर्पण करना ही स्त्री की संस्कृति मानी गयी है। आस्था, समर्पण, त्याग आदि की भावनाओं ने स्त्री जीवन को पूरी तरह से अस्वतंत्र बना दिया था।

आज संस्कृति बदल गयी है। परिवेश बदल गया है। निजीकरण, उदारीकरण, बाज़ारीकरण, नवउपनिवेशवाद आदि के इस दौर में स्त्रियों की ज़िन्दगी में बदलाव आने लगा हैं। वैश्वीकृत संस्कृति ने स्त्रियों के लिए हर क्षेत्र का दरवाज़ा खोल दिया है। शिक्षा और संचार के साधनों ने उसे आत्मनिर्भर बनाया है। शिक्षित स्त्री के अन्दर स्वतंत्रता की भावना फूटकर आने लगी। तब पुरानी परंपरा, प्रचलित रीति-रिवाज़ के प्रति स्त्री लड़ने लगी। हालाँकि सकारात्मक पक्ष के साथ अनेक नकारात्मक परिणाम भी हुए हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने उसकी देह को वस्तु में तब्दील कर दिया है। अपने प्रोडक्ट की बिक्री के लिए उसे अर्ध-नग्न पोशाकें पहनने को दिया, स्त्री की देह को विज्ञापन की वस्तु बनाकर प्रदर्शन के रूप में पेश किया गया है। असल में यह उसकी स्वतंत्रता नहीं है। उसे गुलाम बनाने का एक अलग रास्ता ही है।

पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव-स्वरूप आज कॉल गर्ल संस्कृति, बॉय-फ्रेंड़ संस्कृति, क्लब संस्कृति, लिव-इन-रिलेशनशिप जैसी नयी संस्कृति के तौर-तरीके स्थापित हुए हैं। ये सब स्त्री को स्वतंत्रता देती है लेकिन हमने उसे जिस रूप में अपनाया है, वह गलत है। पुराने समय में स्त्री को परंपरा के बंधनों में बांधकर रखा गया था और आज की बदलती संस्कृति भी उसे दुर्बल और अशक्त बना दी गयी है।

3.10.1. परंपरागत बंधन में स्त्री

हमारी परंपरा में स्त्री को त्याग, समर्पण, आस्था की प्रतिमूर्ति मानी गयी थी। इसलिए पुरातन आचार-संहिताओं के अंतर्गत रहकर जीने के लिए स्त्री विवश होती है। उसे घर की चारदीवारी लांघने की या खुलकर हँसने की, बात करने की स्वतंत्रता नहीं दी गयी थी। उसे अपनी स्त्रियोचित संस्कृति में रहने के लिए मज़बूर

कर दिया था। उसकी ज़िन्दगी को सिर्फ माँ, पत्नी, बेटी के रूपों में निर्धारित किया गया था।

औरत हमेशा तकलीफ़ और थर्राहट के बीच में अपनी ज़िन्दगी गुज़ारती है। उसे ऐसा पाठ सिखाया गया है कि 'औरत है, तो चुप रहना चाहिए'। पितृसत्तात्मक समाज ने उसका सिर ऊपर उठाने का मौका नहीं दिया था। हमारी परंपरा ने हमेशा उसकी रोनेवाली आँखों का चित्रण किया है। समर्पण, त्याग, विरह में तड़पती स्त्री को ही मान्यता दी गयी थी। लेकिन स्त्री आज परंपरागत बंधनों को तोड़ने की कोशिश ज़रूर करती है। इसलिए आज औरत की आँखें रोने के बावजूद भी ऊपर उठती है। उसमें कुछ झलकती भी है। अनामिका की 'चमक के अलावा' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"आपने कभी
रोकर उठी औरत की आँखे देखी हैं?
विद्यापति-सूर के विरह-गीतों से उठकर

रोती हुई नहीं
रोकर उठी आँखों में
कुछ एक होता है।"[143]

परंपरा ने स्त्री को काजल बना दिया है जो दीपक के धुएँ की जमी हुई कालिख है। उसी तरह स्त्री को उसकी परित्यक्ता, ममतामयी, समर्पिता रूप में जीने केलिए मज़बूर कर दिया है। साथ ही 'दिठौना' बनकर परिवार की कुदृष्टि को भी

हटाती है। इसके बावजूद भी स्त्री के मन में आशा है कि वह इन बंधनों को तोड़कर आगे बढ़ेगी। 'काजल' शीर्षक कविता में अनामिका बताती हैं-

"देखो तो मुझको-
रहती हूँ काजल की ही कोठरी में,

माथे पर चढ़कर दिठौना-
नहीं बसी, नहीं चढ़ी-नहीं सही,

जानती हूँ इतना-
काल की दीठ में
काजल की धार-सी सजूँगी मैं
कभी-न-कभी!"[144]

स्त्री बचपन से ही परंपरा के धागों से बंधी हुई है। उसकी बेटी, बहन, पत्नी, और माँ रूप के धागे के बीच में से स्त्री उलझी हुई रहती है। हमेशा परिवार के प्रति समर्पित रहने के लिए वह विवश होती है। क्योंकि स्त्री को दबाकर रखने के लिए ही परंपरा ने उसकी बेटी, बहन, पत्नी और माँ के रूपों में उसे बांटा गया है ताकि इन रूपों में वह अपने आप को त्याग और समर्पित करती रहें। लेकिन स्त्री इन धागों के बीच में से अपने-आप को ढूँढने की इच्छा रखती है। इन बंधनों से मुक्ति पाने के लिए वह परिश्रम करती रहती है। सुधा उपाध्याय की 'बंधन' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"कई महीन धागों से बंधा है
जीवन
बचपन, संस्कार, परिवर्तन, परिपक्वता
और इन सबसे कहीं बढ़कर
खुद को टटोलने की अदम्य इच्छा
जब-जब खोजने निकलती है
वह खुद को
बार-बार उलझती है उन्हीं धागों में
बेटी, बहन, पत्नी और माँ के
महीन धागे आपस में उलझे हैं

क्या कभी वह खोज पाएगी
उस औरत को
जो इन बंधनों से अलग है।"[145]

प्रचलित परंपरा में स्त्री को अपना सिर झुकाकर सबकुछ सहनी पड़ती है। प्रश्न पूछना स्त्रियों के लिए मना है। इस परंपरा ने ऐसा सिखा दिया है कि स्त्री को प्रश्न नहीं पूछना चाहिए। उसे सहनशीलता और आदर भावना को अपनाकर जीना पड़ता है। वन्दना मिश्रा की कविता 'उनकी बैठक में प्रवेश वर्जित है हमारा' की पंक्तियाँ हैं-

"उन्हें पसंद है हमारा, हर बार
सिर झुकाकर सहना
हमारी रीढ़ बेहद, नापसंद है उन्हें

हमारा सीधा खड़ा होना,

हमारी प्रश्न पूछती आँखें"[146]

भारतीय समाज, परंपरा का वहन करता आ रहा है। लेकिन इनमें कुछ परंपराओं और रूढ़ियों ने स्त्री की ज़िन्दगी को अमानवीय स्थिति में पहुँचा दिया है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की संस्कृति ने स्त्री को मात्र भोग्या के रूप में बदल डाला है। स्त्री को आज धार्मिक प्रपंच अश्लील लगने लगे हैं। स्त्री इस परंपरा में परिवर्तन चाहती है। देह की परिधि से निकलकर बाहर जाना चाहती है। स्त्री उस परंपरा को नकारती है जिसमें उसे स्वतंत्रता, अस्तित्व एवं मौलिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। 'दंगे और कर्मकांड' कविता में अनामिका कहती हैं-

"अश्लील लगते हैं धार्मिक प्रपंच

उतने ही जितने कि हीरे

बाढ़-पीड़ित क्षेत्र में रसद टपकाते

महापौर की उँगलियों को"[147]

3.10.2. बाज़ारवादी संस्कृति में स्त्री

भूमंडलीकरण ने बाज़ारवाद एवं उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया है। बाज़ार का आरंभ वस्तु-विनिमय के रूप में हुआ था। लेकिन आजकल सूचना प्रौद्यागिकी, मीड़िया और तकनीकी प्रयोग ने बाज़ार को बाज़ारीकरण के रूप में विस्तृत किया है। उपभोक्ता संस्कृति और बाज़ारवाद ने स्त्री को मात्र वस्तु के रूप में तब्दील कर दिया है। विज्ञापनों ने स्त्री की देह सौष्ठव का बड़ा शोषण किया है।

उसे बिकने वाली चीज़ बना दिया है। ऐसी संस्कृति को आज की स्त्री पहचानती है। अपनी अस्मिता और आकांक्षाओं की रक्षा के लिए स्त्री विद्रोह करने लगी है।

बाज़ारवादी संस्कृति में संवेदना, भावना और संबंधों का कोई मूल्य नहीं है। बाज़ार की अपनी एक परिभाषा होती है जिसमें स्त्री को वस्तु के रूप में परिवर्तित करके उसे बेचने और खरीदने लगे हैं। बाज़ारीकृत संस्कृति में अपनी अस्मिता को बचाकर रखने के लिए स्त्री, पुरुष समाज को चुनौती देने लगी है। अनामिका की कविता 'चौदह बरस की कुछ सेक्स-वर्कर्स' की पंक्तियाँ हैं-

"एक दिन आऊँगी मैं टी वी पर
एक अँगूठे की तरह दिखाऊँगी देह-
दूर से।
काया जब छाया की माया बन जाएगी,
ललकारूँगी शोहदों को तब
'आ बैल, मुझे मार' हिम्मत है तो आ।"[148]

बाज़ारवाद में स्त्री की देह का उपयोग मार्केट के लिए कर रहा है। आज स्त्री को साधन मानकर देह प्रदर्शन के लिए मज़बूर कर देती है। उसकी संवेदना, अस्मिता को कोई महत्व नहीं दे रहा है। कंपनियों ने अपने आर्थिक मुनाफे के लिए झूठी साजिशों को रचाकर स्त्री देह को मार्केटिंग के लिए परोसा जाता है। ऐसी स्थिति में समझौता करके स्त्री, समाज के प्रति विद्रोह करने लगी है। सुधा अरोड़ा की पंक्तियों में -

"बाज़ार के साथ
बाज़ार बनती

यह सबसे सफल औरत है।"[149]

बदलती संस्कृति में संबंधों के बीच कोई लगाव नहीं रहा है। संवेदना भी वस्तु के रूप में बदल रही है। संबंधों के बीच में भी क्रय-विक्रय की स्थिति पनपने लगी है। माँ, बेटी, बहन, पत्नी सबको बाज़ार में खरीदने और बेचने की संस्कृति आज फैली हुई है। ऐसी स्थिति से मुक्ति पाने के लिए स्त्री संघर्ष कर रही है। 'उषा यादव' की पंक्तियों में-

"अच्छा, अगर नेह बहन का
ममता माँ की
दुलार बेटी का
और एकनिष्ठ लगाव पत्नी का खरीदकर आओ
तो मानूँ
तुम्हारे बाज़ार में सबकुछ मिलता है"[150]

वैश्वीकृत संस्कृति में स्त्री अपने आप को बेचने के लिए मज़बूर हो जाती है। अब उसका शरीर, वस्तु में परिवर्तित किया जा रहा है। इस व्यावसायिक युग में सबकुछ बिक रहा है। विज्ञापन माध्यमों में भी स्त्री के अश्लील चित्रों का प्रचार-प्रसार हो रहा है। मीड़िया ने स्त्री को विज्ञापन की चीज़ बना डाली है। मीड़िया ने स्त्री को सम्मान नहीं दिलाया है बल्कि उसे वस्तु में तब्दील करके बेचने के लिए मज़बूर किया है। निर्मला पुतुल की 'अखबार बेचती लड़की' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"अखबार में फोटो छपा है

उस जैसी बदहाल कई लड़कियों की
जिससे कुछ-कुछ उसका चेहरा मिलता है
कभी-कभी वह तस्वीर देखती है
कभी अपने-आप को देखती है
तो कभी अपने ग्राहकों को"[151]

बाज़ारीकृत दुनिया में स्त्री तडपती रहती है। बाज़ार ने लड़कियों को विशाल नाच घर बना दिया है जिसमें जीवन भर उसे नाचना पड़ता है। उसे अपने शरीर से ऊपर उठने का मौका नहीं दिया गया है। बिकाऊ माल में रूपांतरित करके उसे बाज़ार में बेचता रहता है। 'नया नाच' शीर्षक कविता में सविता सिंह बताती हैं-

"शायद बहुत पहले तय कर चुका था बाज़ार
इन लड़कियों की नियति
बना चुका था खुद को एक विशाल नाच घर
जिसमें नाचना था इनको जीवन भर
बेचते थे उसके उत्पाद उन्हीं में तब्दील होकर।"[152]

प्रारंभ से ही स्त्री को रीति-रिवाज़ एवं रुढ़ियों के बीच में अस्वतंत्र रूप में जीना पड़ा। बदलती बाज़ारवादी संस्कृति में भी उसे मनुष्य का दर्जा न देकर वस्तु के रूप में तब्दील कर दिया है। आज की स्त्री बाज़ारवादी संस्कृति को चुनौती देकर विद्रोह करने लगी है। वह अपनी अस्मिता को बचाने के लिए निरंतर संघर्ष करती रहती है।

निष्कर्ष

स्त्री-कविता प्राणवान हो सकती है। स्त्री-कविता भोगा हुआ यथार्थ होने के कारण उसमें अधिक शक्ति होती है। यह कविता गहरे राग से फूटती है। स्त्री कविताओं में आत्मसंघर्ष और क्रोध उभरकर आए हैं। स्त्री कविताएँ विषय वैविध्य की दृष्टि से विशेष भी हैं। समकालीन स्त्री कविताएँ उसकी वैयक्तिक, पितृसत्तात्मक, पारिवारिक, सामाजिक, शारीरिक, सांस्कृतिक स्थितियों में स्त्री की दशा को उद्घाटित करती हैं। कविताओं में पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा निर्मित स्त्री छवि को तोड़कर अपनी बदलती अस्मिता को बनाये रखने के लिए विद्रोह करनेवाली स्त्रियों का चित्रण है। इन कविताओं के माध्यम से स्त्री अपनी 'मानवी रुप' की स्थापना के लिए आवाज़ उठाती है। चीख़, फर्नीचर, जुएँ, सरगोशियाँ, संरचना, देह न होना आदि सबकुछ इसमें समाहित हैं। आज स्त्रियों की भागीदारी हर क्षेत्र में है तो वह स्वतंत्र रुप में जीने के लिए प्रतिरोध करती रहती है।

संदर्भ-सूची

1. महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, तृतीय संस्करण - 2001, पृ.12
2. रेखा कस्तवार- स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, लोकभारती प्रकाशन, तृतीय संस्करण- 2001, पृ.18
3. अनुष्टुप- अनामिका, किताबघर प्रकाशन, पृ.8
4. उद्धृत : भाद्रपद- आषाढ़, भाग 97, संख्या-3, पृ. 194
5. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.15
6. सविता सिंह- अपने जैसा जीवन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2001, पृ.40
7. कात्यायनी- जादू नहीं कविता, वाणी प्रकाशन, प्र.सं.2002, पृ.87-88
8. अनामिका- दूब-धान, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा सं. 2008, पृ.56
9. सुधा उपाध्याय- इसलिए कहूँगी मैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2013, पृ.22
10. समकालीन साहित्य समाचार- फरवरी 2008, पृ. 30
11. सुधा उपाध्याय- इसलिए कहूँगी मैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2013, पृ.29
12. वन्दना मिश्रा- कुछ सुनती ही नहीं लड़की, शिल्पायन प्रकाशन, प्र.सं. 2010, पृ.113
13. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.13
14. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.30-31
15. कात्यायनी- इस पौरुषपूर्ण समय में, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 1999, पृ.75
16. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.48
17. रजनी तिलक- पदचाप, निधि बुक्स, प्र.सं. 2008, पृ.40

18. कात्यायनी- जादू नहीं कविता, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2002, पृ.100

19. नीलेश रघुवंशी- अंतिम पंक्ति में, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 2008, पृ.60

20. कात्यायनी- सात भाइयों के बीच चंपा, परिकल्पना प्रकाशन, तीसरा सं. 2008, पृ.15

21. प्रज्ञा रावत- जो नदी होती, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.28

22. सविता सिंह- अपने जैसा जीवन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2001, पृ.14

23. निर्मला पुतुल- नगाडे की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा सं. 2005, पृ.14-15

24. कात्यायनी- सात भाइयों के बीच चंपा, परिकल्पना प्रकाशन, तीसरा सं. 2008, पृ.13

25. रेखा- अपने हिस्से की धूप, साहित्य सहकार, प्र. सं. 1984, द्वि.सं. 1990, पृ.26

26. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.19

27. सविता सिंह- अपने जैसा जीवन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2001, पृ.21

28. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.43

29. सविता सिंह- नींद थी और रात थी, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.15

30. कात्यायनी- इस पौरुषपूर्ण समय में, वाणी प्रकाशन, प्र.सं.1999, पृ.55

31. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.45

32. निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा सं. 2005, पृ. 28-29

33. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.15-16

34. सविता सिंह- नींद थी और रात थी, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.51
35. नया ज्ञानोदय, सितंबर- 2009, अंक. 3, पृ.74
36. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.81
37. प्रज्ञा रावत- जो नदी होती, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.20
38. कात्यायनी- जादू नहीं कविता, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2002, पृ.99
39. सविता भार्गव- किसका है आसमान, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.18
40. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.88
41. कात्यायनी- सात भाइयों के बीच चंपा, परिकल्पना प्रकाशन, तृतीय सं. 2008, पृ.32
42. सुनीता जैन- इस अकेले तार पर, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1995, पृ.44
43. कात्यायनी- सात भाइयों के बीच चंपा, परिकल्पना प्रकाशन, तृतीय सं. 2008, पृ.17
44. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.96
45. वन्दना मिश्रा- कुछ सुनती ही नहीं लड़की, शिल्पायन प्रकाशन, प्र.सं. 2010, पृ.11
46. सविता सिंह- अपने जैसा जीवन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2001, पृ.42
47. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.79
48. कात्यायनी- जादू नहीं कविता, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2002, पृ.98
49. सविता सिंह- अपने जैसा जीवन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2001, पृ.35-36
50. सविता भार्गव- किसका है आसमान, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.22
51. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.63

52. सुधा उपाध्याय- इसलिए कहूँगी मैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2013, पृ.25
53. सुनीता जैन- इस अकेले तार पर, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1995, पृ.42
54. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.46
55. सविता सिंह- अपने जैसा जीवन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2001, पृ.34
56. वन्दना मिश्रा- कुछ सुनती ही नहीं लड़की, शिल्पायन प्रकाशन, प्र.सं. 2010, पृ.24
57. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.29
58. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.57
59. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.34
60. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.73
61. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.28
62. सुशीला टाकभौरे- यह तुम भी जानो, स्वराज प्रकाशन, द्वितीय सं. 2013, पृ.56
63. अनामिका- दूब-धान, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा सं. 2008, पृ.28
64. वन्दना मिश्रा- कुछ सुनती ही नहीं लड़की, शिल्पायन प्रकाशन, प्र.सं. 2010, पृ.116
65. शीला सिद्धांतकर- परचम बनें महिलाएँ, प्र.सं. 2009, पृ.148-149
66. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.33
67. सुधा उपाध्याय - इसलिए कहूँगी मैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2013, पृ.73
68. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.51

69. सुशीला टाकभौरे- यह तुम भी जानो, स्वराज प्रकाशन, द्वितीय सं. 2013, पृ.66

70. सुशीला टाकभौरे- यह तुम भी जानो, स्वराज प्रकाशन, द्वितीय सं. 2013, पृ.69

71. सुशीला टाकभौरे- यह तुम भी जानो, स्वराज प्रकाशन, द्वितीय सं. 2013, पृ.67

72. कात्यायनी- सात भाइयों के बीच चंपा, परिकल्पना प्रकाशन, तीसरा सं. 2008, पृ.34

73. प्रज्ञा रावत- जो नदी होती, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.31

74. निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा सं. 2005, पृ.73

75. सविता सिंह- अपने जैसा जीवन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2001, पृ.30

76. नया ज्ञानोदय- फरवरी 2011, अंक. 96, पृ.45

77. अनामिका- दूब-धान, भारतीय ज्ञानपीठ, दू.सं. 2008, पृ.84

78. कात्यायनी- सात भाइयों के बीच चंपा, परिकल्पना प्रकाशन, दू.सं. 2008, पृ.19-20

79. शीला सिद्धांतकर- परचम बने महिलाएँ, निधि बुक्स, प्र.सं. 2009, पृ.94

80. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.36

81. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.50

82. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.53

83. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.50

84. निर्मला पुतुल- बेघर सपने, आधार प्रकाशन, प्र.सं. 2014, पृ.69-70

85. सुशीला टाकभौरे- यह तुम भी जानो, स्वराज प्रकाशन, दूसरा सं. 2013, पृ.81-82

86. प्रज्ञा रावत- जो नदी होती, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.79

87. निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा सं. 2005, पृ.30

88. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.88

89. सविता सिंह- नींद थी और रात थी, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.37

90. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.45

91. निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा सं. 2005, पृ.38-39

92. सविता सिंह- अपने जैसा जीवन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2001, पृ.38-39

93. निर्मला ठाकुर- हँसती हुई लड़की, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2014, पृ.78-79

94. अनामिका- दूब-धान, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा सं. 2008, पृ.50-51

95. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.30

96. कात्यायनी- इस पौरुषपूर्ण समय में, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 1999, पृ.68

97. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.40

98. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.79

99. प्रज्ञा रावत- जो नदी होती, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.23

100. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.26

101. गगन गिल- एक दिन लौटेगी लडकी, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं.1989, पृ.13

102. सुशीला टाकभौरे- यह तुम भी जानो, स्वराज प्रकाशन, दूसरा सं. 2013, पृ.69

103. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.45

104. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.59

105. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.67

106. शीला सिद्धांतकर- परचम बनें महिलाएँ, निधि बुक्स, प्र.सं. 2009, पृ.75

107. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ.74

108. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.52

109. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.35-36

110. सुशीला टाकभौरे- यह तुम भी जानो, स्वराज प्रकाशन, दूसरा सं. 2013, पृ.71

111. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.65

112. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.46

113. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.29

114. सुनीता जैन- इस अकेले तार पर, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1995, पृ.101

115. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.17

116. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.32

117. कात्यायनी- सात भाइयों के बीच चंपा, परिकल्पना प्रकाशन, तीसरा सं. 2008, पृ.118-119

118. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.42

119. सविता सिंह- नींद थी और रात थी, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.24

120. निर्मला ठाकुर- हँसती हुई लड़की, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2014, पृ.69

121. प्रज्ञा रावत- जो नदी होती, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.12

122. कीर्ती केसर- मुझे आवाज़ देना, अभिव्यंजना प्रकाशन, प्र.सं. 2002, पृ.32

123. सुशीला टाकभौरे- यह तुम भी जानो, स्वराज प्रकाशन, दूसरा सं. 2013, पृ.31

124. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.42

125. कात्यायनी- सात भाइयों के बीच चंपा, परिकल्पना प्रकाशन, तीसरा.सं. 2008, पृ.23-24

126. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.13

127. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.49

128. कात्यायनी- इस पौरुषपूर्ण समय में, इस पौरुषपूर्ण समय में, वाणी प्रकाशन, प्र.सं.1999, पृ.63-64

129. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.13

130. सविता सिंह- नींद थी और रात थी, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.47

131. कीर्ती केसर- मुझे आवाज़ देना, अभिव्यंजना प्रकाशन, प्र.सं. 2002, पृ.41

132. वागर्थ, अप्रैल 2010, पृ.62

133. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.62

134. कात्यायनी- सात भाइयों के बीच चंपा, परिकल्पना प्रकाशन, दू.सं. 2008, पृ.16

135. सविता सिंह- नींद थी और रात थी, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.56

136. कीर्ती केसर- मुझे आवाज़ देना, अभिव्यंजना प्रकाशन, प्र.सं. 2002, पृ.29-31

137. निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, दू.सं. 2005, पृ.55-56

138. अनामिका- दूब-धान, भारतीय ज्ञानपीठ, दू.सं. 2008, पृ.66

139. सविता सिंह- नींद थी और रात थी, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.52

140. निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, दू.सं. 2005, पृ.54

141. रजनी तिलक- पदचाप, निधि बुक्स, प्र.सं. 2008, पृ.12

142. रजनी तिलक- हवा सी बेचैन युवतियाँ (दलित स्त्रीवाद की कविताएँ), स्वराज प्रकाशन, प्र.सं. 2014, पृ.81

143. अनामिका- बीजाक्षर, भूमिका प्रकाशन, प्र.सं. 1993, पृ.64

144. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.18

145. सुधा उपाध्याय - इसलिए कहूँगी मैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2013, पृ.24

146. वन्दना मिश्रा- कुछ सुनती ही नहीं लड़की, शिल्पायन प्रकाशन, प्र.सं. 2010, पृ.35

147. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.123

148. अनामिका- दूब-धान, भारतीय ज्ञानपीठ, दू.सं. 2008, पृ.70

149. हंस, जुलाई 2011, पृ.40

150. समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई- अगस्त 2011, पृ.121

151. निर्मला पुतुल- बेघर सपने, आधार प्रकाशन, प्र.सं. 2014, पृ.34

152. सविता सिंह- नींद थी और रात थी, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.45

चौथा अध्याय

समकालीन स्त्री कविता की भाषा-शैली

4.1. भाषा-शैली

साहित्यकार साहित्य के माध्यम से अपने मन की अनुभूतियों को खोलकर दूसरों के सामने रखते हैं। फिर भी इस भाषा से परे अभिव्यक्ति को चमत्कारी और प्रभावी बनाने के लिए नई शैली भी अपनाने लगी है। शैली का सामान्य अर्थ है- साहित्यिक अभिव्यंजना की प्रविधि। शैली अंग्रेज़ी के 'स्टाईल' का अनुवाद शब्द है। साहित्य एवं साहित्येतर कलाओं में शैली का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि शैली अभिव्यक्ति की विशिष्ट पद्धति है। शैली के माध्यम से ही व्यक्ति अपने आपको अधिक अभिव्यक्त कर सकता है। अभिव्यक्ति में अपना स्वभाव, दृष्टिकोण, विश्वास, जीवन संबंधी बातें सब आते हैं यानी कि अभिव्यक्ति अस्मिता से जुड़ी हुई बात है।

रचना में लेखक की वैयक्तिकता महत्वपूर्ण ही है। साथ ही साथ समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव भी लेखन में उभरता है। इसी तरह शैली में भी समसामयिक लेखन-चिंतन प्रणाली का प्रभाव होता है। लेखक के व्यक्तित्व और समसामयिक लेखन-चिंतन प्रणाली के बीच संघर्ष भी उभरता है। इस संघर्ष के उतार-चढ़ाव से ही अभिव्यक्ति का रूप निर्धारित होता है। शैली के संबंध में बाबू गुलाबराय का मानना है कि "शैली अभिव्यक्ति के उन गुणों को कहते हैं जिन्हें लेखक या कवि अपने मन के प्रभाव को समान रूप में दूसरों तक पहुँचाने के लिए अपनाता है।"[1] अतः शैली अभिव्यक्ति की विशिष्टता को स्पष्ट करता है। शैली कलात्मक सौन्दर्य की भाषिक संरचना ही है।

असल में साहित्य, भाषा का एक रूप है। अनुभूत भाव की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए भाषा का उपयोग ज़रूरी है। किसी भी साहित्यिक रचना का प्राण-भाव और भाषा के सामंजस्य से बनता है। भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा के विविध

रूपों का प्रयोग करना पड़ता है। सर्जनात्मक अभिव्यक्ति का मूलाधार है भाषा। अपनी संवेदना के आधार पर ही रचनाकारों ने भाषा का निर्माण किया है।

कविता में भाषा-शैली का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक कवियों ने मनुष्य के इर्द-गिर्द से जुड़कर रही बातों को लेकर कविताएँ लिखी हैं। इसलिए मानव व्यक्तित्व से जुड़ी भाषा-शैली को अपनायी गयी है। इन कवियों की भाषा-शैली अपने अनुभव से उभरकर आती है। कहीं मौन, कहीं आक्रोश, विद्रोह, व्यंग्य भाव आदि शैली के अंतर्गत देखने को मिलते हैं। "समकालीन भाषा को देखकर ऐसा लगता है मानो कवि अपने आपको चुका देने वाले अनुभवों को शब्दों में ढाल रहे हैं। शब्दों की रूपासक्ति के कारण रस कहीं खो गया सा लगता है। शब्दों में कथ्य को महत्वपूर्ण न मानकर शिल्प दृष्टि से भावनाओं के लिए पदपंक्ति में उसे कहाँ रखना है, इस पर ज़्यादा ध्यान दिया गया है, संभवतः इसीलिए कविता रसाद्र करने वाली नहीं लगती।"[2] समकालीन काव्य भाषा अधिक समृद्ध और विकसित है। इसमें बिंब, प्रतीक, शैली नये रूप में सामने आते हैं। ऐसी भाषा-शैली में जीवन की सही पहचान परिलक्षित होती है।

4.2. स्त्री की भाषा-शैली

पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को नियंत्रित करने के लिए अनेक नियम निर्मित करते रहते हैं। उसकी अभिव्यक्ति को भी बंध करने के लिए साजिशें रची गयी थी यानी भाषा के द्वारा भी उसे उत्पीड़ित करते रहे। क्योंकि हमारी भाषा भी पितृक व्यवस्था की उपज है। उसके रंग, रूप, शब्द विन्यास सब पुरुष सत्ता को प्रतिबिंबित करते हैं। लेकिन आज स्त्री-विमर्श के आने के कारण स्त्री को जागने का मौका मिला है। स्त्री अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए विद्रोह करने लगी है। इसी

बीच पुरुषवर्चस्वी भाषा-शैली को चुनौती देकर स्त्री अपने अनुभवों को व्यक्त करने के लिए अपनी भाषा-शैली का प्रयोग करने लगी है। अपनी रचनात्मक अस्मिता से वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक, शारीरिक अस्तित्व की रक्षा के लिए स्त्री प्रयत्न करती रहती है।

स्त्री भाषा एक मनोवैज्ञानिक भाषा है। बदलती दुनिया में संबंधों में संवेदना का भाव छूट रहा है। इसलिए सभी संबंधों में विघटन की स्थिति पैदा हुई है, ज़रूर इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण है। आज स्त्री अपनी भाषा के माध्यम से उसी का निवारण करना चाहती है। स्त्री के भीतर क्रांति उद्घाटित करने के लिए ऐसी भाषा की सख्त ज़रूरत है।

स्त्री भाषा की एक विशेषता है कि वह, प्रश्नवाचक और संबोधनात्मक होती है अर्थात् इसी प्रश्नातुरता ही स्त्री चेतना को जगाकर परिवर्तित करने में सहायक सिद्ध हुई है। अनामिका का मानना है कि- "स्त्री भाषा अधिकतर प्रश्नवाचक चिन्ह् और संबोधनात्मक चिन्हों से भरी हुई है अर्थात् वह चेतना जगाकर परिवर्तन करने में विश्वास रखती है। होम्योपैथी इलाज की तरह धीरे-धीरे समस्याओं के तह तक जाकर उसे समूल परिवर्तन करने में विश्वास रखती है, न कि एलोपैथी इलाज की तरह ऊपरी तौर पर।"[3]

सदियों से हाशिए पर रहनेवाली स्त्री की भाषा में तेजस्विता, जीवंतता होना स्वाभाविक ही है। स्त्रियाँ लेखन के माध्यम से अपने आप को रचना में उतार रही है इसलिए उनकी भाषा में प्राण ज़रूर होते हैं। उस प्राण में विद्रोह, संघर्ष एवं मुक्ति की कामना की चटपटी ज़रूर होती है। स्त्री अपनी अस्मिता को कायम रखने के लिए कोशिश करती रहती है। इसलिए उसकी भाषा-शैली में भी बदलती अस्मिता

दिखाई देती है। स्त्री अपनी बेड़ियों को तोड़कर दौड़ना चाहती है। इसी तरह स्त्री द्वारा बनाई गई भाषा भी आज सारी बेड़ियों को तोड़कर एक नया रूप धारण करने लगी है। ऐसी भाषा में मामूली और साधारण बिंबों का उपयोग करके नये प्रयोग करने लगी है। "पुरुष-सत्ता की भाषा के कारण ऐसे बहुतेरे अनुभव हैं, जिनका स्त्रियाँ वर्णन नहीं कर पातीं। स्त्री-पक्ष को स्थापित करने के लिए स्त्रियों ने सहज और स्वाभाविक ज्ञान-पद्धति का इस्तेमाल किया है।"[4]

पुरुषों द्वारा स्त्री शरीर के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है। अपने मन की मधुरता को उसकी देह में मिलाकर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत भी की है। पहले स्त्री को अपनी देह के बारे में लिखने का हक नहीं था। लेकिन अब वे स्त्रियाँ अपने शरीर के बारे में अपने ढंग से लिख रही हैं। उसमें पीड़ा नहीं बल्कि अपने शरीर को अपना बनाने का संघर्ष गूँजता है। स्त्री जो भी लिखें जैसा भी लिखें, उसमें सच्चाई ज़रूर होगी, ऐसी लेखनी दूसरों के मन को छुएगा ही।

दुनिया बदल रही है। लोगों में समानाधिकार एवं अस्मिता बोध बढ़ता जा रहा है। आजकल की स्त्रियों में भी अस्मिता, मुक्ति की भावनाएँ उभर रही हैं इसी कारण अपनी जंजीरें तोड़कर बाहर निकल रही हैं। ऐसी आत्मनिर्भर स्त्री के इस्तेमाल की भाषा में भी परिवर्तन आ जाना स्वाभाविक ही है। स्त्री आज जानने लगी है कि भाषा बेहद सशक्त ज़रिया है। भाषा की ताकत जबर्दस्त है। इसलिए अपनी अनुभूतियों को शुद्ध रूप से प्रकट करने के लिए स्त्रियाँ भाषा-शैली के रूप को बदलती रहती हैं।

स्त्रियों के उत्पीड़न का एक आधार पुरुषों द्वारा उसके ऊपर भाषा का प्रभुत्व भी है। ऐसी पुरुष वर्चस्वी भाषा में स्त्रियों की अनुभूति को पूरी संवेदना के साथ

व्यक्त करने की क्षमता कभी नहीं होगी। इसलिए स्त्रियाँ ही स्त्री जीवन की सच्चाई को व्यक्त करने के लिए आगे बढ़ रही हैं। आज की स्त्रियाँ पुरुष-प्रधान समाज से बाहर निकलकर अपनी भाषा शैली से अपने को पूरी तरह मुक्त करना चाहती है। स्त्री भाषा-शैली की शक्ति को दिखाते हुए अनामिका कहती हैं-"दुनिया की सारी सिसकियाँ, प्रश्न, उत्तर, आदेश, अध्यादेश, सन्देश, उपदेश, झगड़े, फसाद, गीत, अगीत और फटकार उनके कानों में घर तानकर बस ही जाते हैं। आकाश वाले ब्लैक होल के पीछे कहते हैं कि दुनिया की सारी आवाज़ें गुड़ी-मुड़ी होकर छुपी हैं और वैज्ञानिक वे आवाज़ें डीकोड करने में लगे हुए हैं। इस तरह का एक दुर्भेद्य ब्लैक होल स्त्री भाषा में भी है। दुर्भेद्य है उसका आकर्षण जिससे सब बचकर निकलना चाहते हैं। एक अलग तरह की 'स्टोरी ऑफ ओ, है यह जिसकी ध्वनि स्त्री लेखन दर्ज करता है।"[5]

स्त्री की अपनी एक अलग भाषा-शैली होती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में व्याप्त पुरुष भाषा से अलग एक नयी भाषा का प्रयोग स्त्री अपने लेखन के लिए चुनती भी है। स्त्री अपनी अनुभूतियों को खुले रूप से अभिव्यक्त करने के लिए अपनी भाषा का प्रयोग करती है।

समकालीन स्त्री कविताओं की भाषा-शैली में काफ़ी बदलाव आए हैं। कवयित्रियों ने अपने वैयक्तिक, सामाजिक, पितृसत्तात्मक, शारीरिक परिवेश के कारण अपने चिंतन की दृष्टि भी बदली है। उनकी कविताओं में आत्मकथात्मक, शीर्षक विहीन लंबी कविता, डायरी, एस.एम.एस, विद्रोह, एवं मुक्ति की भाषा आदि के प्रयोग मिलते हैं।

4.3. प्रतीक और बिंब

बिंब एवं प्रतीकों के माध्यम से कविता में किसी अमूर्त अनुभूति की अभिव्यक्ति और कविता को प्रभावोत्पादक अभिव्यंजना में प्रस्तुत करने केलिए नूतन प्रयोग होते हैं। समकालीन स्त्री, कवयित्रियों ने अपनी भाषा में स्त्री स्वत्व को पहचाना है। दैनंदिन जीवनानुभव को साधारण प्रतीक एवं बिंबों के माध्यम से प्रस्तुत करने लगी है। जैसे: तकिया, सेफ्टीपिन, जुएँ, रोटी बेलना, बॉल, झाड़ू लगाना आदि।

कात्यायनी की कविता 'एक भूतपूर्व नगरवधू की दुर्गपति से प्रार्थना' में स्त्री अनेक बिंबों के माध्यम से अपना संघर्ष व्यक्त करती है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"मैं अदृश्य परकोटों - बुर्जोंवाला इस महानगर से
बाहर जाना चाहती हूँ

इस मीनाबाज़ार में मेरा दम घुट रहा है

इस नंदन कानन के लिए
राज पुरुषों- श्रेष्ठियों-अभिव्यजनों के आमोद-प्रमोद केलिए,

मैं अनुपयोगी हो चुकी हूँ"[6]

इसमें प्रयुक्त बिंब स्त्री की संवेदना की कहानी है। स्त्री, अदृश्य परकोटो-बुर्जोवाला महानगर से, इस मीनाबाज़ार से, मदनोत्सवों से मुक्ति मिलने के लिए कोशिश करती है। स्त्री अपनी दुरवस्था से मुक्ति के लिए संघर्ष करती है।

अनामिका की कविता 'जुएँ' में इस तरह लिखती है-

"लड़की ने कुछ जवाब देने की
ज़रूरत नहीं समझी
और झट से दौड़कर
बैठ गयी उधर
जहाँ जुएँ चुन रही थीं सखियाँ
एक-दूसरे की छितराए हुए केशों से
नारियल-तेल चपचपाकर।"[7]

इसमें 'जुएँ चुनने' के माध्यम से स्त्री, सदियों से होते आये अपने बंधनों को एक-एक करके तोड़ने की बात करती है। विपरीत परिस्थिति होने के बावजूद भी अपने आप को स्वतंत्र बनाने के लिए स्त्री कोशिश करती रहती है।

'क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए' शीर्षक कविता में निर्मला पुतुल कहती हैं-

"क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए
एक तकिया
कि कहीं से थका-माँदा आया
और सिर टिका दिया

कोई गेंद
कि जब तक
जैसे चाहा उछाल दी।"[8]

यहाँ पुरुषसत्ता के विरुद्ध स्त्री स्वत्व की तलाश है। घर के साधारण बिंबों के माध्यम से कवयित्री वैशिष्ट्य की तलाश करती हैं। तकिया, गेंद, डायरी, और खूँटी ऐसे साधारण प्रतीकों का प्रयोग करके कवयित्री, स्त्री की पहचान बनाती हैं।

कात्यायनी ने अपनी कविता 'रात के संतरी की कविता' में आदि से अंत तक स्त्री संवेदना को मूर्त करने के लिए अनेक बिंबों का उपयोग किया है।

"बम्बई के एक रेस्त्राँ में
नीली-गुलाबी रोशनी में थिरकती स्त्री ने
अपनी आखिरी कपड़ा उतार दिया है
और किसी घर में
ऐसा करने से पहले
एक स्त्री
लगन से रसोईघर में
काम समेट रही है।
झोंकी जा रही है एक रेज़ा मज़दूरिन
ज़रुरी इस्तेमाल के बाद
और एक दूसरी स्त्री
चूल्हे में पत्ते झोंक रही है
बिलासपुर में कहीं।"[9]

असल में स्त्री रात का संतरी ही है। इसमें स्त्री जीवन से जुड़े महानगरीय बोध, सत्ता, राजनीति, दैहिक, सेक्स, परिवार और उसके श्रम को प्रस्तुत किया गया है।

‘इस स्त्री से डरो’ कविता में कवयित्री कात्यायनी ने स्त्री के उत्पीड़न एवं उसके प्रति अपने जागरूक और सचेत होने की भावना को प्रतीकों और बिंबों से प्रस्तुत किया है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

> “यह स्त्री
> सब कुछ जानती है
> पिंजरे के बारे में
> जाल के बारे में
> यंत्रणागृहों के बारे में”[10]

इसमें स्त्री न सिर्फ उत्पीड़न के बारे में जानती है यानी पिंजरे, जाल या यंत्रणागृहों के बारे में पूछा जाय तो वह नीले आकाश के विस्तार, समुद्र की गहराई, प्यार के गीतों के बारे में बात करने लगती है।

4.4. नये उपमान

उपमानों के माध्यम से छोटे विवरणों को बड़े परिदृश्य देते हैं। इसमें कुछ संकेतों के माध्यम से बातों की गहराई तक जाने की शक्ति है।

वन्दना मिश्रा की ‘किताबें’ शीर्षक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

> “किताबों की अलमारी से निकालने जाइए कोई किताब
> तो और किताबें बच्चों की सी जिद्द से
> फैलाने लगती हैं हाथ ‘हम भी, जरा-सा छू लो हमें भी
> जाने कब से बैठे हैं इस बन्द अलमारी में
> मुँह फुला कहती हैं, दिनों से पन्ने नहीं पलटे गए हमारे,

हवा-पानी धूप की ज़रूरत नहीं क्या हमें?"[11]

यहाँ 'किताब' के माध्यम से स्त्री अपना परिदृश्य प्रस्तुत करती है। बन्द अलमारी से बाहर निकलना चाहती है। अपने आप को छूने की ख्वाहिश रखती है।

'फर्नीचर' कविता में अनामिका स्त्री की संवेदना को फर्नीचर के द्वारा व्यक्त करती हैं-

"रात को जब सब सो जाते हैं-
अपने इन बरफाते पाँवों पर
आयोडिन मलती हुई सोचती हूँ मैं-
किसी जनम में मेरे प्रेमी रहे होंगे फर्नीचर"[12]

फर्नीचर ही स्त्री का प्रेमी है। अपनी हँसी, आँसु, गुस्सा सब आत्मसात करनेवाला फर्नीचर ही है।

कात्यायनी अपनी कविता 'हॉकी खेलती लड़कियाँ ' में हॉकी खेल के माध्यम से स्त्री की संपूर्ण स्वतंत्रता की बातें बताती हैं। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"सपने में
दौड़ती हुई
बॉल के पीछे
स्टिक को साधे हुए हाथों में
पृथ्वी के
छोर पर पहुँच जायेंगी

और/गोल-गोल चिल्लाती हुई

एक दूसरे को चूमती हुई''[13]

'सेफ्टीपिन' कविता में अनामिका समस्त स्त्री जाति की तकलीफ़ को एक छोटी सी सेफ्टीपिन से प्रस्तुत करती हैं-

''तकलीफें उम्मीदें,

आस्थाएँ और बगावतें

इस बड़े सेफ्टीपिन में गुँथी हुई''[14]

सेफ्टीपिन छोटी ही है लेकिन उसमें स्त्री की बगावत का स्वर भरा हुआ है।

कवयित्री सुधा उपाध्याय अपनी कविता 'क्यों करती हो वाद-विवाद' में पुरुष तंत्र के उपमानों को नकारती हैं। कहती हैं-

''पुरुषतंत्र के सारे सौंदर्य उपमान

सौंदर्य प्रसाधन, सौंदर्य सूचक संबोधन

जबकि वे क्षण करते हैं

तुम्हारे स्त्रीत्व को''[15]

इसमें पितृसत्तात्मक समाज के उपमानों को तोड़ने का आह्वान है। क्योंकि उस व्यवस्था में स्त्री की कोई जगह नहीं है, स्त्रीत्व नहीं है।

4.5. विद्रोह की भाषा

स्त्री अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए विद्रोह करने लगी है। ऐसी विद्रोही भाषा में शब्द काफ़ी तीखे होते हैं।

प्रज्ञा रावत अपनी कविता 'बीजमंत्र' में ऐसे विद्रोही स्वर से कहती हैं-

"जितना सताओगे
उतना उठूँगी
जितना दबाओगे
उतना उगूँगी
जितना बांधोगे
उतना बहूँगी"[16]

प्रस्तुत पंक्तियाँ स्त्री के मन की जिजीविषा है। स्त्री आज पहचान गयी है कि अब मुखरता अनिवार्य हो गयी है।

'स्नान' शीर्षक कविता में अनामिका स्नान करके स्त्री की चमड़ी को उतारने की बात कहती हैं-

"आओ, सब भूलकर नहाओ,
धुल जाएगी सारी मिट्‌टी।
फिर जो बचेगा-
उसको-
न घर की ज़रूरत होगी,
न ही चमड़ी की।"[17]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था की चमड़ी को उतारकर, अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए स्त्री विद्रोह करती रहती है।

4.6. मुक्ति की भाषा

स्त्री अपने आप को मुक्त करना चाहती है। 'मानवी' के रूप में जीने के लिए वह संघर्ष करती रहती है।

सविता सिंह की 'मैं किसकी औरत हूँ' शीर्षक कविता में स्त्री अपनी मुक्ति को पहचान लिया है और कहती है-

> "मैं किसी की औरत नहीं हूँ
> मैं अपनी औरत हूँ
> अपना खाती हूँ
> जब जी चाहती है तब खाती हूँ।"[18]

कीर्ति केसर की कविता 'सरगोशियाँ-१' में मुक्ति का आह्वान है-

> "बदलो तुम भी
> बाहर निकलो
> केंचुल से
> चलते हुए वक्त का
> साथ निभाने के लिए!"[19]

इस कविता में स्त्री पितृमेधात्मक केंचुल से बाहर निकलकर अपनी मुक्ति की ओर अग्रसर होती है।

4.7. देह की भाषा

आज की स्त्री अपनी देह की परिधि के बाहर आना चाहती है। मात्र देह की पहचान नहीं बल्कि अपने संपूर्ण अस्तित्व की माँग करके वह संघर्ष करती है।

कात्यायनी की 'देह न होना' कविता में स्त्री देह होने से इनकार करती है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"देह नहीं होती
एक दिन स्त्री
और
उलट-पुलट जाती है
सारी दुनिया
अचानक"[20]

जिस दिन स्त्री, पुरुष प्रधान समाज के लिए देह नहीं होती, उसी दिन दुनिया उलट-पुलट जाती है।

'जैसे एक स्त्री जानती है' शीर्षक कविता में सविता सिंह स्त्री देह की मुक्ति की ओर इशारा करती हैं-

"कौन जान सकता है लेकिन
जैसे एक स्त्री जानती है देह को
कि मुक्ति कर सकती है वही
देह को देह से"[21]

आज की स्त्री अपनी देह के माध्यम से ही देह से ऊपर उठती है।

समकालीन स्त्री कवयित्रियों में इसके अलावा निर्मला पुतुल, सुनीता जैन, निर्मला ठाकुर, सविता भार्गव, रेखा, रजनी तिलक आदि अनेकों की कविताओं में स्त्री के विद्रोह, मुक्ति और देह की भाषा गुंजित हैं।

4.8. आत्मकथन शैली

स्त्री कविताओं में आत्मानुभव अधिक है। क्योंकि कविता में स्त्री अपने आप को उतारती है। अपनी अनुभूति, अनुभव को व्यक्त करती है। इसलिए 'मैं', 'मेरी' संबोध्य अधिक है। अनामिका की कविता 'दरवाज़ा की पंक्तियाँ हैं-

"मैं एक दरवाज़ा थी
मुझे जितना पीटा गया
मैं उतना खुलती गयी।"[22]

सविता सिंह की 'मैं किसकी औरत हूँ' कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"मैं अपनी औरत हूँ
मैं किसी की मार नहीं सहती
और मेरा परमेश्वर कोई नहीं"[23]

वन्दना मिश्रा की ज़रुरी नहीं लगा' कविता की पंक्तियाँ हैं-

"जरुरी नहीं लगा कि मैं सौंगध ईश्वर की लूँ
अपने-तुम्हारे बीच इसलिए तो मैंने लिखा एक पत्र"[24]

सुधा उपाध्याय की कविता 'मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ' की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"मुझे छू-छूकर दिलाते है विश्वास
कि मैं हूँ/मैं हूँ/ मैं हूँ
बस कभी हल्की नहीं होने पाती मैं"[25]

4.9. प्रश्नातुर शैली

स्त्री कविता में प्रश्नातुरता एक महत्वपूर्ण बात ही है। अपने स्वत्व को पेश करने के लिए स्त्री प्रश्न करती रहती है।

निर्मला पुतुल की 'क्या तुम जानते हो' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"बता सकते हो तुम
एक स्त्री को स्त्री-दृष्टि से देखते
उसके स्त्रीत्व की परिभाषा?"[26]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था से स्त्री अपने स्वत्व की परिभाषा पूछती रहती है।

'बेजगह' कविता में अनामिका पूछती हैं-

"जगह? जगह क्या होता है?
जिनका कोई घर नहीं होता-
उनकी होती है भला कौन-सी जगह?"[27]

स्त्री के लिए घर, परिवार में कोई जगह नहीं है। इसलिए इन प्रश्नों को पूछकर वे अपने लिए जगह माँगती रहती हैं।

4.10. व्यंग्य शैली

स्त्री की पहचान, उसका विद्रोह, मुक्ति की चाहतें, आज़ादी की पुकार आदि को अभिव्यक्त करने के लिए व्यंग्य शैली का इस्तेमाल किया जाता है। पितृमेधा समाज के सही चेहरे को उतारने के लिए कवयित्रियाँ व्यंग्यपरक भाषा का प्रयोग करती हैं। इसके लिए पुराने प्रतीकों का इस्तेमाल किया जाता है।

अनामिका की 'खंडिता' शीर्षक कविता में ऐसी व्यंग्य शैली का प्रयोग है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

> " 'या देवी सर्वभूतेषु'.... सविता, देखो बेटी, जल तो
> नहीं रही सब्जी?
> 'निद्रारूपेण संस्थिता'..... जागा पिंटू, उसे जगाओ,
> स्कूल-बस छूटेगी
> 'नमस्तस्यै नमस्तस्यै'..... फोन बज रहा है, उटाओ तो!"[28]

स्त्री प्रार्थना में भी स्वतंत्र नहीं है। घर, परिवार, समाज के जाल में वह हमेशा जकडती रहती है।

'आखिर बीवी हूँ तुम्हारी' कविता में 'सविता भार्गव' बार-बार माँफी मांगकर इस व्यवस्था के प्रति विद्रोह व्यंग्य रूप से करती है। कविता की पंक्तियाँ हैं-

> "माफ़ कर दो मुझे
> थके-हारे दफ़्तर से लौटे तुम
> और मैं नहीं थी चाय-नाश्ते के साथ मुस्कुराती हुई

नहीं पहुँच पाई घर तुम्हारे पहुँचने से पहले

मुझे माफ़ कर दो।"[29]

स्त्री आज सबकुछ भूलकर अपने लिए जीना चाहती है। उसकी यह भूल, माँफी सब अपने प्रतिरोध का सूचक है।

4.11. गद्य शैली

समकालीन स्त्री कवयित्रियों में कात्यायनी, अनामिका, शीला सिद्धांतकर आदि कवयित्रियों ने लंबी गद्य शैली में भी कविताएँ लिखी हैं। इसमें अनेक शक्तिशाली पदों का मिश्रण है। जिसमें स्त्री अस्मिता की संवेदना दिखाई पड़ती है।

कात्यायनी की एक 'असमाप्त कविता की अति प्राचीन पाण्डुलिपि', असल में लंम्बी गद्य कविता ही है। इसमें स्त्री के चरित्र को विविध बिम्बों में बताया गया है। कात्यायनी की 'एक भूतपूर्व नगरवधु की दुर्गपति से प्रार्थना', एक गौरतलब सिचुएशन, तुलसी का झोला आदि भी इसके अंतर्गत आनेवाली कविताएँ हैं।

4.12. लोक-जीवन

निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी सांस्कृतिक जीवन के रंग नज़र आते हैं। कवयित्री की 'पहाड़ी पुरुष' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं-

"वह पहाड़ी भाषा में बोलता पहाड़ से
बतियाता है अपना सुख-दुख
गाता है पहाड़ पर बैठ पहाड़ों के गीत
पहाड़ू लिपि में, पहाड़ पर लिखता है
'प' से पहाड़"[30]

इसमें संथालीय सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति है। इसमें पहाड़ और आदिवासी के बीच के रिश्ते का वर्णन है।

4.13. अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग

स्त्री कवयित्रियों की कविताओं में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग मिलता है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए अनेक अंग्रेज़ी शब्दों का सहारा लिया है। फर्नीचर, दैट इज़ए कवैश्चन, ब्लाउज, हॉकी, सॉरी, कैटवॉक, प्रॉम्प्टर, सिचुएशन, सेफ्टीपिन आदि कई शब्दों का प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

स्त्री आज यथार्थ को अपनी तरह अभिव्यक्त करना चाहती है। उसकी अलग शैली भी है। अपने-आप में आक्रामक, विद्रोही, व्यंग्य, क्लिष्ट भाषा शैली अपनाकर स्त्री लिखती रहती है।

संदर्भ-सूची

1. उद्धृतः डॉ. इबतवार दशरथ तुकाराम- नरेन्द्र कोहली के पौराणिक उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, समता प्रकाशन, प्र.सं. 2009, पृ.36
2. डॉ. करुणा उमरे- हिन्दी कविता : भाषा और शिल्प विविध प्रतिमान, अमन प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.32
3. मंजु रुस्तगी- अनामिका का काव्य : आधुनिक स्त्री-विमर्श, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2015, पृ. 197
4. प्रभा खेतान- उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2003 पृ.107
5. अनामिका- स्त्री- विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.146
6. कात्यायनी- इस पौरुषपूर्ण समय में, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 1999, पृ.63
7. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ. 49-50
8. निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा सं. 2005, पृ.28-29
9. कात्यायनी- इस पौरुषपूर्ण समय में, वाणी प्रकाशन, प्र.सं. 1999, पृ.63
10. कात्यायनी- सात भाइयों के बीच चंपा, परिकल्पना प्रकाशन, तीसरा सं. 2008, पृ.13
11. वन्दना मिश्रा- कुछ सुनती ही नहीं लड़की, शिल्पायन प्रकाशन, प्र.सं. 2010, पृ. 63
12. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.19
13. कात्यायनी- सात भाइयों के बीच चंपा, परिकल्पना प्रकाशन, तीसरा सं. 2008, पृ.22

14. अनामिका- दूब-धान, भारतीय ज्ञानपीठ, दू.सं. 2008, पृ.57

15. सुधा उपाध्याय- इसलिए कहूँगी मैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2013, पृ.29

16. प्रज्ञा रावत- जो नदी होती, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं.2012, पृ.28

17. अनामिका- दूब-धान, भारतीय ज्ञानपीठ, दू.सं. 2008, पृ.52

18. सविता सिंह- अपने जैसा जीवन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2001, पृ.40

19. कीर्ति केसर- मुझे आवाज़ देना, अभिव्यंजना प्रकाशन, प्र.सं. 2002, पृ.32

20. कात्यायनी- सात भाइयों के बीच चंपा, परिकल्पना प्रकाशन, तीसरा सं. 2008, पृ.16

21. सविता सिंह- नींद थी और रात थी, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.52

22. अनामिका- अनुष्टुप, किताबघर प्रकाशन, प्र.सं. 1998, पृ. 46

23. सविता सिंह- अपने जैसा जीवन, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2001, पृ.40

24. वन्दना मिश्रा- कुछ सुनती ही नहीं लड़की, शिल्पायन प्रकाशन, प्र.सं. 2010, पृ. 27

25. सुधा उपाध्याय- इसलिए कहूँगी मैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2013, पृ.22

26. निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा सं. 2005, पृ.8

27. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं. 2005, पृ.15-16

28. अनामिका- दूब-धान, भारतीय ज्ञानपीठ, दू.सं. 2008, पृ.50

29. सविता भार्गव- किसका है आसमान, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. 2012, पृ.21

30. निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा सं. 2005, पृ.38

उपसंहार

आज विमर्शों का दौर है। भूमण्डलीकरण और नवउपनिवेशवाद के मकड़ीजाल मे फँसी इक्कीसवीं सदी में अनेक प्रतिरोधी नये-नये साहित्यिक विमर्श उभरते आये हैं, इनमें स्त्री-विमर्श काफ़ी प्रभावशाली एवं बहुचर्चित है। उपभोक्तावादी दुनिया में सब कहीं भोगने की रीति अधिक है। स्त्री, पारिस्थितिकी, दलित आदि को मुनाफ़े के लिए शोषित किया जा रहा है। इसमें सबसे त्रासद एवं पीड़ित वर्ग है स्त्री-समाज। एक ओर सदियों से पितृसत्ता के जंजीरों से वह जकड़ी गयी थी और दूसरी ओर नयी बाज़ारवादी मोह दृष्टि उसे शोषित करती रहती है। उसकी पहचान मात्र दैहिक केंचुल के अंदर रखा गयी है और उससे बाहर आने की स्वतंत्रता उसे कभी नहीं दी गयी है। उपभोग संस्कृति में उसके स्वत्व मात्र वस्तु के रूप में बन गया है। जिस तरह मॉल से हम सबकुछ खरीद सकते हैं उसी तरह स्त्री को भी बेचने की एवं खरीदने की वस्तु बना दी है। विज्ञापन रूपी जादुई टोकरी में स्त्री को पूरी तरह से मात्र उसकी देह में तब्दील करके उसका शोषण किया जा रहा है। लेकिन बदलते माहौल में स्त्रियाँ आज परदे से बाहर निकलने लगी हैं। उसे पता चला है कि पितृसत्ता और नई बाज़ारवादी संस्कृति ने उसे किस तरह कैद कर रखा है और अपनी अस्मिता को सदियों से बाँधकर रखी गयी है। इसलिए आज इन सबको तोड़कर आगे बढ़ने की ताकत स्त्री दिखाती है।

स्त्री स्वयं एक जीवित कविता है। आज तक मात्र पीड़ा से गाती इस कविता को स्त्री अब विद्रोह की चिनगारियों में बदलने लगी है यानी स्त्री-विमर्श ने उसे एक नई दिशा दिखा दी है। स्त्री अपने बारे में सोचने लगी है। अपनी पहचान, अस्मिता बोध ने ही उसे विमर्श की रणभूमि की ओर अग्रसर कर दिया है। स्त्री-विमर्श ने उसके मन में एक नई जागृति पैदा की, इससे आज स्त्री पितृसत्तात्मक

सिद्धांतों की बेड़ियों को चुनौती देने लगी है। स्त्री-विमर्श कभी भी पुरुष के विरुद्ध किया गया अभियान नहीं है बल्कि स्त्री को मानवी रूप में जीने का अभियान ही है।

वेदकाल से लेकर आधुनिक काल तक पहुँचते स्त्री की स्थिति में गिरावट आने लगी। वेदकाल में स्त्री को संपूर्ण स्वतंत्रता थी। शिक्षा-दीक्षा, समाज में अधिकार सब प्राप्त थी। लेकिन धीरे-धीरे मातृसत्तात्मक समाज से पितृसत्तात्मक समाज की अवधारणा ने स्त्री की स्वतंत्रता पर पाबंदी लगा दी। उत्तर-वैदिक काल, रामायण-महाभारत काल, मध्यकाल तक आते-आते स्त्री को मात्र भोग्या के रूप में देखने की प्रथा ऊँचाईयों में पहुँची थी। लेकिन आधुनिक काल में सामाजिक परिस्थितियाँ बदलने लगी हैं। अंग्रेज़ों का आगमन, औद्योगिक क्रांति और पाश्चात्य शिक्षा के कारण स्त्री में भी स्वतंत्रता-बोध जागने लगा। घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करने लगी। इसमें समाज सुधारकों की भूमिका प्रशंसनीय रही है। पाश्चात्य जगत एवं भारतीय समाज में अनेकों स्त्री मुक्ति आन्दोलन प्रारंभ हुए हैं। मतदान की प्राप्ति, वेतन एवं समान अधिकार के लिए स्त्रियाँ लड़ाई लड़ने लगीं। इसमें मेरी वोलस्टॉन क्रॉफ्ट, केट मिल्लेट के 'सेक्शुकल पोलिटिक्स', सीमोन द बोउवार के 'द सेकेण्ड सेक्स' आदि ने स्त्री को अपने अस्तित्व को पहचानने का अवसर प्रदान किया है। स्त्री स्वतंत्रता में नाऊ (Now) जैसी स्त्री-संगठनों की भी भूमिका महत्वपूर्ण है। 1975 में महिला दशक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाये जाने के बाद संपूर्ण विश्व की स्त्री जाति में एक नई चेतना की अग्नि जागृत हुई। बाद में चिंतकों ने स्त्रीवाद को अनेक रूपों में विभाजित कर दिए थे। फिर भी उन सबके मूल में स्त्री अस्मिता और स्त्री स्वतंत्रता ही रही है।

साहित्य में स्त्री-विमर्श आज ज़ोरों पर है। साहित्य की सभी विधाओं में इसकी झलक पायी जाती है। आदिकाल से लेकर समकालीन तक की हिन्दी कविताओं में स्त्री चेतना किसी न किसी रूप में विद्यमान है। प्रारंभिक काल के साहित्य में स्त्री मात्र आलम्बन रूप में आयी है। भक्तिकाल में अकेले मीराबाई को छोड़कर सभी कवियों ने स्त्री को निन्दा का पात्र माना है। एक स्त्री होने के नाते मीरा ने अपने अनुभूत सत्य एवं रूढ़ियों के प्रति आवाज़ उठायी थी। बाद में रीतिकालीन काव्य में स्त्री के श्रृंगारिक रूप की अभिव्यक्त ज़्यादात्तर हुई है। आधुनिक काल तक आते-आते स्त्री चिंतन की दिशाएँ बदलने लगी। प्रथम बार स्त्री मुक्ति और उसकी अस्मिता को काव्य का विषय बना दिया। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता में स्त्री के अनेक रूपों का वर्णन मिलता है फिर भी उसकी अस्मिता को बनाये रखने के लिए ज़रूर आवाज़ उठायी गयी थी।

समकालीन कवियों ने स्त्री के वास्तविक अधिकार, उसकी आज़ादी के लिए प्रचुर मात्रा में कविताएँ लिखीं। साथ ही स्त्री शोषण के प्रति विद्रोह और प्रतिरोध का स्वर प्रखर रूप से मुखरित होने लगा। रघुवीर सहाय की 'नारी', देवताले की 'औरत का हंसना', अरुण कमल की 'एक नवजात बच्ची को प्यार', राजेश जोशी की 'एक आदिवासी लड़की की इच्छा', आलोक धन्वा की 'भागी हुई लड़कियाँ', लीलाधर जगूड़ी की 'वह शतरूपा' आदि कई ऐसी कविताएँ हैं जिनमें स्त्री का संघर्ष एवं उसकी स्थिति का चित्रण किया गया है।

आज की आत्मनिर्भर स्त्री अपने बारे में सोचने लगी है, अपने बारे में लिखने लगी है। 'स्व' अनुभूति को निडर होकर प्रस्तुत भी करने लगी है। स्त्री के द्वारा भोगा हुआ यथार्थ भला और कौन अभिव्यक्त करेगा। भोगे हुआ यथार्थ शक्तिशाली

होता हैं। इसलिए स्त्री दृष्टि अनन्य होती है। यह अनन्यता उसकी रचनाधर्मिता को अधिक सौन्दर्य और चेतना प्रदान करती है। समकालीन कवयित्रियाँ भी अपनी कविताओं में खुद को उतारती हैं। उसके वैयक्तिक, पितृसत्तात्मक, पारिवारिक, सामाजिक, शारीरिक, सांस्कृतिक पहलुओं के आधार पर स्त्री अपनी पहचान व्यक्त करना चाहती है।

स्त्री-विमर्श की पहली शर्त है- व्यक्ति के रूप में स्त्री की पहचान यानी 'स्त्री अस्मिता'। अपनी अस्मिता की त्रासमयी अवनति के बारे में आज की स्त्री जान गयी है। इसलिए वह विद्रोह करने लगी है। अपनी स्वतंत्रता एवं अधिकार की तलाश करके स्त्री पितृसत्तात्मक व्यवस्था से प्रश्न पूछती रहती है। अनामिका की 'स्त्रियाँ', 'फर्नीचर,' 'चीख', 'भिन्न', 'अनुवाद', 'चिट्ठी लिखती हुई औरत' और कात्यायनी की 'इस पौरुषपूर्ण समय में', 'वह रचती है जीवन और....', 'स्त्री का सोचना एकांत में', 'इस स्त्री से डरो', सविता सिंह की 'एक अंधेरा है जो सालती है', 'कुसुम का सत्याग्रह', सुधा उपाध्याय की संवादहीनता, सुनीता जैन की 'मरना उसका युक्ति से', वन्दना मिश्रा की 'मेरी एक मित्र थी', आदि कई कविताओं में ऐसा प्रश्न-स्वर पाया जाता है। स्त्री की श्रेष्ठ वैयक्तिक अनुभूतियों का चित्रण सुशीला टाकभौरे की 'युग चेतना', अनामिका की प्रथम स्राव, 'मरने की फुर्सत' में चित्रित किया गया है।

आज की आत्मनिर्भर स्त्री ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध लड़ाई शुरु की है। अपनी स्त्री छवि को पहचानकर हौसला एवं कार्यक्षमता के साथ वह आगे बढ़ रही है। कात्यायनी की 'गार्गी', 'हॉकी खेलती लड़कियाँ', प्रज्ञा रावत की 'एक

कोमल लड़की', निर्मला पुतुल की 'मेरा सबकुछ अप्रिय है उनकी नज़र में', सविता सिंह की 'मनोकामनाओं जैसी स्त्रियाँ', अनामिका की 'गृहलक्ष्मी-२', शीला सिद्धांतकर की 'लड़ाई ज़ारी रहेगी', सुशीला टाकभौरे की 'आज की ख़ुद्दार औरत' आदि कविताओं में संघर्ष का स्वर है।

पारिवारिक एवं सामाजिक बंधनों के प्रति विद्रोह करती स्त्री आज अपने 'स्व' की तलाश में है। प्रज्ञा रावत की 'आज बहुत मज़ा आया', निर्मला पुतुल की 'अपने घर की तलाश में', अनामिका की 'डाक-टिकट' सविता सिंह की 'हिसाब करती औरत', निर्मला ठाकुर की 'जो करना था', 'अकसर', कात्यायनी की 'औरत और घर', 'सात भाइयों के बीच चंपा', गगन गिल की 'चौबीस पार करती लड़की', सुनीता जौन की 'यह पीड़ा का रिश्ता है'; कीर्ति केसर की 'सरगोशियाँ -१' आदि कविताओं में पारिवारिक एवं सामाजिक दायरे को लांघने की तीव्र इच्छाशक्ति भरी हुई है।

समकालीन स्त्री कविताओं में देह मुक्ति एवं परंपरागत और बाज़ारवादी दुनिया में संघर्षशील स्त्री का रूप उभरकर आया है। आज की स्त्री अपने देह के माध्यम से देह के ऊपर उठना चाहती है। इसलिए वह अपनी देह के बारे में अपने अनुभव व्यक्त करने लगी है। कात्यायनी की 'देह न होना', सविता भार्गव की 'आख़िर बीवी हूँ तुम्हारी', सविता सिंह की 'मुझे वह स्त्री पसंद है', आशा प्रभात की 'देह और ख़्याल', कीर्ति केसर की 'संरचना' आदि कविताओं में देह मुक्ति की अभिव्यक्ति मिलती है। परंपरागत बंधन एवं बाज़ारवादी संस्कृति में स्त्री-विद्रोह का नया स्वर मुखरित है। इसमें कात्यायनी की 'रात के संतरी की कविता', सुधा

उपाध्याय की ‘बंधन’, अनामिका की ‘आदिप्रश्न’, सुनीता जैन की ‘प्रतिध्वनि’, निर्मला पुतुल की ‘अख़बार बेचती लड़की’, सविता सिंह की ‘नया नाच’ आदि उल्लेखनीय हैं।

स्त्री कविता, स्त्री मन की गहराइयों से फूटकर आती है। उसमें प्यार, ममता, के साथ-साथ क्रोध, विद्रोह और आत्मसंघर्ष भी देखने को मिलते हैं। इन कविताओं के माध्यम से स्त्री अपनी मुक्ति चाहती है। अपने ‘मानवी रूप’ की स्थापना करना चाहती है।

स्त्री आज अपने लेखन के लिए अपनी भाषा-शैली ढूँढती है। क्योंकि वह समझ गयी है कि अपना अनुभव एवं अनुभूति प्रकट करने के लिए पुरुषवर्चस्वी भाषा काफ़ी नहीं है और अपयोगी भी नहीं है। इसलिए स्त्री आज नये बिंब, नयी भाषा, नये उपमान और नयी शैली अपनाती है।

स्त्री और पुरुष, सृष्टि के दो आधार तत्व हैं। दोनों के समन्वय से ही सृष्टि की रचना होती है। लेकिन पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने हर क्षेत्र में स्त्री को गुलाम की तरह बेड़ियों से कैद कर रखी है। उसे व्यक्ति न मानकर भोग की वस्तु मानी जाती है। ऐसी त्रासद स्थिति का विरोध ही स्त्री मुक्ति आन्दोलन और स्त्री विमर्श की बुनियाद है।

स्त्री वास्तव में साक्षात् शक्ति है। उसका सौंदर्य, धैर्य, बल, और आत्मविश्वास अपार है। समाज के स्वस्थ और संतुलित विकास के लिए स्त्री की सख़्त ज़रूरत है। सबको समेटने एवं संभालने की कला केवल एक स्त्री ही जानती है। उसकी ख़ूबसूरती उसके मानव होने में है।

संपूर्ण अध्ययन के बाद बदलती स्त्री अस्मिता संबंधी निम्नलिखित बातें हमारे सामने उजागर होकर आ रही हैं-

- पुरुषमेधात्मक व्यवस्था ही स्त्री की निम्न स्थिति का कारण है।
- स्त्री को वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और शारीरिक रुप में बांधकर रखी गयी है।
- स्त्री-विमर्श ने स्त्री को अपनी पहचान बनाने की राह दिखा दी है। अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए आज की स्त्री विद्रोह करने लगी है।
- स्त्री कविता में स्त्री अपनी अनुभूति व अनुभव को यथार्थ रुप में प्रस्तुत करती है।
- भूमंडलीकृत दुनिया में स्त्री पितृसत्तात्मक एवं बाज़ारीकृत चाल को समझकर अपनी अस्मिता के लिए लड़ाई लड़ने लगी है।
- स्त्री मात्र अपनी देह की पहचान से बाहर निकलने की कोशिश में है।
- स्त्री अपने 'मानवी रुप' स्थापित करने के लिए संघर्ष करती रहती है।

समकालीन स्त्री कवयित्रियों ने कविता को अपना हथियार मानते हुए अभिव्यक्ति के माध्यम से स्त्री संवेदनाओं को उद्‌घाटित किया है। उनकी कविताएँ मुक्ति की आकांक्षा, रुढ़िबद्ध मान्यताओं के प्रति विद्रोह का उद्‌गार है, जिसमें दैहिक-मानसिक शोषण के प्रति विद्रोह मुखरित है। ये सारी कविताएँ स्त्री-विमर्श का सशक्त दस्तावेज़ ही हैं। निजी अनुभवों में स्वयं डूबकर स्त्री लिखती रहती है। वह बस मात्र यह कहती है 'मैं मात्र देह नहीं, मानवी रुप में जीना चाहती हूँ'। कुल मिलाकर देखें तो समकालीन कवयित्रियों की कविताएँ स्त्रियों की अलग संवेदनाओं की पहचान कराती हैं। ये कविताएँ उनके अपने अनुभव है और अनुभूति है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रंथ-सूची

कविता संग्रह

1. अनामिका : बीजाक्षर
भूमिका प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1993
: अनुष्टुप
किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1998
: खुरदुरी हथेलियाँ
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.2005
: दूबधान
भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, दूसरा सं.2008

2. कात्यायनी : सात भाइयों के बीच चंपा
परिकल्पना प्रकाशन,
लखनऊ, तीसरा सं. 2008
: इस पौरुषपूर्ण समय में
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1999
: जादू नहीं कविता
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.2002

3. कीर्ति केसर : मुझे आवाज़ देना
अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2002

4. निर्मला ठाकुर : हँसती हुई लड़की,
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.2014

5. निर्मला पुतुल : नगाड़े की तरह बजते शब्द
भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, दू.सं.2005
: बेघर सपने
आधार प्रकाशन, हरियाणा, प्र.सं. 2014

6. नीलेश रघुवंशी : अंतिम पंक्ति में
किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2008

7. प्रज्ञा रावत : जो नदी होती
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2012

8. रजनी तिलक : पदचाप
निधि बुक्स, पटना, प्र.सं. 2008

9. रेखा : अपने हिस्से की धूप
साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली,
प्र.सं. 1990

10. वन्दना मिश्रा : कुछ सुनती ही नहीं लड़की
शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2010

11. शीला सिद्धांतकर : परचम बनें महिलाएँ(चुनी हुई 152 कविताएँ)
निधि बुक्स, पटना, प्र.सं. 2009

12. सविता भार्गव : किसका है आसमान
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2012

13. सविता सिंह : अपने जैसा जीवन
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2001
: नींद थी और रात थी
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2005

14. सुधा उपाध्याय : इसलिए कहूँगी मैं
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2013

15. सुनीता जैन : इस अकेले तार पर
किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1995

16. सुशीला टाकभौरे : यह तुम भी जानो
स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा सं. 2013

सहायक ग्रंथ

1.	अर्जुण चव्हाण	: विमर्श के विविध आयाम वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, प्र.सं.2008
2.	अनामिका	: स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, प्र.सं 2012
3.	अभय कुमार दुबे	: समाज-विज्ञान विश्वकोश राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2013
4.	डॉ. अमर ज्योति	: महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1999
5.	अरविन्द जैन	: औरत : अस्तित्व और अस्मिता राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पहली आवृत्ति- 2013
6.	अरविंदाक्षन. ए	: समकालीन हिन्दी कविता राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1998
7.	आशा रानी व्होरा	: औरत : कल, आज और कल कल्याणी शिक्षा परिषद, दिल्ली, प्र.सं.2005
8.	डॉ. इबतवार दशरथ तुकाराम	: नरेन्द्र कोहली के पौराणिक उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन समता प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009
9.	डॉ. उमा शुक्ल	: भारतीय नारी : अस्मिता की पहचान लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1994
10.	डॉ. अंजनी कुमार दुबे 'भावुक'	: समकालीन कविता के विविध आयाम पूर्वांचल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1998

11. अंसारी एम.ए : महिला और मानवाधिकार
ज्योति प्रकाशन, जयपुर, ती.सं. 2007

12. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा : स्त्री मुक्ति का सपना
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2004

13. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय : आधुनिक कविता का पुनर्पाठ
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली,
पहली आवृत्ति-2013

14. डॉ. करुणा उमरे : स्त्री विमर्श: साहित्यिक और व्यावहारिक संदर्भ, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009
: हिन्दी कविता : भाषा और शिल्प विविध प्रतिमान,
अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2012

15. डॉ. करुणा शर्मा : कमलेश्वर के कथा साहित्य में स्त्री-विमर्श
नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2011

16. कल्याण चन्द्र : समकालीन कवि और काव्य
चिंतन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1996

17. डॉ. किरणबाला जाजू मुंदडा : 21 वीं सदी की स्त्री अस्तित्व से अस्मिता तक,
इण्टरनेशनल पब्लिकेशन, कानपुर,
प्र.सं. 2014

18. कात्यायनी : दुर्ग द्वार पर दस्तक
परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, प्र.सं. 1997

19. डॉ. कामिनी तिवारी : प्रभा खेतान के साहित्य में नारी-विमर्श
विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2011

20. डॉ. कृष्णा पोतदार : अंतिम दशक के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में स्त्री-विमर्श
विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2011

21. डॉ. कुंवरपाल सिंह : भक्ति आन्दोलन : इतिहास और संस्कृति
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, दू.सं. 2004

22. खगेन्द्र ठाकुर : कविता का वर्तमान
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1992

23. डॉ. गोपाल शर्मा, कविता वाचकनवी : स्त्री सशक्तिकरण के विविध आयाम
गीता प्रकाशन, हैदराबाद, प्र.सं. 2004

24. गोविन्द प्रसाद : कविता का पार्श्व
शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2013

25. डॉ. चन्द्रशेखर त्रिपाठी : स्त्री विमर्श साहित्य और समाज की संरचना में, ग्रंथलोक, दिल्ली, प्र.सं. 2013

26. चन्द्र सिंह 'चेतन' : क्या अपराध है औरत होना
ग्रन्थ विकास, जयपुर, प्र.सं. 2009

27. छायादेवी घोरपडे : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में परिवर्तित नारी जीवन-मूल्य
विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2008

28. जगदीश्वर चतुर्वेदी : स्त्रीवादी साहित्य विमर्श
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स लिमिटेड, दिल्ली, प्र.सं. 2011

: साहित्य का इतिहास दर्शन
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स लिमिटेड, दिल्ली, प्र.सं. 2013

29. डॉ. एन. जयश्री : उपन्यासकार कृष्णा सोबती एवं नारी अस्मिता
रोली प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2012

30. डॉ. ठाकुर विजय सिंह : निर्मल वर्मा के साहित्य में नारी
समता प्रकाशन,
कानपुर, प्र.सं. 2007

31. तसलीमा नसरीन : औरत का कोई देश नहीं
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2009

32. दिनेशनन्दिनी डालमिया, संतोष गोयल : नारी एक सफर
ज्ञान भारती, दिल्ली, प्र.सं. 2010

33. दुष्यंत : स्त्रियाँ : पर्दे से प्रजातंत्र तक
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2012

34. डॉ. देवकीनन्दन शर्मा : आधुनिक काव्य विमर्श
अनंग प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं : 2010

35. डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास
मयूर पेपरबैक्स, दिल्ली,
अड़तीसवाँ पुनर्मुद्रण-2011

36. डॉ. नवीन नन्दवाना : समकालीन कविता विविध संदर्भ
अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2014

37. डॉ. प्रतिभा येरेकार : मोहन राकेश के नाटकों में नारी
विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009

38. प्रभा खेतान : उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2003

: बाज़ार के बीच : बाज़ार के खिलाफ (भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न)
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2004/2007

39. डॉ. प्रभा दीक्षित : स्त्री अस्मिता के सवाल
साहित्य निलय, कानपुर, प्र.सं. 2011

40. डॉ. प्रमोद कोव्वप्रत : समकालीन हिन्दी कविता का ताप-मान, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 2011

41. डॉ. फिलिप. वी. एन : मध्यकालीन हिन्दी भक्ति साहित्य की प्रासंगिकता
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 2000

42. बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, दू.सं. 1994

43. मंजु रुस्तगी : अनामिका का काव्य: आधुनिक स्त्री-विमर्श
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2015

44. मन्मथनाथ गुप्त : स्त्री-पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2005

45. मल्लिखार्जुनराव. के : हिन्दी और तेलुगु कविता की नारी परिकल्पना
संगम प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1983

46. महादेवी वर्मा : श्रृंखला की कड़ियाँ
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, ती.सं. 2001

47. डॉ. माधवी जाधव : इक्कीसवीं सदी का हिन्दी काव्य
विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2013
: स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य,
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2010

48. मिनिप्रिया. आर : दलित जीवन का अधिकार और निर्मला पुतुल की कविता
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 2006

49. डॉ. मुक्ता त्यागी : समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी-विमर्श
अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2012

50. डॉ. मृदुला वर्मा : प्रथम दशक के महिला लेखन में स्त्री विमर्श
विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2012

51. मृणाल पांडे : स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2011

: स्त्री लंबा सफर
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2012

52. मेरी वालस्टन क्राफ्ट (अनुवादक-मीनाक्षी) : स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2003

53. मैत्रेयी पुष्पा : खुली खिड़कियाँ
सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2005

54. डॉ. यशवंतकर संतोष कुमार लक्ष्मण, डॉ. शेख मुखत्यार : स्त्री विमर्श के विविध आयाम,
विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2013

55. डॉ. रघुनाथ गणपति देसाई : महिला आत्मकथा लेखन में नारी
ए.बी.एस. पब्लिकेशन, वाराणसी, प्र.सं. 2012

56. डॉ. रमा नवले : भाषा और साहित्य के विभिन्न आयाम
विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2011

57. राजकिशोर : स्त्री-पुरुष कुछ पुनर्विचार,
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, तृ. सं. 2007

58. डॉ. राजकुमार : नारी-शोषण समस्याएँ एवं समाधान
अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
प्र.सं. 2003

59. डॉ. राजकुमार गडकर : नारी चिंतन : नयी चुनौतियाँ
अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2004

60. राजेन्द्र यादव : आदमी की निगाह में औरत
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2001

61. डॉ. रामकली सराफ : समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,
प्र.सं.1997

62. डॉ. रामचंद्र मुंजाजी भिसे : भारतीय समाज एवं महिला सशक्तिकरण

विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2013

63. डॉ. रामप्रसाद मिश्र : हिन्दी की कवयित्रियाँ
प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, प्र.सं. 1990

64. रेखा कस्तवार : स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2006

65. रोहिणी अग्रवाल : साहित्य की ज़मीन और स्त्री-मन के उच्छ्वास
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2014

66. रोहिताश्व : समकालीनता और शाश्वता
विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2006

67. वर्जीनिया वूल्फ़ (अनुवाद- मोज़ेज माइकल) : अपना एक कमरा
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2011

68. डॉ. वल्लभदास तिवारी : हिन्दी काव्य में नारी
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 1974

69. विनय विश्वास : आज की कविता
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2009

70. विश्वनाथप्रसाद तिवारी : समकालीन हिन्दी कविता
लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली,
पुनर्मुद्रित सं. 2014

71. वैशाली देशपांडे : स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार
विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2007

72. शम्भुनाथ : संस्कृति की उत्तरकथा
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 2000

73. शहनाज़ बानो : भक्ति काव्य में पितृसत्ता और स्त्री विमर्श
अनिरुद्ध बुक्स, दिल्ली, प्र.सं. 2010

74. डॉ. शिवकुमार शर्मा : हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ
अशोक प्रकाशन, दिल्ली, बीसवाँ सं. 2012

75. डॉ. शेख रब्बानी : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में समाज परिवर्तन, विद्या विहार, कानपुर, प्र.सं. 2007

76. डॉ. शोभा पवार : 21 वीं सदी की नई चुनौतियाँ (स्त्री विमर्श का प्रमुख परिप्रेक्ष् : उपन्यास एवं कहानी) जगत भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 2014

: हिन्दी कहानी और नारी विमर्श के अहम सवाल, अन्नपूर्ण प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2009

77. डॉ. षण्मुखन. एम. : अंधेरे में सितारे की तलाश जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 2004

78. सरला माहेश्वरी : नारी प्रश्न, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1998

79. डॉ. सुधा.बी : हिन्दी कथा साहित्य में रुढ़िमुक्ति स्त्री जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 2010

80. सुभाष सेतिया : स्त्री अस्मिता के प्रश्न, कल्याणी शिक्षा, परिषद्, दिल्ली, प्र. सं. 2006

81. डॉ. संगीता के : नारी चेतना की सार्थक तलाश जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 2013

82. संतोष टेलकीकर, डॉ. ज्योति मुंगल : इक्कीसवीं सदी की हिन्दी स्त्री कविता आशय और अभिव्यक्ति क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स कानपुर, प्र.सं. 2013

83. डॉ. हुकुमचंद राजपाल : समकालीन कविता चर्चित परिचित चेहरे, नालन्दा प्रकाशन, मुंबई, प्र.सं. 1993

84. डॉ. हेमलता. बी : सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में स्त्री विमर्श, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2012

85. क्षमा शर्मा : स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, दूसरी अवृत्ति- 2012

पत्रिकाएँ

1. हंस - अंक-6, जनवरी 2013
2. हंस - अंक-10, मई 2013
3. हंस - अंक-9, अप्रैल 2013
4. हंस - अंक-6, जनवरी 2013
5. हंस - अंक-8, मार्च 2013
6. हंस - अंक-10, मई 2013
7. हंस - अंक-5, दिसंबर 2014
8. हंस - अंक-2, सितंबर 2013
9. नया ज्ञानोदय- अंक-39, मई 2006
10. नया ज्ञानोदय- अंक-20, अक्टूबर 2004
11. नया ज्ञानोदय- अंक-24, फरवरी 2005
12. नया ज्ञानोदय- अंक-33, नवंबर 2005
13. नया ज्ञानोदय- अंक-38, अप्रैल 2006
14. पंचशील शोध समीक्षा - अप्रैल-जून 2010
15. पंचशील शोध समीक्षा - जूलै- सितंबर 2013
16. पंचशील शोध समीक्षा - अंक 12, अप्रैल-जून 2011
17. पंचशील शोध समीक्षा - अंक 16, अप्रैल-जून 2012
18. पंचशील शोध समीक्षा - अंक 7, जनवरी-मार्च 2010
19. पंचशील शोध समीक्षा - अंक 22, अक्टूबर-दिसंबर 2013
20. पंचशील शोध समीक्षा - अंक 10 अक्टूबर-दिसंबर 2010
21. पंचशील शोध समीक्षा - अंक 19 जनवरी-मार्च 2013

22. भाषा- अंक 6, जुलाई- अगस्त 2012

23. भाषा- अंक 4, मार्च-अप्रैल 2012

24. आकलन, अंक-1, मार्च-अगस्त 2010

25. नवनिकष- अंक 6, दिसंबर 2015

26. जन विकल्प, अंक 1, मई 2011

27. वागर्थ- अंक 213, अप्रैल 2013

28. समकालीन भारतीय साहित्य- अंक 147 जनवरी- फरवरी 2010

29. समकालीन भारतीय साहित्य- अंक 144 जुलाई-अगस्त 2009

30. समकालीन भारतीय साहित्य- अंक 165 जनवरी- फरवरी 2013

31. समकालीन भारतीय साहित्य- अंक 63 जनवरी- फरवरी 1996

32. समकालीन भारतीय साहित्य- जनवरी- फरवरी 2010

33. समकालीन भारतीय साहित्य- अंक 144 जुलाई- अगस्त 2009

34. समकालीन भारतीय साहित्य- अंक 165 जनवरी- फरवरी 2013

35. समकालीन भारतीय साहित्य- अंक 166 मार्च- अप्रैल 2013

36. समकालीन भारतीय साहित्य- अंक 160 मार्च- अप्रैल 2012

37. समकालीन भारतीय साहित्य- अंक 121 सितंबर- अक्टूबर 2005

38. दक्षिण भारत- जुलाई- सितंबर 2011

39. दक्षिण भारत- अक्टूबर-दिसंबर 2013

40. वर्तमान साहित्य- वर्ष 28 मार्च 2013

41. वर्तमान साहित्य- वर्ष 28 अगस्त 2012

42. नईधारा - अंक 9-10, दिसंबर-जनवरी 2013

43. नईधारा - अंक 7-8, अक्टूबर- नवंबर 2012

44. आलोचना- अक्टूबर- दिसंबर 2013

45. आलोचना- जनवरी-मार्च 2001

46. मधुमती- अंक 1 जनवरी 2009

47. मधुमती- अंक 1 जनवरी 1997

48. मधुमती- अंक 9 सितंबर 1994

मलयालम ग्रंथ

1. ओशो	:	स्त्री, ग्रीन बुक्स, त्रिश्शूर, प्र.सं. 2005
2. कारश्शेरी. एम.एन	:	उम्ममारकुवेन्डी ओरु संकडाहरजी, डी.सी. बुक्स् कोट्टयम, प्र.सं. 2008
3 खदीजा मुंतास	:	पुरुषनरियात्ता स्त्रीमुखङ्ङल, मातृभूमि बुक्स्, कोषिक्कोड़, प्र.सं. 2012
4. गीता	:	पेट्टुनोवुम् ईट्टुपुण्यवुम्, मातृभूमि बुक्स्, कोषिक्कोड़, प्र.सं. 2005
5. डॉ. ज्योतिलक्ष्मी. पी.एस	:	स्त्रैणा सर्गात्मकता एषुत्तुम एषुत्तुकारिकलुम, मलयालम विभाग, सेन्ड जोसफ़ कॉलेज फोर विमेन, आलप्पुषा, प्र.सं. 2013
6. पत्मराजन.पी	:	अवलुडे कथा, मातृभूमि बुक्स्, कोषिक्कोड़, ती.सं. 2013
7. डॉ. शिवदास. के.के	:	पेणकथयुडे वर्तमानम्, शिखा ग्रन्थवेदी, मलप्पुरम, प्र.सं. 2013
8. समद. के,पी.ए	:	पुरुषन- ओषो, ग्रीन बुक्स, त्रिश्शूर, प्र.सं.2007
9. सुधीष. वी.आर	:	ओट्टाकथापठनङ्ङल, डी.सी. बुक्स् कोट्टयम, प्र.सं. 2006

10. डॉ. सुषमा. एल : नोवल विमर्शनत्तिन्डे पेणवष्किकल, अलूमिनी, श्री. शंकराचार्य यूनिवेर्सिटी, तिरूर, प्र.सं. 2015
11. डॉ. राजलक्ष्मी. वी.एम : स्त्री-नीति, केरल भाषा इन्स्टिटस्यूट, तिरुवनन्तपुरम्, प्र.सं. 1987
12. हरिकुमार. एम.के : उत्तरा- उत्तराधुनिकता, आल्फा वन, कण्णूर, प्र.सं. 2012

अग्रेज़ी ग्रंथ

1. Alexander Walker : Woman, Mital Publications, Delhi, 1987
2. Asha Kaushik : Development, Globalization and Women, Rawat Publications, Jaipur, 2013
3. Andal. N : Women and Indian Society, Rawat Publications, Jaipur, 2002
4. Bell Hooks : Feminist Theory from Margin to Center, Pluto Press, London, Second Edition, 2000
5. Jyoti Mitra : Women and Society Equality and Empowerment, Kanishka Publishers, Delhi, First Published 1997
6. Kamla Bhasin : What is Patriarchy, Women unlimited publication, Delhi, Reprinted 2005
7. Madhavi D. Renavikar : Women and Religion, Rawat publications, Jaipur, 2003
8. Malti Agarwal : Women in post colonial Indian English literature Redefining the self, Atlantic publishers, Delhi, 2011
9. Mohit K. Roy, Rama Kundu : Studies in Women Writers in English, Atlantic publishers, Delhi, 2005
10. Neeru Tandon : Feminism a Paradigm Shift, Atlantic publishers, Delhi, 2008

11. Padmalaya Mohapatra and Bijoyini Mohanty : Elite Women of India, A P H Publishing Corporation, Delhi, 2002

12. Suresh Chandra Banerji : The Cultural Glory of Ancient India, D.K. Printworld, Delhi, 2000

कोश- ग्रंथ

1. आचार्य रामचन्द्र वर्मा : प्रामाणिक हिन्दी कोश, लोकभारती प्रकाशन, इलहाबाद, तृतीय संशोधित पुर्नमुद्रण- 1999

2. डॉ. उषा पुरी विद्यावाचस्पति : भारतीय मिथक कोश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2004

3. डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त : हिन्दी भाषा एवं साहित्य-विश्वकोश, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, प्र.सं. 1995

4. डॉ. जोसफ्. एन.के : हिन्दी-मलयालम-अंग्रेज़ी शब्दकोश, डी.सी. बुक्स कोट्टयम, संशोधित सं. 2003

5. डॉ. भोलानाथ तिवारी : हिन्दी पर्यायवाची कोश, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1999

6. सुकुमारन नायर : हिन्दी-हिन्दी- अंग्रेज़ी-मलयालम शब्दकोश, सिसो बुक्स्, तिरुवनन्तपुरम, ग्यारहवाँ सं. 2011

7. डॉ. हरदेव बाहरी : राजपाल अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्दकोश राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, सत्रहवां.सं. 2000

: राजपाल बृहत् शिक्षार्थी हिन्दी-अंग्रेज़ी शब्द कोश, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2007

समाचार पत्र

मातृभूमि - मार्च 19, 2015

मातृभूमि - जनवरी 23, 2016

मातृभूमि - नवंबर 17, 2015

मातृभूमि - मार्च 7, 2015

मातृभूमि - जनवरी 25, 2016

मलयाला मनोरमा - जून 17, 2015

माध्यमम् - मार्च 14, 2016

देशाभिमानी - सितंबर 2, 2015

देशाभिमानी - मार्च 7, 2015

वेबसाइट

http://wikipedia. org

www.hindi book.com

kavitakosh.org.

http://hindi.webdunia.com

http://khabar.ndtv.com

http://www.aksharparv.com

http://news.google.com

http://patrika.com